शिक्षा की दार्शनिक, सामाजशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमी

शिक्षा स्नातक

प्रथम सेमिस्टर

शिक्षा विभाग

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

1

प्राचीन भारतीय शिक्षा

ANCIENT INDIAN EDUCATION

(2500 B. C.—500 B. C.)

"The Pre-eminent position which Indian once occupied in the contemporary world, was mainly due to the success of her educational system." —**Dr. A. S. Altekar.**

विषय-प्रवेश

भारतीय शिक्षा का बीजारोपण सुदूर अतीत में आज से लगभग 4,000 वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु, उसके सुसम्बद्ध स्वरूप के दर्शन, वैदिक काल के आरम्भ में होते हैं। इस काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। अतः कुछ लेखकों ने वैदिक कालीन शिक्षा को **"ब्राह्मणीय शिक्षा"** और कुछ ने **"हिन्दू-शिक्षा"** की संज्ञा दी है।

प्राचीन भारत के मनीषी इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे कि शिक्षा—व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला है। अतः उन्होंने शिक्षा की ऐसी प्रशंसनीय प्रणाली का प्रतिपादन किया, जिसने न केवल विशाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा, वरन् ज्ञान के विविध क्षेत्रों में मौलिक विचारकों को भी जन्म दिया, जिनसे भारत का भाल आज भी गर्व और गौरव से उन्नत है। इस दृष्टि से भारत की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए **एफ० डब्ल्यू० टॉमस** (F. W. Thomas) ने लिखा है—**"भारत में शिक्षा विदेशी पौधा नहीं है। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो, या जिसने इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो।"**

शिक्षा का अर्थ

(MEANING OF EDUCATION)

वैदिक साहित्य में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है; यथा—'विद्या', 'ज्ञान', 'बोध' और 'विनय'। आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों के समान प्राचीन भारतीयों ने भी 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग 'व्यापक' और 'सीमित'—दोनों अर्थों में किया है। **डा० ए० एस० अल्तेकर** के अनुसार—व्यापक अर्थ में, शिक्षा का तात्पर्य है—व्यक्ति को

सभ्य और उन्नत बनाना। इस दृष्टि से शिक्षा, आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। सीमित अर्थ में, शिक्षा का अभिप्राय उस औपचारिक शिक्षा से है जो व्यक्ति को गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व छात्र के रूप में गुरु से प्राप्त होती थी।

प्राचीन युग में 'शिक्षा' को न तो पुस्तकीय ज्ञान का पर्यायवाची माना गया और न जीविकोपार्जन का साधन। इसके विपरीत, शिक्षा को वह प्रकाश माना गया, जो व्यक्ति को अपना बहुअंगी विकास करने, उत्तम जीवन व्यतीत करने और मोक्ष प्राप्त करने में सहायता देती थी। दूसरे शब्दों में, शिक्षा को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति को पथ-प्रदर्शित करने वाला प्रकाश माना गया था। इस कथन की पुष्टि में डॉ० ए० एस० अल्तेकर के अग्राकित शब्द उल्लेखनीय हैं—**"वैदिक युग से आज तक शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीयों की मुख्य धारणा यह रही है कि शिक्षा, प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करता है।"**

शिक्षा का महत्त्व
(IMPORTANCE OF EDUCATION)

प्राचीन भारत में शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। इसका एक प्रमाण यह है कि शिक्षा को प्रकाश का स्रोत, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्योति, ज्ञान-चक्षु और मनुष्य का तीसरा नेत्र माना जाता था। उस युग के भारतीयों का विचार था कि शिक्षा का प्रकाश, व्यक्ति के सब संशयों का उन्मूलन और उनकी सब बाधाओं का निवारण करता है। शिक्षा से प्राप्त अन्तर्दृष्टि, व्यक्ति की बुद्धि, विवेक और कुशलता में वृद्धि करती है। शिक्षा—व्यक्ति को वास्तविक शक्ति से सम्पन्न करती है, उसके सुख, सुयश एवं समृद्धि में योग देती है, उसे जीवन के यथार्थ महत्त्व को समझने की क्षमता प्रदान करती है और उसे भवसागर को पार करके, मोक्ष-प्राप्ति में सहायता देती है।

शिक्षा के महत्त्व के सम्बन्ध में उपरिअंकित और अनेक अन्य धारणाएँ व्यक्त करके भारतीयों ने यह विश्वास व्यक्त किया कि शिक्षा—कामधेनु का कल्पतरु के समान व्यक्ति की सब मनोकामनाओं को पूर्ण करती है और उसका सर्वांगीण विकास करती है। उनके इसी विश्वास के आधार पर डॉ० ए० एस० अल्तेकर ने अपना यह मत अक्षरबद्ध किया है—**"शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का ऐसा स्रोत माना जाता था, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का निरन्तर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके, हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती है।"**

"Education was regarded as a source of illumination and power which transforms and enables our nature by the progressive and harmonious development of our physical, mental, intellectual and spiritual powers and faculties." —**Dr. A. S. Altekar**: *Education in Ancient India*, p. 8.

शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श
(AIMS & IDEALS OF EDUCATION)

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० ए० एस० अल्तेकर (A. S. Altekar) ने लिखा है—**"प्राचीन भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों**

एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—ईश्वर-भक्ति एवं धार्मिकता का समावेश, चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य पालन की भावना का समावेश, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार।"

हम उपर्युक्त उद्देश्यों और आदर्शों एवं दो अन्य का संक्षिप्त विवरण उपस्थित कर रहे हैं; यथा—

1. ज्ञान व अनुभूति पर बल
(STRESS ON KNOWLEDGE & REALIZATION)

प्राचीन भारत में शिक्षा का पहला उद्देश्य—ज्ञान और अनुभूति पर बल देना था। उस समय छात्रों की मानसिक योग्यता का मापदण्ड उनके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले अंक, प्रमाणपत्र या उपाधि-पत्र नहीं थे। इनके स्थान पर, उनकी योग्यता का मापदण्ड था—उनके द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान, जिसका प्रमाण वे विद्वत्परिषदों में शास्त्रार्थ करके देते थे।

"छान्दोग्य उपनिषद्" में हमें श्वेतकेतु और कमलायन के उदाहरण मिलते हैं जिनको बारह वर्ष के अध्ययन के उपरान्त भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं समझा गया था। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य या आदर्श केवल पढ़ना नहीं था, वरन् मनन, स्मरण और स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को आत्मसात् करना भी था। **डॉ० आर० के० मुकर्जी** के शब्दों में—**"शिक्षा का उद्देश्य पढ़ना नहीं था अपितु ज्ञान और अनुभव को आत्मसात करना था।"**

2. चित्त-वृत्तियों का निरोध
(CHITTA-VRITTI NIRODH)

प्राचीन काल में शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—छात्रों की चित्त-वृत्तियों का निरोध करना था। उस समय शरीर की अपेक्षा आत्मा को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था, क्योंकि शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अनश्वर है। अतः आत्मा के उत्थान के लिए जप, तप और योग पर विशेष बल दिया जाता था। ये कार्य—चित्त की वृत्तियों का निरोध करके अर्थात् मन पर नियन्त्रण करके ही सम्भव थे। इसलिए छात्रों को विभिन्न प्रकार के अभ्यासों द्वारा अपनी चित्त-वृत्तियों का निरोध करने का प्रशिक्षण दिया जाता था, ताकि उनका मन इधर-उधर भटक कर उनकी मोक्ष-प्राप्ति में, जिसे जीवन का चरम लक्ष्य समझा जाता था, बाधा उपस्थित न करे। इस प्रकार हम **डॉ० आर० के० मुकर्जी** (R. K. Mookerji) के शब्दों में कह सकते हैं—**"शिक्षा का उद्देश्य—चित्त-वृत्ति निरोध, अर्थात् मन से उन कार्यों का निषेध था, जिनके कारण वह भौतिक संसार में उलझ जाता था।"**

3. ईश्वर-भक्ति व धार्मिकता का समावेश
(INFUSION OF PIETY & RELIGIOUSNESS)

प्राचीन भारत में शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—छात्रों में ईश्वर-भक्ति और धार्मिकता की भावना का समावेश करना था। उस समय उसी शिक्षा को सार्थक माना जाता था, जो

इस संसार से व्यक्ति की मुक्ति को सम्भव बनाए—"सा विद्या या विमुक्तये"। व्यक्ति को मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती थी, जब वह ईश्वर-भक्ति और धार्मिकता की भावना से सरावोर हो। छात्रों में इस भावना को व्रत, यज्ञ, उपासना, धार्मिक उत्सवों आदि के द्वारा विकसित किया जाता था। **डॉ० ए० एस० अल्तेकर ने लिखा है—"सब प्रकार की शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश्य—छात्र को समाज का धार्मिक सदस्य बनाना था।"**

4. चरित्र का निर्माण

(Formation of Character)

प्राचीन भारत में शिक्षा का चौथा उद्देश्य—छात्रों के चरित्र का निर्माण करना था। उस समय व्यक्ति के चरित्र को उसके पांडित्य से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। **"मनुस्मृति"** मे लिखा है—"केवल गायत्री मन्त्र का ज्ञान रखने वाला चरित्रवान्, ब्राह्मण, सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता, पर चरित्रहीन विद्वान से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।" गुरुकुलों के उत्तम वातावरण, सदाचार के उपदेशों, महापुरुषों के उदाहरणों, महान विभूतियों के आदर्शों आदि के द्वारा छात्रों के चरित्र का निर्माण किया जाता था। **डॉ० वेद मित्र का कथन है—"छात्रों का चरित्र निर्माण करना, शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य माना जाता था।"**

5. व्यक्तित्व का विकास

(Development of Personality)

प्राचीन भारत में शिक्षा का पाँचवाँ उद्देश्य—छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उनमें आत्म-संयम, आत्म-सम्मान, आत्म-विश्वास आदि सद्‌गुणों को उत्पन्न किया जाता था। साथ ही, गोष्ठियों और वाद-विवाद सभाओं का आयोजन करके उनमें विवेक, न्याय और निष्पक्षता की शक्तियों को जन्म देकर, उनको बलवती बनाया जाता था।

6. नागरिक व सामाजिक कर्त्तव्य-पालन की भावना का समावेश

(Inculcation of Civic & Social Duties)

प्राचीन भारत में शिक्षा का छठवाँ उद्देश्य—छात्रों में नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करने की भावना का समावेश करना था। उस समय प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते समय अपने नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रों को गुरु द्वारा विभिन्न प्रकार के उपदेश दिए जाते थे; यथा—अतिथियों का सत्कार करना, दीन-दुखियों की सहायता करना, वैदिक साहित्य की निःशुल्क शिक्षा देना, दूसरों के प्रति निःस्वार्थता का व्यवहार करना और पुत्र, पिता एवं पति के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करना।

7. सामाजिक कुशलता की उन्नति

(Promotion of Social Efficiency)

प्राचीन भारत में शिक्षा का सातवाँ उद्देश्य—छात्रों की सामाजिक कुशलता में उन्नति करना था। उस समय शिक्षा केवल व्यक्ति का मानसिक विकास ही नहीं करती थी, वरन् सामाजिक कुशलता में उसकी उन्नति भी करती थी, ताकि वह सरलता से अपनी

जीविका का उपार्जन करके, अपने सुख में अभिवृद्धि कर सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रों को उनकी रुचि और वर्ण के अनुसार किसी उद्योग या व्यवसाय की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। **डॉ० आर० के० मुकर्जी के शब्दों में—"शिक्षा पूर्णतया सैद्धान्तिक और साहित्यिक नहीं थी, वरन् किसी-न-किसी शिल्प से सम्बद्ध थी।"**

8. राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण व प्रसार

(Preservation & Spread of National Culture)

प्राचीन भारत में शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य—राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक पिता अपने पुत्र को अपने व्यवसाय में दक्ष बनाता था, प्रत्येक ब्राह्मण वेदों का अध्ययन करता था और प्रत्येक आर्य, वैदिक साहित्य के किसी-न-किसी भाग का अध्ययन करता था। इन कार्यों से किसी को कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होता था, पर इनको करके वे न केवल पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को सुरक्षित रखते थे, वरन् उनका प्रसार भी करते थे।

हमने प्राचीन भारतीय शिक्षा के जिन उद्देश्यों और आदर्शों को अंकित किया है, उनसे विदित हो जाता है कि उनका निर्माण—व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन की सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया गया था।

शिक्षा की व्यवस्था

(Organization of Education)

डॉ० एस० के० अल्तेकर के अनुसार—"प्राचीन भारत में सम्भवतः 400 ई० पू० से पहले प्राथमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। उस समय तक बालक का परिवार ही उसकी शिक्षा का केन्द्र था। उसके पश्चात् कुछ ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत रूप में शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया।" इसके फलस्वरूप, जिस शिक्षा-प्रणाली का विकास हुआ, उसमें प्राथमिक और उच्च शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। प्राचीन भारत में शिक्षा के यही दो स्तर थे। हम इनका संक्षिप्त में परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा

(Primary Education)

1. सामान्य परिचय—प्राथमिक शिक्षा के विषय में सर्वप्रथम उल्लेखनीय बात यह है कि इस पर ब्राह्मणों का आधिपत्य नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने धर्मग्रन्थों में इसका विवरण न देकर इसकी उपेक्षा की है। **संतोष कुमार दास** ने ठीक लिखा है—**"ब्राह्मणों के पास उस शिक्षा की उपेक्षा करने के कारण थे, जो उनके हाथ में नहीं थे।"**

"The Brahmans may have had reasons for wishing to ignore any form of education which was not in their hands."—**Santosh Kumar Das** : *The Education System of the Ancient Hindus*, p. 38.

ब्राह्मणों की उपेक्षा के बावजूद 'ऋग्वेद' में यत्र-तत्र ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे पाठशाला की भाँति किसी शिक्षा-संस्था की कल्पना की जा सकती है।

2. प्रवेश व विधि—डॉ० वेद मित्र के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ 5 वर्ष की आयु में "विद्यारम्भ संस्कार" से होता था और सभी जातियों के बालकों के लिए अनिवार्य

था। इसका अभिप्राय यह है कि सभी जातियों के बालक प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। इस शिक्षा की अवधि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोई स्रोत उपलब्ध नहीं है; पर **डॉ० ए० एस० अल्तेकर** का मत है कि इसकी अवधि 6 वर्ष की थी।

3. पाठ्यक्रम—प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को पहले कुछ वादक यन्त्रों का उच्चारण करना और बोलना सिखाया जाता था। जब वे उन यन्त्रों को कंठस्थ कर लेते थे तब उनको पढ़ने और लिखने की शिक्षा दी जाती थी। भाषा का वांछित ज्ञान हो जाने के पश्चात् उनको साहित्य और व्याकरण से परिचित कराया जाता था। इस प्रकार, शिक्षा का पाठ्यक्रम था—वैदिक मन्त्रों का स्मरण, पढ़ना और लिखना, भाषा, साहित्य एवं व्याकरण।

2. उच्च शिक्षा
(HIGHER EDUCATION)

1. सामान्य परिचय—प्राचीन काल में सर्वप्रथम केवल प्राथमिक शिक्षा की ही व्यवस्था थी। किन्तु सामाजिक प्रगति के साथ-साथ शिक्षा के विषयों की संख्या में वृद्धि होती चली गई और उनके लिए पृथक् शिक्षा-संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना की गई। लेखकों का अनुमान है कि इनकी स्थापना ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी तक हो गई थी। यहीं से उच्च शिक्षा के इतिहास का सूत्रपात होता है।

2. प्रवेश व अवधि—उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को था। इन जातियों के बालक सामान्य रूप से क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष की आयु में शिक्षा-संस्था में प्रवेश करते थे। साहित्य एवं धर्मशास्त्र के अध्ययन की अवधि 10 वर्ष और एक वेद के अध्ययन की अवधि 12 वर्ष की थी।

3. पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम में परा (आध्यात्मिक) विद्या और अपरा (लौकिक) विद्या—दोनों को स्थान दिया गया था। परा विद्या के अन्तर्गत वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक विषय थे। अपरा विद्या के अन्तर्गत इतिहास, तर्कशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि लौकिक विषय थे।

4. शिक्षण-विधि—मुद्रित पुस्तकों का अभाव होने के कारण शिक्षण-विधि प्रायः मौखिक थी। छात्र, गुरु से वेदादि ग्रन्थों को सुनते थे, उसके उच्चारण का अनुकरण करते थे और पाठ्य-विषय दोहराते थे। तदुपरान्त, वे एकान्त में पाठ्य-विषय का मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति करते थे। शिक्षण-विधि में प्रवचन, व्याख्यान, शास्त्रार्थ, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद आदि का भी प्रयोग किया जाता था।

5. परीक्षाएँ व उपाधियाँ—शिक्षा समाप्त होने पर छात्रों की मौखिक परीक्षा होती थी। इसके लिए उन्हें विद्वानों की सभा में उपस्थित होना पड़ता था, जहाँ उन्हें विद्वानों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते थे। परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों को उपाधियाँ नहीं दी जाती थीं।

6. शिक्षा-संस्थाएँ—प्राचीन काल में अनेक प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ थीं; यथा—

(i) टोल—टोल में संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। एक टोल में एक शिक्षक होता था।

(ii) चरण—चरण में वेद के एक अंग की शिक्षा दी जाती थी। एक चरण में एक शिक्षक होता था।

(iii) घटिका—घटिका में धर्म और दर्शन की उच्च शिक्षा दी जाती थी। एक घटिका में अनेक शिक्षक होते थे।

(iv) परिषद—परिषद् में विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। एक परिषद् में साधारणतः दस शिक्षक होते थे।

(v) गुरुकुल—गुरुकुल में वेदों, साहित्य, धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। एक गुरुकुल में एक शिक्षक होता था।

(vi) विद्यापीठ—विद्यापीठ में व्याकरण और तर्कशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। एक विद्यापीठ में अनेक शिक्षक होते थे।

(vii) विशिष्ट विद्यालय—विशिष्ट विद्यालय में एक विशिष्ट विषय की शिक्षा दी जाती थी; जैसे—वैदिक विद्यालय में वेदों की और सूत्र विद्यालय में यज्ञ, हवन आदि की। एक विशिष्ट विद्यालय में एक शिक्षक होता था।

(viii) मन्दिर-महाविद्यालय—किसी मन्दिर से सम्बद्ध मन्दिर-महाविद्यालय में धर्म, दर्शन, वेदों, व्याकरणादि की शिक्षा दी जाती थी। एक मन्दिर-महाविद्यालय में अनेक शिक्षक होते थे।

(ix) ब्राह्मणीय महाविद्यालय—इस महाविद्यालय को 'चतुष्पथी' कहा जाता था, क्योंकि इसमें चारों शास्त्रों अर्थात् अग्रांकित चार विषयों की शिक्षा दी जाती थी—दर्शन, पुराण, कानून और व्याकरण। एक ब्राह्मणीय महाविद्यालय में एक शिक्षक होता था।

(x) विश्वविद्यालय—उच्च शिक्षा की कुछ संस्थाओं ने कालान्तर में विश्वविद्यालयों का रूप ग्रहण किया। इनमें धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त वाणिज्य, चित्रकला, चिकित्सा-शास्त्र आदि की भी शिक्षा विभिन्न शिक्षकों द्वारा दी जाती थी। बनारस, नालन्दा और तक्षशिला के विश्वविद्यालय सबसे अधिक प्रसिद्ध थे।

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
(OTHER SPHERES OF EDUCATION)

1. स्त्री-शिक्षा : Women's Education—वैदिक काल में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी और वे पुरुषों के साथ यज्ञ में भाग लेती थीं। प्राचीन काल में अनेक विदुषी स्त्रियाँ थीं; यथा—घोषा, गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, विश्ववरा, शकुन्तला और अनुसुइया।

बालिकाओं को धर्म और साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, काव्य-रचना, वाद-विवाद आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। उनको शिक्षा अधिकतर अपने परिवारों में अपनी माता, भाई, बहिन या कुल-पुरोहित के द्वारा दी जाती थी। यद्यपि बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था नहीं थी, तथापि सह-शिक्षा का कुछ सीमा तक प्रचलन था। उदाहरणार्थ, आत्रेयी ने लव और कुश के साथ वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी।

बालिकाओं और स्त्रियों को 200 ई० पू० तक शिक्षा की भी सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं, पर उसके बाद उनकी शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जिससे उनकी शिक्षा अवरुद्ध हो गई। इस सम्बन्ध में डॉ० ए० एस० अल्तेकर के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैं—**"धर्मशास्त्र युग (200 ई० पू०—500 ई०) में बालिकाओं के लिए विवाह की आयु को कम करके 12 वर्ष तक कर दिया गया और स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन को निषेध कर दिया गया। इनसे उनकी शिक्षा को प्रबल आघात पहुँचा।"**

2. व्यावसायिक शिक्षा : Professional Education—प्राचीन भारत में धर्म का मानव-जीवन में विशेष स्थान था। अतः शिक्षा मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक थी। किन्तु, व्यावसायिक शिक्षा को आवश्यक मानकर उसकी भी सुचित व्यवस्था की गई थी। इस संदर्भ में डॉ० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है—**"व्यावसायिक शिक्षा के आधार पर ही प्राचीन भारत अपने आर्थिक जीवन और वैभव का निर्माण करने में सफल हुआ।"**

हम प्राचीन भारत में व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण अंगों पर प्रकाश डाल रहे हैं; यथा—

1. सैनिक शिक्षा : Military Education—प्राचीन भारत में सैनिक शिक्षा व्यावसायिक आचार्यों द्वारा दी जाती थी। इन आचार्यों में द्रोणाचार्य का नाम आज भी प्रसिद्ध है। उत्तर भारत में तक्षशिला, सैनिक शिक्षा का विख्यात केन्द्र था। यह शिक्षा विशेष रूप से क्षत्रियों और राजकुमारों के लिए थी। सैनिक शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व शिक्षार्थी के लिए उपनयन संस्कार आवश्यक था। उसके पश्चात्, उसे युद्धकला का ज्ञान प्रदान किया जाता था और उस समय के प्रमुख अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता था।

2. चिकित्साशास्त्र की शिक्षा : Medical Education—प्राचीन काल में चिकित्साशास्त्र की शिक्षा व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा दी जाती थी, जो अपने विषय के विशेषज्ञ होते थे। इन शिक्षकों में अश्विनी कुमारों के नाम अपनी विलक्षण प्रतिभा के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं। चिकित्साशास्त्र की शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार के लिए उसी छात्र को योग्य समझा जाता था, जो पूर्णतया स्वस्थ होता था। चिकित्साशास्त्र के अध्ययन की अवधि साधारणतः 8 वर्ष की थी।

3. वाणिज्य शिक्षा : Commercial Education—यह शिक्षा—वैश्यों के लिए थी। 'मनुस्मृति' और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में इस शिक्षा का पूर्ण वर्णन मिलता है। इसमें अनेक विषय सम्मिलित थे; यथा—क्रय-विक्रय के नियम, आर्थिक एवं व्यापारिक भूगोल, विभिन्न क्षेत्रों की उपज एवं आवश्यकताएँ, उपज-क्षेत्रों और मंडियों को जाने के मार्ग, इत्यादि। वैश्य बालकों को वाणिज्य की व्यावहारिक शिक्षा अपने पिता से और अपने घर की दुकान पर अनुभव तथा अभ्यास से प्राप्त होती थी। यह शिक्षा कुछ शिक्षकों द्वारा भी दी जाती थी।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ

(Main Features or Characteristics of Education)

प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, तत्कालीन ब्राह्मणों, शिक्षकों ने जिस विशिष्ट शिक्षा-प्रणाली का विकास किया, उसका गुणगान करते

हुए डॉ० एफ० ई० कीई (F. E. Keay) ने लिखा है—**"ब्राह्मण शिक्षकों ने जिस शिक्षा-प्रणाली का विकास किया, वह न केवल साम्राज्यों के पतन और समाज के परिवर्तनों से अप्रभावित रही, वरन् उसने हजारों वर्षों तक उच्च शिक्षा की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा।"**

हम इस शिक्षा-प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कर रहे हैं; यथा—

1. विद्यारम्भ-संस्कार : Vidyarambha Ceremony—यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करता था। कुछ विद्वानों ने इसके लिए "अक्षरस्वीकरणम्" शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द से स्पष्ट हो जाता है कि इस संस्कार के समय बालक को अक्षर-ज्ञान कराया जाता था। बालक पहले सरस्वती, विनायक और अपने परिवार के देवताओं की उपासना करता था। उसके बाद गुरु उससे वर्णमाला के अक्षरों को लिखवाता था। डॉ० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार—विद्यारम्भ संस्कार, उपनयन संस्कार के अनेक वर्षों बाद उस समय आरम्भ हुआ, जब वैदिक संस्कृत, जनसाधारण की बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी। इस संस्कार के विषय में डॉ० वेद मित्र ने लिखा है—**"यह संस्कार पाँच वर्ष की आयु में होता था और साधारणतः सब जातियों के बालकों के लिए था।"**

2. उपनयन संस्कार : Upanayna Ceremony—यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक—गुरु के संरक्षण में वैदिक शिक्षा आरम्भ करता था। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है—"पास ले जाना" (Leading Near)। दूसरे शब्दों में, बालक को वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के पास ले जाया जाता था। गुरु—बालक को पहले "सावित्री मन्त्र" अर्थात् "गायत्री मन्त्र" का उपदेश देता था और उसके बाद उसे शिक्षा देना आरम्भ करता था।

डॉ० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार—"उपनयन संस्कार" का आरम्भ पूर्व ऐतिहासिक युग से माना जाता है। यह संस्कार, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णों के लिए अनिवार्य था। जिस प्रकार कोई व्यक्ति बिना "कलमा" के मुसलमान या बिना "बपस्मिा" के ईसाई नहीं कहा जा सकता है, उसी प्रकार प्राचीन भारत में कोई बालक बिना "उपनयन" के वैदिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता था।

3. समावर्तन संस्कार : Samavartan Ceremony—यह संस्कार उस समय होता था, जब छात्र अपनी वैदिक शिक्षा (या सैनिक शिक्षा, औषधि-शास्त्र की शिक्षा इत्यादि) समाप्त कर लेता था। "समावर्तन" का शाब्दिक अर्थ है—"घर लौटना" (Returning Home)। यह संस्कार लगभग 25 वर्ष की आयु में होता था, जब छात्र, गुरु-गृह से लौटकर अपने घर जाता था और ब्रह्मचर्य आश्रम का परित्याग करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

जिस दिन यह संस्कार होता था, उस दिन दोपहर के समय छात्र स्नान करके और नए वस्त्र धारण करके गुरु के समक्ष उपस्थित होता था। गुरु पहले उसे मधुपर्क देता था और फिर आधुनिक युग के दीक्षान्त भाषण (Convocation Address) के रूप में उसे "समावर्तन उपदेश" देता था। इस उपदेश का कुछ अंश इस प्रकार है—"हे शिष्य ! सर्वदा सत्य बोलना। अपने कर्त्तव्य का पालन करना। स्वाध्याय में प्रमाद मत

करना। जो अच्छे कार्य हमने किये हैं, तुम उनका अनुकरण करना। श्रद्धा से दान देना। तुम्हें हमारा यही आदेश है। यही उपदेश है।"

4. विद्यालय-भवन : Buildings of Institutions—प्राचीन काल में छात्रों के लिए किस प्रकार के भवन थे, इस विषय में किसी प्रकार की जानकारी उपलब्ध नहीं है। अतः **डॉ० अल्तेकर** का यह मत सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है—"अच्छे मौसम में कक्षाएँ वृक्षों की छाया में होती होंगी, किन्तु वर्षा-ऋतु में किसी प्रकार के साधारण आच्छादन की व्यवस्था अवश्य होगी। जहाँ तक देवालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों का प्रश्न है, वहाँ उनके लिए भव्य और विशाल भवन थे।"

5. प्रकृति से सम्पर्क : Contact with Nature—प्राचीन काल में शिक्षा के अनेक विख्यात केन्द्र, तपोवनों में थे, जहाँ ऋषियों और मुनियों के चरणों में बैठकर छात्र, ज्ञान का संचय करते थे। सुरम्य दृश्यों से आवृत्त इन शिक्षा-केन्द्रों में छात्र अपने जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत करते थे। अतः उनका प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता था, जिसका उनके शारीरिक और मानसिक विकास पर अत्यन्त स्वस्थ प्रभाव पड़ता था। इन्हीं छात्रों के माध्यम से तपोवनों में आविर्भूत और पारिपल्लवित होने वाली भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का सम्पूर्ण देश में प्रसार हुआ। इसीलिए **रवीन्द्रनाथ टैगोर** (Rabindranath Tagore) ने यह विचार वाक्यबद्ध किया है—**"भारत के वनों में सभ्यता की जो धारा प्रवाहित हुई, उसने सम्पूर्ण भारत को आप्लावित कर दिया।"**

6. गुरुकुल-प्रणाली : Gkurukula System—प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक मुख्य विशेषता—गुरुकुल-प्रणाली थी। गुरुकुल किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थान में, पर साधारणतः किसी ग्राम या नगर के निकट होते थे, ताकि छात्रों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और उन्हें भिक्षाटन की सुविधा रहे। छात्र अपने गुरु के पास उसके कुल के सदस्य के रूप में रहकर ज्ञान का अर्जन करते थे और उससे वास्तविक जीवन की शिक्षा प्राप्त करते थे। वे गुरु के उच्च विचारों और आदर्शों को अनुकरण करके, अपने श्रेष्ठ जीवन का निर्माण करते थे। गुरुकुल-प्रणाली की सराहना करते हुए, **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** ने लिखा है—**"वैदिक कालीन भारत, शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली में विश्वास करता था, न कि शिक्षा-संस्थाओं में, यान्त्रिक विधियों द्वारा विशाल पैमाने पर छात्रों के उत्पादन में।"**

7. वैदिक शिक्षा आरम्भ करने की आयु : Age at the Commencement of Vedic Education—**डॉ० ए० एस० अल्तेकर** ने लिखा है—"वैदिक शिक्षा, उपनयन संस्कार के बाद आरम्भ होती थी और अनेक बातों में आधुनिक माध्यमिक शिक्षा के समान थी। अतः उसे आरम्भ करने की आयु साधारणतः 8 या 12 वर्ष के बीच में मानी जाती थी। मनु के अनुसार—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्रों का उपनयन संस्कार क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष की आयु तक हो जाना चाहिए। (शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था।) मनु ने उपनयन की उच्चतम आयु भी निर्धारित कर दी थी, जिसके पश्चात् यह संस्कार नहीं हो सकता था। यह उच्चतम आयु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्रों के लिए क्रमशः 16, 22 और 24 थी।

यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना असंगत न होगा कि जिस प्रकार वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए "उपनयन संस्कार" अनिवार्य था, उसी प्रकार सैनिक शिक्षा, औषधि शास्त्र की शिक्षा आदि के लिए भी था।

8. अध्ययन की अवधि : Period of Study—प्राचीन काल में अध्ययन की अवधि साधारणतः 12 वर्ष थी। इस अवधि में छात्र केवल एक वेद का अध्ययन कर सकते थे। यदि वे एक से अधिक वेदों का अध्ययन करना चाहते थे, तो उनको प्रत्येक वेद के लिए 12 वर्ष व्यतीत करने पड़ते थे। 12, 24, 36 और 48 वर्ष की आयु तक अध्ययन करने वाले छात्र क्रमशः स्नातक, वसु, रुद्र और आदित्य कहलाते थे। साहित्य और अर्थशास्त्र के छात्रों के अध्ययन की अवधि 10 वर्ष की थी।

9. शिक्षा-सत्र व छुट्टियाँ : Academic Session & Holidays—शिक्षा-सत्र, श्रावण मास की पूर्णिमा को 'उपाकर्म' 'श्रावणी' समारोह से आरम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को 'उत्सर्जन' समारोह के साथ समाप्त होता था। इस प्रकार शिक्षा-सत्र की अवधि पाँच माह की थी।

आधुनिक समय के समान प्राचीन काल में भी शिक्षा-संस्थाओं में छुट्टियाँ होती थीं। प्रत्येक मास में एक-एक सप्ताह के अन्तर से चार छुट्टियाँ मिलती थीं। अधिक आयु के छात्रों की अपेक्षा कम आयु के छात्रों को अधिक छुट्टियाँ मिलती थीं। छुट्टियाँ लम्बी नहीं होती थीं, क्योंकि आवागमन की कठिनाइयों के कारण छात्र साधारणतः शिक्षा समाप्त करके ही घर लौटते थे।

10. शिक्षा का स्वरूप : Form of Education—प्राचीन समय में सम्पूर्ण शिक्षा—धर्म में अनुप्राणित थी। शिक्षा के आदर्श, उद्देश्य, व्यवस्था, विषय-सामग्री, यहाँ तक कि छात्रों का दैनिक जीवन भी धर्म पर अवलम्बित था। ज्ञान का अर्जन धर्म के द्वारा और धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में किया जाता था। इस प्रकार शिक्षा का सम्पूर्ण कलेवर, धर्म के अभेद्य आवरण से आवृत्त था। इस प्रसंग में **गन्नार मिरडल** के अग्रांकित वाक्यों का अवलोकन कीजिए—**"शिक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होने वाले धार्मिक व्यक्तियों के निर्देशों का संकलन थी। मन्त्रों, देवगीतों, धर्म-ग्रन्थों का उस समय तक पाठ किया जाता था जिस समय तक वे कण्ठस्थ नहीं हो जाते थे।"**

11. निःशुल्क व सार्वभौमिक शिक्षा : Free & Universal Education—प्राचीन भारत में शिक्षा निःशुल्क थी, पर शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् प्रत्येक छात्र अपने गुरु को दक्षिणा अवश्य देता था। वह दक्षिणा के रूप में धन, भूमि, पशु, अन्न—कुछ भी दे सकता था। दक्षिणा इतनी कभी नहीं होती थी, जो शिक्षक का पर्याप्त पारिश्रमिक कहा जा सके।

निःशुल्क होने के कारण सार्वभौमिक और सबके लिए थी। किन्तु कुछ लेखकों का विचार है कि शिक्षा अनिवार्य थी। **डॉ० वेद मित्र** के अनुसार, उनका यह विचार—मुन के इस कथन पर आधारित है—"मनु का कथन है कि राज्य और समाज को 5 या 8 वर्ष की आयु के पश्चात् बालकों और बालिकाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य बना देना चाहिए और जो व्यक्ति अपने बच्चे को इन आयु के पश्चात् घर पर रखे, उसको दण्ड दिया जाना चाहिए।"

12. शिक्षा की पद्धति : Method of Education—प्राचीन भारत में शिक्षा की पद्धति को वैयक्तिक बताते हुए, **गन्नार मिरडल** ने लिखा है—**"हिन्दू धर्म की सीमा के अन्तर्गत शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी क्योंकि प्रत्येक गुरु के अपने स्वयं के शिष्य होते थे।"**

"The Method of Education within the bounds of Hinduism was individualistic, each *guru* had his personal disciples."

—**Gunnar Myrdal** : *Asian Drama*, Vol. III, p. 1627.

13. शिक्षण का समय : Time of Teaching—शिक्षण के समय के विषय में 'स्मृतियों' में कोई लेख नहीं है। प्राचीन समय में मुद्रित पुस्तकें नहीं थीं। अतः पठन-पाठन सब कार्य गुरु की उपस्थिति में होता था। इसमें हम शिक्षण के समय के विषय में कुछ अनुमान लगा सकते हैं। शिक्षण का कार्य प्रातःकाल से दोपहर तक और फिर भोजन तथा विश्राम के उपरान्त सायंकाल तक होता होगा। प्राचीन ढंग की कुछ संस्कृत पाठशालाओं में अब भी शिक्षण का यही कार्यक्रम है।

14. शिक्षण की विधि : Method of Teaching—प्राचीन काल में शिक्षण की विधि—प्रवचन और व्याख्यान के रूप में प्रायः मौखिक थी और उसके मुख्य अंग थे—श्रवण, मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति। छात्र—गुरु के मुख से वेदादि ग्रन्थों को सुनते थे और उसके उच्चारण को सुनकर तदनुसार उच्चारण करते थे। उसके पश्चात् वे एकान्त में पाठ्यविषय का मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति करते थे। छात्रों की पाठ्यविषय-सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने के लिए प्रश्नोत्तर-विधि, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ का प्रयोग होता था।

प्राचीन काल में कक्षाओं में कम छात्र होते थे। अतः आचार्य के लिए प्रत्येक छात्र की प्रगति पर पृथक्-पृथक् ध्यान देना सम्भव था। इस सम्बन्ध में **डॉ० अल्तेकर** का मत है—**"प्राचीन भारत में कक्षाएँ छोटी होती थीं और उनमें 15 या 20 छात्रों से अधिक नहीं थे। अतः शिक्षक द्वारा प्रत्येक छात्र के प्रति व्यक्तिगत ध्यान दिया जाना सम्भव था।"**

15. कक्षा-नायकीय पद्धति : Monitorial System—प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता—कक्षा-नायकीय पद्धति थी। इस पद्धति में उच्च कक्षाओं के बुद्धिमान छात्र, जिनको नायक (Monitors) कहा जाता था, निम्न कक्षाओं के छात्रों को पढाते थे और इस प्रकार गुरु के शिक्षण कार्य में सहायता देते थे। इस पद्धति के दो मुख्य लाभ थे। **पहला**, शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण का कार्य अधिकांश कक्षाओं में चलता रहता था। **दूसरा**, कक्षा-नायक कुछ समय के बाद शिक्षण कार्य में प्रशिक्षित हो जाते थे।

अंग्रेज शिक्षाविदों, बेल और लेंकास्टर ने भारत की कक्षा-नायकीय पद्धति से प्रभावित होकर, उसका अपने देश में सूत्रपात किया, पर वे इस पद्धति को आदर्श रूप न दे सके। **डॉ० एफ० ई० केई** के शब्दों में—**"बेल और लेंकास्टर की कक्षा-नायकीय पद्धति भारतीय आदर्श का केवल विकृत रूप है।"**

"The monitorial system of Bell and Lancaster is but a caricature of the Indian ideal."

—**Dr. F. E. Keay** : *op. cit.*, p. 192.

16. छात्र-जीवन सम्बन्धी नियम : Rules Regarding Student-Life—छात्रों के जीवन के सम्बन्ध में अनेक नियम थे, जिनका उनको अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता था; यथा—

(i) आदतें—धनी और निर्धन, उच्च और निम्न—सभी परिवारों के छात्रों को सादा और सरल जीवन व्यतीत करना पड़ता था। महाभारत और रामायण में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे यह पूर्णरूप से विदित हो जाता है कि राज-परिवारों के छात्रों को भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, जिनका सामना उनके निर्धन सहपाठी करते थे।

(ii) दिनचर्या—छात्रों को ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर संध्या, हवन आदि विभिन्न कार्य करने पड़ते थे। उसके पश्चात्, वे अपने पुराने पाठों को दोहराते थे और नये पाठों की तैयारी करते थे। मध्यान्ह में भोजन के लिए उनको अवकाश मिलता था। उसके उपरान्त वे फिर विद्याध्ययन में संलग्न हो जाते थे। सूर्य अस्त होने के समय वे भजन-पूजा करने के पश्चात् भोजन ग्रहण करते थे।

(iii) खान-पान—मनु के अनुसार, छात्र—दिन में केवल दो बार भोजन कर सकते थे—मध्यान्ह और सायंकाल के समय। उनको कम खाने का आदेश था, ताकि उनकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा न पड़े और वे रोग-ग्रस्त न हों। वे किसी भी दशा में माँस, मदिरा, मधु, मादक वस्तुओं और पान का प्रयोग नहीं कर सकते थे।

(iv) वेशभूषा—मनु के अनुसार, विभिन्न जातियों के छात्रों की वेशभूषा विभिन्न थी। प्रत्येक छात्र को मेखला धारण करनी पड़ती थी। ब्राह्मण की मेखला मूँज की, क्षत्रिय की तांत की और वैश्य की ऊन की होती थी। वे अपने शरीर के निम्न भाग को क्रमशः सन, रेशम और ऊन के वस्त्र से एवं ऊपरी भाग को क्रमशः काले मृग, चित्तीदार मृग और बकरे की खाल से ढकते थे। प्रत्येक छात्र के लिए यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य था। कोई भी छात्र—अंजन, सुगन्धि, छाते, जूतों और फूलमालाओं का प्रयोग नहीं कर सकता था।

(v) आचार-व्यवहार—प्राचीन काल में इस बात पर विशेष बल दिया जाता था कि छात्रों का आचार और व्यवहार उत्कृष्ट हो। अतः उन्हें मर्यादा, शिष्टाचार और आत्म-संयम के नियमों का अनुकरण करने का आदेश दिया जाता था। वे काम, क्रोध, मद, लोभ और दूषित विचारों से मुक्त रहकर, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे। वे अपने जीवन को पवित्र रखने के लिए नियमित रूप से हवन और संध्या करते थे। वे गाली-गलौज और चुगलखोरी की बुरी आदतों से दूर रहते थे। वे जुआ, नृत्य, संगीत और स्त्री के पास नहीं जा सकते थे। वे गुरु और वृद्धजनों का सम्मान करते थे।

17. गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Teacher-Pupil Relationship—प्राचीन भारतीय शिक्षा की सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ विशेषता—गुरु-शिष्य सम्बन्ध की थी। उनका सम्बन्ध किसी संस्था के माध्यम से नहीं, वरन् सीधा उन्हीं के मध्य था। इस सम्बन्ध का मुख्य आधार उनके पारस्परिक कर्त्तव्य थे, यथा—

(i) शिक्षक के प्रति छात्र के कर्त्तव्य—छात्र अपने शिक्षक का हृदय से सम्मान करते थे और उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। वे अपने गुरु के स्थान को

राजा, माता-पिता और देवता से किसी प्रकार भी निम्नतर नहीं मानते थे। वे अपने आचार्य की सेवा करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते थे। वे उसके परिवार के सभी कार्यों को करने में आनन्द का अनुभव करते थे।

(ii) छात्र के प्रति शिक्षक के कर्त्तव्य—वैदिक ऋषियों द्वारा गुरु को छात्र का बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पिता माना जाता था। अतः वह अपने छात्रों के प्रति अपने पुत्र का सा व्यवहार करता था। वह उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करने को सदैव प्रयत्न करता था। वह उन्हें ज्ञान प्रदान करता था, उनके चरित्र का उत्थान करता था, उनमें अच्छी आदतों का निर्माण करता था और उनके भोजन तथा वस्त्र का प्रबन्ध करता था। यदि कोई छात्र बीमार हो जाता था, तो वह उसकी सेवा करता था और औषधि की व्यवस्था करता था।

उपर्युक्त विवरण से विदित हो जाता है कि गुरु और शिष्य—पारस्परिक स्नेह, सम्मान, विश्वास और कर्त्तव्य की भावनाओं से संयुक्त थे। दोनों के जीवन का लक्ष्य एक ही था—ज्ञान का संरक्षण एवं संवर्धन करना और जीवन एवं आचरण में उसके महत्त्व को सिद्ध करना। निष्कर्ष रूप में, हम डॉ० ए० एस० अल्तेकर (A. S. Altekar) के शब्दों में कह सकते हैं—**"शिक्षक एवं छात्र के सम्बन्ध स्नेहपूर्ण तथा घनिष्ठ थे और उनके भावी जीवन में भी बने रहते थे।"**

18. दंड : Punishment—प्राचीन भारत में छात्रों को दण्ड देने की प्रथा थी। दण्ड के रूप—समझाना, बुझाना, उपदेश, उपवास आदि थे। शारीरिक दण्ड के विषय में शास्त्रकारों में मतभेद था। उदाहरणार्थ, **आपस्तम्ब** का मत था कि गुरु—छात्र से उपवास करवा सकता है और उसे अपने पास से दूर भेज सकता है। इसके विपरीत, **मनु** का मत था कि गुरु, रज्जु या पतली छड़ी से छात्र को शारीरिक दण्ड दे सकता है। सामान्य रूप से, छात्रों को शारीरिक दण्ड दिया जाता था, पर वह कठोर नहीं होता था।

19. बाह्य नियन्त्रण से मुक्ति : Freedom from External Control—प्राचीन भारत में शिक्षा पर किसी प्रकार का बाह्य नियन्त्रण नहीं था। राज्य, सरकार या कोई राजनीतिक दल उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। डॉ० पी० एन० प्रभु के अनुसार—**"प्राचीन भारत में शिक्षा—राज्य या सरकार या किसी दलबन्दी के किसी भी प्रकार के बाह्य नियन्त्रण से मुक्त थी।"**

"Education in ancient India was free from any external control like that of the State or the Government or any party politics."

—Dr. P. N. Prabhu : *Hindu Social Organization*, p. 134.

हमने प्राचीन भारतीय शिक्षा की जिन विशेषताओं का विवरण उपस्थित किया है, उनके आधार पर हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सुदूर अतीत में भी हमारे देश में शिक्षा की व्यवस्था गौरवमय थी। इस व्यवस्था का गुणगान करते हुए डॉ० पी० एन० प्रभु ने लिखा है—**"इसने शक्तिशाली व्यक्तियों का निर्माण किया, जिनकी मानसिक शक्तियाँ सुविकसित थीं और जिनकी ज्ञान-भावना पवित्र एवं क्रियाशील थी।"**

"It created strong personalities, whose mental powers were well developed and whose intellectual impulse was kept pure and alive."

—Dr. P. N. Prabhu : *op. cit.*, p. 130.

शिक्षा के प्रमुख दोष
(CHIEF DEFECTS OF EDUCATION)

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा-प्रणाली का संगठन किया गया, वह अनेक शताब्दियों तक अति अल्प परिवर्तनों के साथ चलती रही। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि इस शिक्षा-प्रणाली में अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्व विद्यमान थे। इन तत्त्वों ने भारतीयों की सब आवश्यकताओं की पूर्ति की और अनेक महान् विचारकों तथा सत्य के अन्वेषकों को जन्म दिया, जिसका बौद्धिक योगदान प्रत्येक दृष्टि से सराहनीय है।

किन्तु, जैसा कि **डॉ० अल्तेकर** का मत है, लगभग 500 ई० से भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में दोष प्रकट होने आरम्भ हो गये। समय की गति के साथ-साथ इन दोषों में वृद्धि होती चली गई, जिनके फलस्वरूप यह प्रणाली भारतीयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हो गई और इसका पतन आरम्भ हो गया। डॉ० एफ० ई० के शब्दों में—**"ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली रूढ़िबद्ध एवं औपचारिक हो गई और प्रगतिशील सभ्यता की आवश्यकता को पूर्ण करने में असमर्थ हो गई।"**

"The Brahmanic educational system become stereotyped and formal, and unable to meet the needs of a progressive civilization."

—Dr. F. E. Keay : *op. cit.* p. 181.

ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली अपने जिन दोषों के कारण भारतीयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में विफल हुई और उसका पतन आरम्भ हुआ, उनका वर्णन दृष्टव्य है—

1. लोकभाषाओं की उपेक्षा : Neglect of Vernacular—प्राचीन भारतीय शिक्षा में केवल संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन पर सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित था। फलतः लोकभाषाओं की उपेक्षा हुई और उनकी प्रगति न हो सकी।

2. धर्म-निरपेक्ष विषयों की उपेक्षा : Neglect of Secular Subjects—प्राचीन भारतीय शिक्षा में धर्म का आधारभूत स्थान था और सम्पूर्ण शिक्षा उससे सम्बद्ध थी। फलस्वरूप, धर्म-निरपेक्ष विषयों की बहुत सीमा तक उपेक्षा हुई। अतः उनका पर्याप्त विकास नहीं हुआ।

3. शूद्रों की शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of the Education of Shudras—प्राचीन भारत में शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अतः प्राचीन भारतीय शिक्षा के द्वार उनके लिए बन्द थे। इस प्रकार उनकी शिक्षा की न केवल उपेक्षा की गई, वरन् उनको शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित रखकर उनके प्रति घोर अन्याय किया गया।

4. जनसाधारण की शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of the Education of Masses—प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली ने जनसाधारण की शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की। इस सम्बन्ध में **डॉ० अल्तेकर** ने लिखा है—**"सम्भवतः संस्कृत पर अपना ध्यान केन्द्रित रखने और लोकभाषाओं की उपेक्षा करने के कारण हिन्दू-शिक्षा-प्रणाली, जनसाधारण की शिक्षा का विकास न कर सकी।"**

5. स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of Women's Education—प्राचीन भारत में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। किन्तु बालकों की शिक्षा के समान बालिकाओं को शिक्षा की व्यवस्था न करके स्त्री-शिक्षा की पर्याप्त मात्रा में उपेक्षा की गई। इस सन्दर्भ में डॉ० पी० एन० प्रभु ने लिखा है—**"ऐसा प्रतीत होता**

है कि हिन्दू-शिक्षा-योजना का निर्माण केवल भारत के पुत्रों के लिए किया गया था। इस योजना में भारत की पुत्रियों के लिए कोई स्थान नहीं जान पड़ता है।"

6. सांसारिक जीवन की उपेक्षा : Neglect of Worldly Life—शिक्षाशास्त्रियों के विचारानुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—व्यक्ति को पूर्ण जीवन के लिए तैयार करना है। इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा द्वारा व्यक्ति को लौकिक और पारलौकिक—दोनों जीवन के लिए तैयार किया जाना चाहिए। किन्तु जैसा कि डॉ० एफ० ई० केई ने लिखा है—**"ब्राह्मणीय शिक्षा में जीवन के व्यावहारिक कर्त्तव्यों और उसके लिए व्यक्ति को तैयार करने के प्रति घृणा की प्रवृत्ति थी।"**

इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि लौकिक पक्ष की उपेक्षा करके आध्यात्मिक पक्ष को महत्त्व दिया गया। फलस्वरूप, प्राचीन युग के व्यक्ति संसार एवं सांसारिक जीवन को असार मानने लगे और उनके प्रति उदासीन हो गये। अतः इस युग में व्यक्तियों की लौकिक प्रगति का मार्ग बहुत सीमा तक अवरुद्ध हो गया।

7. विचार-स्वातन्त्र्य का अभाव : Lack of Freedom of Thought—प्राचीन भारतीय शिक्षा में धर्म को अत्यधिक महत्त्व दिए जाने के कारण व्यक्तियों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई कि धर्मशास्त्रों में लिखी हुई सब बातें पूर्णतया सत्य हैं और उन्होंने जिन बातों को असत्य बताया है, वे कदापि सत्य नहीं हो सकती हैं। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप भारतीय समाज में अनेक अन्धविश्वासों और रूढ़िवादिताओं का प्रवेश हुआ।

8. हस्तकार्य व शारीरिक श्रम के प्रति घृणा : Hatred for Handwork & Physical Labour—प्राचीन भारतीय शिक्षा में धार्मिक शिक्षा की तुलना में लौकिक शिक्षा का स्थान बहुत निम्न था। फलस्वरूप, अध्ययन-केन्द्रों में लौकिक शिक्षा से सम्बन्धित हस्तकार्यों की शिक्षा को कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ। अतः उच्च वर्गों के छात्रों का, जो इन अध्ययन-केन्द्रों में शिक्षा ग्रहण करते थे, इन कार्यों से कोई सम्पर्क नहीं हुआ। ये कार्य निम्न वर्गों तक ही सीमित रहे, जिनको इनकी शिक्षा अपने परिवारों में प्राप्त होती थी। इन वर्गों के व्यक्तियों को हेय समझा जाता था। अतः उनके द्वारा किये जाने वाले हस्तकार्यों और शारीरिक श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा।

9. धर्म को अत्यधिक महत्त्व : Immense Importance of Religion—प्राचीन भारतीय शिक्षा में धर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। शिक्षा की सम्पूर्ण संरचना धार्मिक आदर्शों से निमज्जित थी। इन्हीं आदर्शों के अनुसार, शिक्षा के विषयों, उद्देश्यों और पाठ्यक्रमों को निर्धारित किया गया था। छात्रों के समय का अधिकांश भाग धर्म-शास्त्रों के अध्ययन और कर्मकांडों के सम्पादन में व्यतीत होता था। उनको निष्काम कर्म करने और अपनी इच्छाओं का दमन करने का उपदेश दिया जाता था। डॉ० एफ० केई के अनुसार—**"इस प्रकार की शिक्षा ने छात्रों में उच्च आदर्शों का तो समावेश किया, किन्तु शिक्षा की प्रगति में योग नहीं दिया।"**

10. नवीन धर्मों का अविर्भाव : Birth of New Religions—डॉ० एस० एन० मुकर्जी का विचार है—लगभग पाँचवीं शताब्दी के अन्त तक शिक्षा अधिकांश रूप में ब्राह्मणों तक ही सीमित रह गई थी और शिक्षा के व्यवसाय पर उनका एकमात्र अधिकार था। इस अधिकार को बनाए रखने के लिए, उन्होंने धर्म का सहारा लिया और उसमें जटिलता को

कूट-कूट कर भर दिया। इस जटिलता के परिणामस्वरूप धार्मिक कृत्यों और ब्राह्मणों द्वारा उनमें प्रयोग की जाने वाली संस्कृत भाषा का जनसाधारण के लिए कोई महत्त्व नहीं रह गया। वैदिक धर्म के प्रति जनसाधारण के इसी परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण दो नवीन धर्मों का आविर्भाव हुआ—बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षा में अनेक गम्भीर दोष थे, जिनके कारण वह कालान्तर में समयानुकूल न रह गई और उसका ह्रास आरम्भ हो गया। इन दोषों और इनके कारण होने वाले ह्रास को रोकने के विषय में डॉ० एफ० ई० केई ने निम्नांकित विचार लेखबद्ध किये हैं—

"प्राचीन भारतीय शिक्षा में अनेक दोष थे। इस शिक्षा को नवीन गति प्रदान करने और रूपान्तरित करने के लिए किसी प्रकार के नव जीवन की आवश्यकता थी।"

"The ancient Indian education had many defects and needed some new breathe of life to quicken it and transform it."

—**Dr. F. E. Keay** : *op. cit.*, 189.

आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व
(ACCEPTABLE FEATURES FOR MODERN EDUCATION)

प्राचीन भारतीय शिक्षा और आधुनिक भारतीय शिक्षा के मध्य अनेक शताब्दियों का अन्तर है। पर फिर भी, प्राचीन शिक्षा के अनेक तत्त्व हैं, जिनको सिद्धान्त और व्यवहार—दोनों दृष्टियों से आधुनिक शिक्षा में स्थान दिया जा सकता है। इस प्रकार के मुख्य तत्त्व अधोलिखित हैं—

1. आदर्शवादिता : Idealism—आज हम आधुनिक युग में निवास कर रहे हैं। किन्तु, हमें अपने पूर्वजों से जो सभ्यता और संस्कृति विरासत में मिली है, उन पर हमें आज भी गर्व है। हम आज भी धर्म, ईश्वर और निष्काम कर्म को महत्त्व देते हैं। हम आज भी धन की अपेक्षा चरित्र को, भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को और विज्ञान की अपेक्षा दर्शन को श्रेष्ठतर समझते हैं। आज जबकि सम्पूर्ण विश्व-धन, शक्ति, हिंसा और कूटनीति में आस्था रखता है, हम प्रेम, सत्य, अहिंसा, त्याग और तपस्या के समक्ष श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

उपर्युक्त सभी बातों का अभिप्राय यह है कि हम आज भी उस आदर्शवादिता को नहीं भूले हैं, जिसका प्राचीन शिक्षा द्वारा छात्रों के मन और मस्तिष्क में समावेश किया जाता था। इससे स्वाभाविक निष्कर्ष यही निकलता है कि प्राचीन आदर्शवादिता को आधुनिक शिक्षा में स्थान दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए। डॉ० महेशचन्द्र सिंघल ने राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित "भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है—**हम वैदिक कालीन शिक्षा की आदर्शवादिता को आधुनिक शिक्षा के एक मूल सिद्धान्त के रूप में ग्रहण कर सकते हैं और जीवन-निर्माण, चरित्र-निर्माण तथा सादा भोजन और उच्च विचार को शिक्षा के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में स्थान दे सकते हैं।"**

2. अनुशासन व गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Discipline & Teacher-Pupil Relationship—प्राचीन काल की छात्रों की अनुशासन की भावना और गुरु एवं शिष्य का मधुर

सम्बन्ध विश्वविख्यात है। आज इन दोनों बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि शैक्षिक वातावरण अत्यन्त विषम हो चुका है और अनुशासनहीनता का ताण्डव नृत्य सर्वत्र हो रहा है। छात्रों में अनुशासन की भावना का विकास और वैदिक कालीन गुरु-शिष्य सम्बन्ध की पुनर्स्थापना करके ही इन दोनों दूषणों से मुक्ति पाने की आशा की जा सकती है।

मानव-सम्बन्धों को घनिष्ठता प्रदान करने के लिए पारस्परिक स्नेह और सम्मान की भावनाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। छात्र, शिक्षा तभी ग्रहण कर सकते हैं और शिक्षक, अध्ययन-कार्य में तभी रुचि ले सकते हैं, जब दोनों सुन्दर सम्बन्ध के सूत्र से आबद्ध हों। यह सत्य है कि आज के छात्र और शिक्षक प्राचीन युग के आदर्श पर नहीं पहुँच सकते हैं, पर फिर भी दृढ निश्चय से उसकी ओर अग्रसर होकर बहुत-कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है। अतः छात्रों और शिक्षकों का उस आदर्श की दिशा में अग्रसर होना केवल वांछनीय ही नहीं, वरन् अत्यन्त आवश्यक भी है। पर यह तभी सम्भव हो सकता है, जब छात्र-गुरु-शिष्य सम्बन्धी वैदिक आदर्श के प्रति निष्ठावान् बनें और शिक्षक उस आदर्श के अनुसार सरस्वती-साधना में लीन होकर सरल जीवन व्यतीत करे।

3. शान्त वातावरण : Peaceful Atmosphere—प्राचीन काल की सभी शिक्षा-शालायें नगर के कोलाहल और विषाक्त वातावरण से दूर किसी शान्त और रमणीक स्थान में स्थित थीं। आधुनिक युग में नगरीकरण के प्रभाव के कारण सभी व्यक्तियों में नगरों में निवास करने की प्रवृत्ति सबल हो गई है। ऐसी दशा में आज की शिक्षा-संस्थाओं की नगरों में पृथकता सम्भव नहीं है। पर फिर भी, उनका निर्माण नगरों के कोलाहल और गन्दगी से दूर किसी शान्त, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर और प्राकृतिक वातावरण में किया जा सकता है।

इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ न केवल छात्रों के शारीरिक और मानसिक विकास में योग देंगी, वरन् उनकी नगरों के दिन-प्रतिदिन के झगड़ों, राजनैतिक कुचक्रों और अवांछनीय प्रवृत्तियों से रक्षा भी करेंगी।

4. अध्ययन के विषय : Subjects of Study—आधुनिक भारतीय शिक्षा में अनेक विषयों को स्थान दिया गया है, पर संस्कृत की प्रायः पूर्ण उपेक्षा की गई है। वस्तुतः संस्कृत भाषा और साहित्य में शान्ति, मानवता और विश्व-भ्रातृत्व की ऐसी अमूल्य निधियाँ हैं, जिनको न केवल भारत के पाठ्यक्रम में, वरन् सब देशों के पाठ्यक्रमों का अभिन्न अंग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वैदिक पाठ्यक्रम से ऐसे अनेक तत्त्व ग्रहण किये जा सकते हैं, जो आधुनिक भारत के नैतिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्कर्ष में अद्वितीय योग दे सकते हैं। डॉ० महेशचन्द्र सिंघल का मत है—**"यदि इन बातों की अपेक्षा की जाती है, तो भारतीय शिक्षा, पश्चिम का थोथा अनुकरण मात्र रह जायेगी, जिसमें मौलिकता की झलक नहीं मिल सकेगी।"**

5. शिक्षण विधि व शिक्षा-सिद्धान्त : Teaching Method & Principles of Education—प्राचीन भारत की शिक्षण-विधि में श्रवण, मनन, चिन्तन, स्मरण, प्रवचन, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, वाद-विवाद आदि का प्रयोग किया जाता था। अतः यह शिक्षण-विधि आज भी विभिन्न विषयों के पठन-पाठन में प्रयोग किये जाने के योग्य है और उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

प्राचीन काल के अनेक सिद्धान्त आज भी उतने ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं, जितने कि वे प्राचीन काल में थे। इस प्रकार के कुछ सिद्धान्त हैं—छोटी कक्षाएँ, व्यस्त दिनचर्या, व्यक्तिगत ध्यान और अच्छी आदतों का निर्माण।

6. छात्रों का सरल जीवन : Simple Life of Students—वैदिक कालीन भारत के छात्र सदा, सरल और संयमी जीवन व्यतीत करते थे। आधुनिक भारत में उनका जीवन भले ही अक्षरशः अनुकरणीय न हो, पर ग्रहणीय अवश्य है। आज के छात्रों के जीवन में आमूल परिवर्तन हो गया है। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य, शिक्षा प्राप्त करना नहीं है, अपितु सिनेमा देखना, हड़तालें करना, अश्लील साहित्य पढ़ना, नशीली वस्तुओं का प्रयोग करना और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना हो गया है।

ऐसी परिस्थिति में प्राचीन काल के छात्रों के उदाहरण को आज के छात्रों के समक्ष रखकर उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना अनिवार्य है। **डॉ० महेशचन्द्र सिंघल के शब्दों में—"सिद्धान्त रूप में हमें इतना तो मानना ही चाहिए कि आज भले ही सिर मूँड़ने, लँगोटी बाँधने तथा स्त्री जाति के सदस्यों के दर्शन मात्र से बचकर रहने की तो आवश्यकता नहीं है, लेकिन सादा और संयमी जीवन, नियमित दिनचर्या तथा दुर्व्यसनों से बचकर रहना वांछनीय है।"**

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss the main defects of education prevalent in India in the Vedic age. How far have these defects been removed from the modern education of India ?
   भारत में वैदिक काल में प्रचलित शिक्षा के मुख्य दोषों की विवेचना कीजिए। भारत की आधुनिक शिक्षा में इन दोषों का निवारण कहाँ तक हुआ है ?
2. What are the chief characteristics of education in ancient India ? To what extent can they be utilized in evolving an effective national system of education in the country today ?
   प्राचीन भारत में शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं ? वर्तमान भारत में एक प्रभावशाली राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली विकसित करने के लिए किस सीमा तक उनका प्रयोग किया जा सकता है ?
3. What were the chief aims of education in ancient India ? How far can they prove useful for modern education in our country ?
   प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य क्या थे ? वे हमारे देश की वर्तमान शिक्षा के लिए कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ?
4. Mention at least five important ideals of ancient Indian education and discuss their utility for Indian education today.
   प्राचीन भारतीय शिक्षा के कम से कम पाँच महत्त्वपूर्ण आदर्शों का उल्लेख कीजिए और आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए उनकी उपयोगिता बताइए।
5. Write notes on—(a) Gurukula System, (b) Teacher-Pupil Relationship, (c) Organization of Education in the Vedic Age.
   टिप्पणियाँ लिखिये—(अ) गुरुकुल-पद्धति, (ब) गुरु-शिष्य-सम्बन्ध, (स) वैदिक-कालीन शिक्षा-व्यवस्था।

2

बौद्ध-शिक्षा

BUDDHIST-EDUCATION

(500 B. C. — 1200 A. D.)

"Buddhist education rightly regarded is but a phase of the ancient Hindu or Brahmanical system of education."
—Dr. R. K. Mookerji.

विषय-प्रवेश

लगभग ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी से जन-जीवन की परवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण वैदिककालीन अथवा ब्राह्मणीय शिक्षा में विशृंखलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। भारत के सौभाग्य से उसके एक शताब्दी पूर्व ही महात्मा गोतम बुद्ध ने इस देश की भूमि पर अवतरित होकर शिक्षा को समयानुकूल बनाने के विचार से उसके कलेवर में परिवर्तन करके बौद्ध-शिक्षा को जन्म दिया। इस शिक्षा के विषय में डॉ० एफ० ई० केई ने लिखा है—**"बौद्ध-शिक्षा 1,500 वर्ष से अधिक प्रचलित रही और उसने ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास किया जो ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति की प्रतिद्वन्द्वी थी, पर अनेक बातों में उसके सदृश थी।"**

"For over fifteen hundred years Buddhist education was in vogue, and developed a system of education which was a rival of the Brahmanic system though in many ways similar to it."

—Dr. F. E. Keay : *Indian Education in Ancient and Later Times*, p. 85.

शिक्षा की व्यवस्था

(ORGANIZATION OF EDUCATION)

बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ था। ये मठ न केवल धर्म के वरन् शिक्षा के भी केन्द्र थे और शिक्षा देने का कार्य उनमें निवास करने वाले भिक्षुओं द्वारा किया जाता था। इन तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है—**"बौद्ध-मठ, बौद्ध-शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र थे। बौद्ध-संसार अपने मठों से पृथक् या स्वतन्त्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं देता था। धार्मिक और लौकिक, सब प्रकार की शिक्षा, भिक्षुओं के हाथ में थी।"**

प्राचीन काल के समान बौद्ध काल में भी केवल प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी और शिक्षा के यही दो स्तर थे। हम इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा

(PRIMARY EDUCATION)

1. सामान्य परिचय—हमें 'जातक कथाओं' से ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों को ही नहीं, वरन् सब जातियों के बालकों को उपलब्ध थी। यह शिक्षा मठों में दी जाती थी और आरम्भ से पूर्णतया धार्मिक थी। किन्तु, जब कुछ समय के उपरान्त ब्राह्मणों ने प्रतिद्वन्द्वी शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करके, उनमें लौकिक शिक्षा देनी आरम्भ कर दी, तब मठों में भी इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। पाँचवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी-यात्री फाह्यान (Fa-Hien) के लेखों में इस बात का उल्लेख मिलता है।

2. प्रवेश व अवधि—सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री, आइसांग (I-Tsing) के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करने की आयु 6 वर्ष की थी। इस शिक्षा की अवधि साधारणतः 6 वर्ष की थी।

3. पाठ्यक्रम—सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री हुएनसांग (Hiuen-Tsing) ने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यकम का वर्णन इस प्रकार किया है—बालकों को प्रथम 6 माह में 'सिद्धिरस्तु' (Siddhirastu) नामक बालपोथी पढ़नी पड़ती थी। इस पोथी में 12 अध्याय और वर्णमाला के 49 अक्षर थे, जिनको विभिन्न क्रम में रखकर 300 से अधिक श्लोकों की रचना की गई थी। 16 माह के बाद बालकों को अग्रांकित पाँच विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी—शब्द-विद्या, तर्क-विद्या, चिकित्सा-विद्या, अध्यात्म-विद्या और शिल्प-स्थान-विद्या (Grammar, Logic, Medicine, Metaphysics & Arts and crafts)। इस प्रकार पाठ्यक्रम में धार्मिक और लौकिक दोनों विषयों को स्थान दिया गया था।

4. शिक्षण-विधि—एलबर्ट फिटके (Albert Fytche) के अनुसार, सामान्य शिक्षण-विधि इस प्रकार थी—शिक्षक, लकड़ी की तख्ती पर वर्णमाला के अक्षरों को लिखता था और उनका उच्चारण करता था। बालक उसके उच्चारण का अनुकरण करते थे। इस प्रकार, जब कुछ समय के बाद उनको अक्षरों का ज्ञान हो जाता था, तब वे उनको लिखते थे। पाठ्य-विषय के शिक्षण का अध्यापक आगे-आगे बोलता था और बालक उसके कथन को उस समय तक दोहराते थे, जब तक उनको पाठ्य-विषय कण्ठस्थ नहीं हो जाता था। इस प्रकार, शिक्षण विधि पूर्णतया मौखिक थी।

5. शिक्षा का माध्यम—मठ-विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम, जनसाधारण की भाषा पाली थी, न कि ब्राह्मणीय शिक्षालायों की संस्कृति।

2. उच्च शिक्षा

(HIGHER EDUCATION)

1. सामान्य परिचय—उच्च शिक्षा के द्वार सभी धर्मों और जातियों के बालकों के लिए खुले हुए थे। इस शिक्षा के प्रमुख केन्द्र—बौद्ध-मठ थे, पर सब मठों में समान विषयों

की शिक्षा नहीं दी जाती थी। इस शिक्षा की प्रशंसा में डॉ० ए० एस० अल्तेकर ने अग्रांकित शब्द लिपिबद्ध किये हैं—**"मठों ने उच्च शिक्षा में अपनी दक्षता से कोरिया, चीन, तिब्बत और जावा जैसे सुदूर देशों के छात्रों को आकर्षित करके, भारत की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति में वृद्धि की।"**

"The monasteries raised the international status of India by the efficiency of their higher education, which attracted students from distant countries like Korea, China, Tibet and Java."

—**Dr. A. S. Altekar** : *Education in Ancient India*, p. 234.

2. प्रवेश व अवधि—उच्च शिक्षा का आरम्भ प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् होता था। अतः बालक इसका आरम्भ साधारणतया 12 वर्ष की आयु में करते थे। अध्ययन की अवधि 12 वर्ष की थी ताकि छात्र प्राचीन परम्परा के अनुसार 25 वर्ष की आयु में किसी व्यवसाय को ग्रहण करके, गृहस्थ के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

3. पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम दो भागों में विभक्त था—धार्मिक और लौकिक। धार्मिक पाठ्यक्रम—भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए था। इसका मुख्य उद्देश्य—उनको निर्वाण प्राप्त करने और धर्म का प्रचार करने की योग्यता प्रदान करना था। उनको धार्मिक और जीवनोपयोगी—दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। मुख्य धार्मिक विषय थे—बौद्ध धर्म, साहित्य, त्रिपिटक, विनय, धम्म आदि। जीवनोपयोगी विषयों में मठों और विहारों के निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान, दान की सम्पत्ति का प्रबन्ध और हिसाब-किताब आदि सम्मिलित थे।

लौकिक पाठ्यक्रम साधारण नागरिकों के लिए था। इसका मुख्य उद्देश्य—उनको सुयोग्य नागरिक बनाना एवं आर्थिक और सामाजिक जीवन के लिए तैयार करना था। उनके पाठ्यक्रम में अग्रलिखित विषय सम्मिलित थे—धर्म, दर्शन, साहित्य, तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र चिकित्सा-शास्त्र आदि।

4. शिक्षा का माध्यम—शिक्षा का माध्यम सामान्य रूप से पाली भाषा थी, पर वैदिक साहित्य की शिक्षा, संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। इसके अतिरिक्त, देश की अन्य प्रचलित भाषाओं का भी प्रयोग किया जाता था। इसका कारण **महात्मा बुद्ध** की भिक्षुओं को यह अनुमति थी—**"ओ भिक्षओ ! मैं तुममें से प्रत्येक को अपनी भाषा में बुद्ध की शिक्षाओं को सीखने की अनुमति देता हूँ।"**

5. शिक्षा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय—बौद्ध-काल में शिक्षा के मुख्य केन्द्र—मठ और विहार थे। इनसे छात्रावास सम्बद्ध थे। छात्रों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की सुविधा प्राप्त थी। कुछ मठों और विहारों ने विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित होकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की; यथा—

(i) नदिया विश्वविद्यालय—यह विश्वविद्यालय पूर्वी बंगाल में नदिया नामक स्थान में था। 11वीं शताब्दी में राजा लक्ष्मण सेन के संरक्षण में यह शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र हो गया।

(ii) वल्लभी विश्वविद्यालय—यह विश्वविद्यालय पूर्वी काठियावाड़ में वला नामक स्थान में था। 7वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक पश्चिमी भारत का प्रमुख शिक्षा-केन्द्र था।

(iii) विक्रमशिला विश्वविद्यालय—यह विश्वविद्यालय उत्तरी मगध में गंगा नदी के तट पर एक अत्यन्त सुन्दर पहाड़ी पर स्थित था। इसमें 108 भिक्षु-शिक्षक और 3,000 छात्र थे। इसे बख्तियार खिलजी ने सन् 1203 ई० में नष्ट कर दिया।

(iv) तक्षशिला विश्वविद्यालय—यह विश्वविद्यालय आधुनिक रावलपिंडी से लगभग 20 मील पश्चिम में था। यह अनेक शताब्दियों तक पहले वैदिक शिक्षा का और उसके बाद बौद्ध-शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। यह 600 ई० पू० में अपनी प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर था। वैयाकरण पाणिनी, राजनीतिज्ञ चाणक्य, अर्थशास्त्री कौटिल्य महात्मा बुद्ध के व्यक्तिगत चिकित्सक जीवक एवं सम्राट् चन्द्रगुप्त और पुष्यमित्र इसी विश्वविद्यालय की उपज थे। पाँचवीं शताब्दी के मध्य में बर्बर हूणों ने इसका सदैव के लिए विनाश कर दिया।

(v) नालन्दा विश्वविद्यालय—यह विश्वविद्यालय पटना से लगभग 50 मील दूर दक्षिण में था। यह लगभग एक मील लम्बा और आधा मील चौड़ा था एवं चहारदीवारी से घिरा हुआ था। इसमें 8 बड़े सभा-भवन और 3,000 अध्ययन-कक्ष थे। इसका विशाल पुस्तकालयी मंजिल का था। इसमें 10 से अधिक सरोवर थे, जिनमें छात्र, जल-क्रीड़ा करते थे। जब अपनी पराकाष्ठा पर था, तब इसमें लगभग, 1,500 शिक्षक एवं 10,000 छात्र थे और प्रतिदिन 100 भाषण होते थे, इसमें चीन, जावा, ब्रह्मा आदि सुदूर देशों के छात्र अध्ययन करने आते थे। इस प्रकार, इसने अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण कर लिया। सन् 1203 में बख्तियार खिलजी ने प्राचीन भारत की सभ्यता के प्रतीक इस विश्वविद्यालय को धराशायी कर दिया।

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
(OTHER SPHERES OF EDUCATION)

1. स्त्री शिक्षा : Women's Education—वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ई० पू० से स्त्री-शिक्षा की अवनति आरम्भ हो गई थी। महात्मा बुद्ध के कारण इस शिक्षा को नवजीवन प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य, आनन्द की प्रार्थना स्वीकार करके, स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। इसके फलस्वरूप, स्त्री-शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ। बौद्ध-काल की सुशिक्षित स्त्रियों में अग्रांकित के नाम उल्लेखनीय हैं—बौद्ध-धर्म की प्रसिद्ध प्रचारिकायें, सुभा, अनुपमा एवं सुमेधा; कवियत्री के रूप में कालिदास के बाद मानी जाने वाली विजयंका और लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजी जाने वाली सम्राट अशोक की बहिन संघमित्र।

उपरिअंकित उदाहरण इस बात का संकेत देते हैं कि स्त्रियों ने संघ में प्रवेश करके उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त की और कुछ क्षेत्रों में पुरुषों से प्रतिद्वन्द्विता करके उनसे समानता रखने का प्रमाण दिया। किन्तु, यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि स्त्री-शिक्षा की सामान्य रूप से प्रगति हुई है। इसकी पुष्टि में चार कारण दिये जा सकते हैं। पहला, बौद्ध धर्म में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से निम्नतर है। अतः सामान्य स्त्रियों की शिक्षा के प्रति ध्यान नहीं दिया गया। दूसरा, संघों में स्त्रियों का प्रवेश भिक्षुओं की आज्ञा पर निर्भर था क्योंकि भिक्षुओं को स्त्रियों से दूर रहने का उपदेश दिया जाता था, इसलिए उन्होंने बहुत ही कम स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा दी। तीसरा, संघों

में प्रवेश करने का अधिकार विशेष रूप से समाज के कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियों एवं बालिकाओं को प्राप्त हुआ। अतः इन्हीं की शिक्षा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, सामान्य स्त्रियों की शिक्षा को नहीं। चौथा, बौद्ध मठ में प्रवेश करने वाली स्त्रियाँ—भिक्षुणियाँ कहलाती थीं और उनके लिए अलग मठों की स्थापना की गई थी। पर उन्होंने भिक्षुओं के समान अपने मठों में स्त्रियों और बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने का कार्य नहीं किया।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बौद्ध धर्म ने कुलीन और व्यावसायिक स्त्रियों की शिक्षा को, जिनकी संख्या प्रायः नगण्य थी, प्रोत्साहन दिया, पर सामान्य स्त्रियों की शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया। **डॉ० ए० एस० अल्तेकर** का अग्रांकित वाक्य में अमर सत्य है—**"स्त्री-शिक्षा को बौद्ध धर्म से किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त न हो सकी।"**

2. व्यावसायिक शिक्षा : Professional Education—बौद्ध-शिक्षा धर्म-प्रधान थी। किन्तु, बौद्ध साहित्य में हमको इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि भिक्षुओं और जनसाधारण को व्यावसायिक शिक्षा की अत्युत्तम सुविधाएँ प्राप्त थीं। हम इस शिक्षा के प्रमुख अंगों पर प्रकाश डाल रहे हैं; यथा—

(i) हस्तशिल्पों की शिक्षा : Education in Handicrafts—"महावग्ग" (Mahavagga) में हमें एक स्थान पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि बौद्ध-काल में भिक्षुओं को अपने मठों में विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्पों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उदाहरणार्थ, उनको सूत कातने, कपड़ा बुनने और वस्त्र सीने की शिक्षा दी जाती थी, ताकि वे वस्त्र-सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की स्वयं पूर्ति कर सकें।

(ii) लाभप्रद व्यवसायों की शिक्षा : Education in Useful Occupations—बौद्ध धर्म के अनुयायियों और जनसाधारण के लिए अनेक लाभप्रद व्यवसायों की शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी, ताकि वे अपनी जीविका का सरलता से उपार्जन कर सकें। इस प्रकार के कुछ व्यवसाय थे—कृषि, वाणिज्य, लेखन-कला, पशु-पालन और हिसाब-किताब।

(iii) भवन निर्माण-कला, मूर्तिकला व चित्रकला की शिक्षा : Education in Architecture, Sculpture & Painting—बौद्ध-कला में भवन-निर्माण-कला की विशिष्ट शिक्षा उपलब्ध होने के कारण इस कला का आश्चर्यजनक विकास हुआ। इस कला के बौद्ध विहार और स्तूप एवं नालन्दा और विक्रमशिला की विशाल इमारतें—भवन निर्माण-कला की सजीव प्रमाण हैं। इस कला के साथ-साथ मूर्तिकला और चित्रकला की भी, शिक्षा की सुविधाओं के कारण, असाधारण प्रगति हुई। अजन्ता और अलोरा के भित्ति-चित्र, मूर्तिकला और चित्रकला इस प्रगति के आज भी साक्षी हैं।

(iv) प्राविधिक व वैज्ञानिक शिक्षा : Technical & Scientific Education—हमें 'मिलिन्द पान्हा' (Milinda Panha) में बौद्ध-कला में प्रचलित 19 'सिप्पाओं' अर्थात् 'शिल्पों' (Sippas or Shilps) का वर्णन मिलता है। इनका सम्बन्ध प्राविधिक और वैज्ञानिक शिक्षा से था। इनमें से अग्रांकित 10 की शिक्षा तक्षशिला में प्रदान की जाती थी—आखेट, चिकित्सा, धनुर्विद्या, इन्द्र-जाल (Magic Charm), हस्ति-ज्ञान (Elephant Love), भविष्य कथन, शारीरिक लक्षणों का अर्थ, मृत व्यक्तियों को जीवित करने का मंत्र, सब पशुओं की बोलियाँ समझने का ज्ञान और इन्द्रिय-सम्बन्धी सब कार्यों पर नियन्त्रण करने की कला।

इस प्रकार, जैसा कि **डॉ० आर० के० मुकर्जी** ने लिखा है—**"सिप्पाओं के ज्ञान अर्थात् प्राविधिक और वैज्ञानिक शिक्षा की माँग, सामान्य शिक्षा या धार्मिक अध्ययन की माँग से कम नहीं थी।"**

(v) चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा : Medical Education—बौद्ध-काल में चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस शिक्षा का मुख्य केन्द्र तक्षशिला विश्वविद्यालय था और इसकी अवधि 7 वर्ष की थी। जीवक, चरक, धन्वन्तरि आदि महान् आयुर्वेदाचार्य, बौद्ध युग की ही देन हैं।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ
(CHIEF FEATURES OR CHARACTERISTICS OF EDUCATION)

बौद्ध धर्म के आदर्श, उद्देश्य और सिद्धान्त—वैदिक धर्म से बहुत-कुछ भिन्न थे। अतः बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए एक विशिष्ट शिक्षा-प्रणाली का संगठन किया गया। हम इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं; यथा—

(1) पब्बज्जा संस्कार : Pabbajja Ceremony—'पब्बज्जा' का शाब्दिक अर्थ है—'बाहर जाना' (Going out)। इस संस्कार का अभिप्राय था कि बालक अपने परिवार और पूर्व स्थिति का परित्याग करके, संघ में प्रवेश करता था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस संस्कार का सम्बन्ध केवल उन व्यक्तियों से था, जिनके जीवन का उद्देश्य—बौद्ध-भिक्षु बनना था। यह संस्कार 8 वर्ष की आयु से पहले सम्पन्न नहीं हो सकता था।

'विनय पिटक' (Vinaya Pitaka) में 'पब्बज्जा संस्कार' का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"बालक अपने सिर के बाल मुँड़ाता था, पीले वस्त्र धारण करता था, प्रवेश करने वाले मठ के भिक्षुओं के चरणों को अपने मस्तक से स्पर्श करता था और उनके सामने पालती मार कर भूमि पर बैठ जाता था। तदुपरान्त, मठ का सबसे बड़ा भिक्षु उससे तीन बार यह शपथ लेने को कहता था—"बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।"

जब बालक यह शपथ ले लेता था, तब भिक्षु उसको अग्रांकित 10 आदेश देता था—1. चोरी मत करना, 2. जीव-हत्या मत करना, 3. असत्य भाषण मत करना, 4. अशुद्ध आचरण मत करना, 5. वर्जित समय पर आहार मत करना, 6. मादक वस्तुओं का प्रयोग मत करना, 7. शृंगार की वस्तुओं का प्रयोग मत करना, 8. विना दिए हुए किसी वस्तु को ग्रहण मत करना, 9. सोना, चाँदी और बहुमूल्य वस्तुओं का दान मत लेना, 10. नृत्य, संगीत, तमाशे आदि के पास जाने का प्रयास मत करना।

इन आदेशों के पश्चात् बालक "नव-शिष्य", "श्रमण" या "सामनेर" (Novice or Samanera) कहा जाता था और अपने द्वारा चुने जाने वाले भिक्षु से 12 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करता था।

(2) उपसम्पदा संस्कार : Upasampada Ceremony—नवशिष्य के रूप में 22 वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् छात्र के लिए मठ को छोड़ना अनिवार्य था। पर वह 'उपसम्पदा संस्कार' सम्पादित करके पूर्ण भिक्षु की स्थिति प्राप्त कर सकता था और बौद्ध-संघ का स्थायी सदस्य बन सकता था।

"उपसम्पदा संस्कार"—बौद्ध-संघ के कम-से कम 10 भिक्षुओं की उपस्थिति में होता था। उसमें नवशिष्य का आचार्य भी होता था। वह अन्य भिक्षुओं को नवशिष्य का परिचय देता था। तत्पश्चात् भिक्षु—नवशिष्य से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते थे। उसके उत्तरों को सुनने के बाद वे बहुमत से यह निर्णय करते थे कि नवशिष्य को "उपसम्पदा" ग्रहण करने का अधिकार है या नहीं। इस प्रकार का निर्णय यह सिद्ध करता है कि "उपसम्पदा संस्कार" में जनतन्त्रीय प्रणाली का प्रयोग किया जाता था।

यदि निर्णय—नवशिष्य के पक्ष में होता था, तो उसे भिक्षु के रूप में संघ में प्रवेश करने की अनुमति दे दी जाती थी। इस अवसर पर उसे संघ से अग्रांकित 8 नियमों का पालन करने का आदेश दिया जाता था—1. वृक्षों के नीचे वास करना। 2. साधारण वस्त्र धारण करना। 3. सात्विक भोजन का प्रयोग करना। 4. भोजन के लिए भिक्षा माँगना। 5. औषधि के रूप में गौ-मूत्र सेवन करना। 6. चोरी और जीव-हत्या मत करना। 7. अलौकिक शक्तियों का दावा मत करना। 8. स्त्री से यौन-सम्बन्ध स्थापित मत करना।

टिप्पणी—बालकों और पुरुषों के समान बालिकाओं और स्त्रियों को भी "पब्बज्जा" और "उपसम्पदा" का अधिकार प्राप्त था।

(3) विद्यार्थीत्व : Studentship—बौद्ध-शिक्षा के द्वार सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के व्यक्तियों के लिए खुले हुए थे। केवल चांडालों को इस शिक्षा से वंचित रखा गया था। छात्रों में राजाओं, व्यापारियों, दर्जियों और मछली पकड़ने वालों के पुत्र थे। इनमें अधिकांश संख्या—ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों के छात्रों की थी।

(4) विद्यार्थियों का चुनाव : Selection of Students—सिद्धान्त रूप में, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार समाज के सभी व्यक्तियों को प्राप्त था। किन्तु अग्रांकित 10 वर्गों के किसी व्यक्ति का विद्यार्थित्व के लिए चुनाव नहीं किया जाता था—1. जो नपुंसक हो। 2. जो दास या ऋणी हो। 3. जो राजा की नौकरी में हो। 4. जो डाकू घोषित किया गया हो। 5. जो कारावास से भाग आया हो। 6. जिसका कोई अंग भंग हो। 7. जिसके शरीर का कोई भाग विकृत हो। 8. जिसको राज्य से कोई दण्ड मिला हो। 9. जिसने अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त न की हो। 10. जिसको क्षय, कोढ़, खुजली आदि कोई छूत का रोग हो।

(5) शिक्षा आरम्भ करने की आयु : Age at the Commencement of Education—**डॉ० ए० एस० अल्तेकर** के अनुसार—शिक्षा आरम्भ करने की न्यूनतम आयु 8 वर्ष की थी। यह आयु उन्हीं बालकों के लिए निर्धारित की गई थी, जो संघ में प्रवेश करने का निश्चय कर लेते थे। संघ में प्रवेश करने वाला बालक उसके किसी भिक्षु को अपने शिक्षक के रूप में चुनता था।

(6) अध्ययन की अवधि : Period of Study—"पब्बज्जा" के बाद अध्ययन की अवधि 12 वर्ष की और "उपसम्पदा" की 10 वर्ष की थी। "पब्बज्जा संस्कार" 8 वर्ष की आयु में होता था। इस प्रकार, शिक्षा की पूर्ण अवधि 30 वर्ष थी।

(7) अध्ययन के विषय : Subjects of Study—अध्ययन के विषयों के सम्बन्ध में **डॉ० ए० एस० अल्तेकर** ने लिखा है—यद्यपि मठों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा, बौद्धों द्वारा आयोजित और संगठित की गई थी, तथापि अध्ययन के विषयों का स्वरूप न तो

पूर्णतया धार्मिक था और न पूर्णतया लौकिक। शिक्षा में बौद्ध दर्शन की प्रधानता अवश्य थी, पर हिन्दू और जैन धर्मों के अध्ययन के प्रति भी पर्याप्त ध्यान दिया गया था। शिक्षा केवल धर्म, दर्शन और तर्कशास्त्र तक ही सीमित नहीं थी, वरन् संस्कृत साहित्य, न्याय-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र आदि विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी, ताकि छात्र—नागरिकों के रूप में राज्य और समाज के लिए उपयोगी बनकर उनकी सेवा कर सकें।

(8) शिक्षा की पद्धति : Method of Education—बौद्धों ने ब्राह्मणों की वैयक्तिक शिक्षा-पद्धति का अनुकरण न करके, सामूहिक शिक्षा-पद्धति का प्रयोग किया। शिक्षा-केन्द्रों में विभिन्न भिक्षुओं द्वारा छात्रों को सामूहिक रूप में विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

(9) शिक्षण की विधि : Method of Teaching—शिक्षण-विधि प्रायः मौखिक थी। इसके सामान्य अंग थे—भाषण, प्रवचन और प्रश्नोत्तर। शिक्षण-विधि की एक विशेषता यह थी कि उसमें देशाटन, प्रकृति-निरीक्षण और विशेषज्ञों के व्याख्यानों को महत्त्व दिया जाता था। एक अनोखी विशेषता को **गन्नार मिरडल** ने इन शब्दों में अंकित किया है—**"शास्त्रीय विवादों को प्रोत्साहित किया जाता था। इस प्रकार की विद्वत्-सभाएँ—बौद्ध उच्च शिक्षा की एक अनोखी विशेषता थी।"**

"Scholastic debates were encouraged. Such learned assemblies were a novel feature of Buddhist higher education."

—**Gunnar Myrdal** : *Asian Drama*, Volume III, p. 1629.

(10) छात्र-जीवन सम्बन्धी नियम : Rules Governing Student Life—छात्रों के जीवन के सम्बन्ध में अनेक नियम थे, जिनका उनको अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता था, यथा—

(i) भोजन—छात्रों का भोजन अत्यन्त साधारण था। वे दिन में केवल तीन बार भोजन कर सकते थे। वे और उनके शिक्षक अपने रात्रि-भोजन के लिए प्रायः कहीं न कहीं निमंत्रित रहते थे।

(ii) वस्त्र—छात्रों को कम और सामान्य जनता से भिन्न प्रकार के वस्त्र पहनने का आदेश था। वे साधारणतः तीन वस्त्र धारण करते थे, जिनको समग्र रूप में 'तिसिवरा' (Ticivara) कहा जाता था।

(iii) स्नान—छात्रों को सरोवरों में स्नान करते समय कुछ निश्चित नियमों का पालन करना पड़ता था; जैसे—जल में खेल न करना, एक-दूसरे पर पानी न फेंकना और अपने शरीर को किसी वस्तु या सरोवर में स्नान करने वाले किसी छात्र के शरीर से न रगड़ना।

(iv) भिक्षाटन—छात्रों को प्रातःकाल भिक्षाटन के लिए जाना पड़ता था। वे वैदिक युग के ब्रह्मचारियों के समान बोलकर नहीं, वरन् मौन रूप में ही भिक्षा की याचना कर सकते थे। वे उतनी भिक्षा माँग सकते थे, जितनी उनके लिए आवश्यक थी।

(v) अनुशासन—छात्र-अनुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता था। छात्र को फूल-पत्तियाँ तोड़ने, सम्पत्ति रखने, सार्वजनिक स्थानों में तमाशे देखने, हानिप्रद खेलों में

भाग लेने, शरीर को अलंकृत करने, गाली-गलौज और झगड़ा करने का पूर्ण निषेध था। जो छात्र निषिद्ध कार्यों को करते थे, उनको दण्ड दिया जाता था। डॉ० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है कि एक बार एक संघ के सब सदस्यों को अनुशासनहीनता के अपराध के कारण संघ से निकाल दिया गया।

(11) गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Teacher-Pupil Relationship—बौद्ध-काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध वैदिक काल की ही भाँति पवित्र और स्नेहपूर्ण था। इस सम्बन्ध का मुख्य आधार उनके पारस्परिक कर्त्तव्य थे।

छात्र अपने शिक्षक से पहले उठकर उसके लिए दाँतौन और मुँह धोने के लिए जल लाकर रख देता था। वह अपने शिक्षक के बैठने के स्थान को साफ करता था। जब शिक्षक आता था, तब वह उसे कोई पेय पदार्थ देता था। वह शिक्षक के बर्तनों को साफ करता था और उसके साथ भिक्षाटन के लिए जाता था। वह शिक्षक से पहले लौटकर, उसके भोजन की व्यवस्था करता था। यदि शिक्षक बीमार हो जाता था, तो वह उसकी सेवा में उपस्थित रहता था।

केवल छात्र के ही शिक्षक के प्रति कर्त्तव्य नहीं थे, वरन् शिक्षक के भी छात्र के प्रति कर्तव्य थे। शिक्षक का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य यह था कि वह प्रत्येक सम्भव विधि का प्रयोग करके छात्र का मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करे। इसके अतिरिक्त वह छात्र के भोजन, वस्त्र, भिक्षा-पात्र, रहन-सहन आदि की व्यवस्था करता था। छात्र के अस्वस्थ हो जाने पर, वह उसकी सेवा करता था और उसके लिए औषधि का प्रबन्ध करता था।

इस प्रकार, छात्र और शिक्षक में एक-दूसरे के प्रति प्रेम, आदर और विश्वास की भावनाएँ निहित थीं। डॉ० ए० एस० अल्तेकर के शब्दों में—**"छात्र और उसके शिक्षक के सम्बन्ध पुत्र और पिता के समान थे। वे पारस्परिक सम्मान, विश्वास और प्रेम के द्वारा एक-दूसरे से आबद्ध थे।"**

"The relations between the novice and his teacher were filial in character, they were united together by mutual reverence, confidence and affection." —**Dr. A. S. Altekar** : *op. cit.* 61-62.

(12) खेल-कूद व शारीरिक व्यायाम : Games, Sports & Physical Exercise—बौद्ध काल में केवल छात्रों के मानसिक और नैतिक विकास को ही नहीं, वरन् उनके शारीरिक विकास को भी महत्व दिया जाता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के खेल-कूद और शारीरिक व्यायाम निर्धारित थे। 'छल्लवग्ग' (Challavagga) में हमें इनकी एक विस्तृत सूची मिलती है; यथा—कुश्ती लड़ना, मुक्केबाजी करना, भूमि जोतना, तीर चलाना, तुरही बजाना, रथों की दौड़ करना, इत्यादि। आई-सिंग (I-Tsing) ने नियमित रूप से टहलने जाने का उल्लेख किया है।

(13) सामान्य विद्यालय : Ordinary Schools—भारत में सामान्य विद्यालयों की परम्परा स्थापित करने का श्रेय बौद्ध धर्म को प्राप्त है। इसका कारण यह है कि बौद्ध मठ, धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त सामान्य शिक्षा के भी केन्द्र थे। बालक घर पर अपने माता-पिता के साथ रहकर शिक्षा को प्राप्त कर सकते थे। इस प्रकार, ये मठ बहुत कुछ

सामान्य विद्यालयों की भाँति थे। इस सन्दर्भ में **गन्नार मिरडल** ने लिखा है—**"मठ-विद्यालय अधिकतर सामान्य विद्यालयों की भाँति कार्य करने लगे, क्योंकि बालक अपने परिवारों के साथ रह कर शिक्षा ग्रहण कर सकते थे।"**

(14) लोकभाषाओं को प्रोत्साहन : Impetus to Vernaculars—महात्मा बुद्ध के आदेशानुसार, भिक्षुओं को उनकी स्वयं की भाषाओं में शिक्षा दी जाती थी। इसका परिणाम बताते हुए **डॉ० आर० के० मुकर्जी** ने लिखा है—**"बौद्ध धर्म ने देश की लोकभाषाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया और बौद्ध-शिक्षा संस्थाओं में संस्कृत के बजाय लोकभाषाओं ने शिक्षा के माध्यम का स्थान ग्रहण किया।"**

(15) सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा : Popular Elementary Education—बौद्ध शिक्षा आरम्भ में धार्मिक थी और उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित थीं, जो बौद्ध धर्म को अंगीकार करके, भिक्षु बनते थे। किन्तु, जैसा कि डॉ० ए० एस० अल्तेकर का विचार है, बौद्ध धर्म को जनप्रिय बनाने के लिए बौद्धों ने मठों में सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य लगभग पहली शताब्दी के आरम्भ से शुरू कर दिया। इस विचार के समर्थन में डॉ० एफ० ई० केई ने लिखा है—**"बौद्ध मठों ने पर्याप्त सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की।"**

"The Buddhist monasteries came to supply a good deal of popular elementary education." —**Dr. F. E. Keay** : *op. cit.*, p. 106.

(16) शिक्षा का जनतन्त्रीय आधार : Democratic Basis of Education—बौद्धों ने शिक्षा को जनतन्त्रीय आधार प्रदान करके, चाण्डालों के अतिरिक्त सभी जातियों के बालकों और बालिकाओं को शिक्षा के समान अवसर प्रदान किये। उनके इस उदार कार्य की सराहना करते हुए, **डॉ० आर० के० मुकर्जी** ने लिखा है—**"बौद्ध-शिक्षा-केन्द्रों में विभिन्न वर्गों, विभिन्न जातियों और विभिन्न परिस्थितियों के सब बालक बिना किसी भेदभाव के पारिवारिक सम्पर्क स्थापित करते थे और ज्ञान का अर्जन करते थे।"**

(17) शिक्षा-संस्थाओं का जनतन्त्रीय संगठन : Democratic Organization of Educational Institutions—बौद्ध शिक्षा-केन्द्रों का संगठन जनतन्त्रीय आधार पर किया गया था। **डॉ० महेश चन्द्र सिंघल** ने इसके स्वरूप का वर्णन अग्रांकित वाक्यों में किया है—"शिक्षा-केन्द्रों का संचालन जनतन्त्र के सिद्धान्तों पर होता था। एक विद्वान् भिक्षु—शिक्षा-केन्द्रों का प्रधान संचालक नियुक्त किया जाता था। प्रधान की अधीनता में विभिन्न विषयों के महोपाध्याय होते थे। इन शिक्षा-केन्द्रों को तत्कालीन राजाओं तथा धनिकों से सहायता मिलती थी, किन्तु इनके प्रबन्ध में किसी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप नहीं था।"

(18) संगठित शिक्षा-संस्थाओं का उदय : Rise of Organised Educational Institutions—वैदिक काल में संगठित शिक्षा-संस्थाओं का अभाव था, क्योंकि शिक्षा प्रदान करने का कार्य व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा किया जाता था। इसके विपरीत बौद्ध काल में शिक्षा प्रदान करने का कार्य संगठित शिक्षा-संस्थाओं द्वारा किया जाना आरम्भ हुआ। डॉ० ए० एस० अल्तेकर का मत है कि ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योंकि बौद्ध मठ, जिन्होंने इस कार्य का भार सम्हाला, वे पहले से ही एक धार्मिक सम्प्रदाय के रूप

में संगठित थे। अपने इस मत के आधार पर डॉ० अल्तेकर ने लिखा है—"यह कहना उचित है कि संगठित सार्वजनिक शिक्षा-संस्थाओं का उदय, बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण हुआ।"

शिक्षा के प्रमुख दोष
(CHIEF DEFECTS OF EDUCATION)

डॉ० एफ० ई० केई के अनुसार—"बौद्ध-शिक्षा के आदर्शों और प्रयोग का ब्राह्मणीय शिक्षा आदर्शों और प्रयोग से घनिष्ठ सम्बन्ध था।"

"The Buddhist educational ideals and practice were closely connected with those of Brahmanism." —Dr. F. E. Keay : *op. cit.* p. 109.

डॉ० केई के उक्त कथन को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा में कतिपय दोष थे, उसी प्रकार बौद्ध-शिक्षा में भी थे। हम इन दोषों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा—

(1) **बौद्ध धर्म का पतन : Decline of Buddhism**—शिक्षा के केन्द्रों के रूप में मठों और विहारों का जनतन्त्रीय आधार पर संगठन किया गया था। पर उसके संगठन में कुछ समय के उपरान्त शिथिलता आ गई। फलस्वरूप, पृथक् मठों में रहते हुए भी भिक्षुओं और भिक्षुणियों का सम्पर्क आरम्भ हो गया। इस सम्पर्क ने व्यभिचार को जन्म दिया, जो कुछ समय के पश्चात् बौद्ध धर्म के पतन का कारण बना।

(2) **देश की दुर्बलता : Weakness of the Country**—अहिंसा में विश्वास करने के कारण बौद्ध धर्म ने "अहिंसा परमो धर्मः" के सिद्धान्त का पोषण किया। अतः बौद्ध काल में युद्ध-कला, सैनिक विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र निर्माण की शिक्षा के प्रति लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश—सैनिक दृष्टि से दुर्बल हो गया। अतः जब भारत पर मुसलमानों के आक्रमण आरम्भ हुए, तब इस देश के निवासी सैनिक शक्ति से उनका सामना न कर सकने के कारण पददलित हुए और कई शताब्दियों तक यवनों के दास रहे।

(3) **हस्तकार्य के प्रति घृणा : Hatred for Handwork**—मठों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक थी। उसमें लौकिक विषयों को तो स्थान दिया गया था, किन्तु हस्तकार्यों से सम्बन्धित शिक्षा की उपेक्षा की गई थी। अतः जैसा कि डॉ० महेश चन्द्र सिंघल ने लिखा है—"हस्तकार्यों को हेय समझा जाने लगा, जिससे उच्च वर्गों के लोगों ने इसे पूर्णतः छोड़ दिया। इस प्रकार, श्रम की गुरुता की भावना का विनाश हुआ।"

(4) **स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of Women's Education**—बौद्ध शिक्षा से केवल धनी और कुलीन परिवारों की स्त्रियाँ ही लाभान्वित हुईं। जहाँ तक सामान्य स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न था, उसके लिए बौद्धों ने कोई कदम नहीं उठाया। इसका दोष मुख्यतः भिक्षुणियों पर था, क्योंकि जिस प्रकार बालकों और पुरुषों की शिक्षा का भार भिक्षुओं पर था, उसी प्रकार बालिकाओं और स्त्रियों की शिक्षा का उत्तरदायित्व भिक्षुणिओं पर था। किन्तु भिक्षुणियों ने अपने मठों में किसी प्रकार की शिक्षा का कार्यक्रम आयोजित नहीं किया। अतः डॉ० एफ० ई० केई का मत है—"यह कल्पना करना उचित न होगा कि बौद्ध-धर्म ने भारत में स्त्रियों की शिक्षा के लिए कोई विशेष कार्य किया।"

(5) **लौकिक जीवन की उपेक्षा : Neglect of Wordly Life**—धर्म-प्रधान होने के कारण बौद्ध-शिक्षा में आध्यात्मिक विकास पर विशेष बल दिया जाता था। बौद्धों और अबौद्धों को जीवन को मिथ्या और संसार को क्षण-भंगुर मानने की निरन्तर शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार, बौद्ध धर्म, जो शिक्षा प्रदान करता था, वह व्यक्तियों को इस जीवन और संसार के लिए तैयार न करके, दूसरे संसार के लिए तैयार करती थी। इस प्रसंग में डॉ० एफ० ई० केई ने लिखा है—"बौद्ध धर्म ने जीवन का ऐसा आदर्श उपस्थित किया, जिसमें इस क्षण-भंगुर संसार के लिए घृणा थी और इसलिए इस धर्म ने शिक्षा द्वारा व्यक्ति को दूसरे संसार के लिए तैयार किया।"

(6) **कट्टर धार्मिक विचारों का समावेश : Infusion of Puritanical Ideas**—बौद्ध-शिक्षा पर धर्म की इतनी गहरी छाप थी कि इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले व्यक्ति—धर्म की सीमा से बाहर किसी बात की कल्पना नहीं कर सकते थे। इस प्रकार बौद्धों ने अपनी शिक्षा द्वारा जन-साधारण के मस्तिष्क में धार्मिक कट्टरता का समावेश कर दिया। डॉ० ए० एस० अल्तेकर ने ठीक ही लिखा है—"जन-साधारण के मस्तिष्क में शनैः-शनैः कट्टर धार्मिक विचारों का समावेश करने के लिए बौद्ध लोग उत्तरदायी हैं।"

आधुनिक भारतीय शिक्षा को देन
(CONTRIBUTION TO MODERN INDIAN EDUCATION)

आधुनिक भारतीय शिक्षा को बौद्ध-शिक्षा का योगदान अत्यन्त व्यापक और अभिनन्दनीय है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे अनेक कार्य आयोजित किए गए हैं, जो बौद्ध-शिक्षा के अभिन्न अंग थे; यथा—

1. सामान्य विद्यालयों का आयोजन।
2. सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा का आयोजन।
3. स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा का आयोजन।
4. खेल-कूद और शारीरिक व्यायाम का आयोजन।
5. प्राविधिक और वैज्ञानिक शिक्षा का आयोजन।
6. व्यावसायिक और लाभप्रद विषयों की शिक्षा का आयोजन।
7. लौकिक और सामान्य विषयों की शिक्षा प्रदान करने का आयोजन।
8. बहु-शिक्षक और सामूहिक शिक्षा की प्रणालियों का आयोजन।
9. उच्च स्तर पर सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक शिक्षा का आयोजन।
10. लोकसभाओं को प्रोत्साहन और उनको शिक्षा का माध्यम बनाने का आयोजन।
11. शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अध्ययन की निश्चित अवधि का आयोजन।
12. शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश-सम्बन्धी न्यूनतम आयु, नियमों और परीक्षा का आयोजन।
13. माता-पिता और अभिभावकों के साथ रहने वाले बालकों के लिए शिक्षा की सुविधाओं का आयोजन।
14. सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के बालकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का आयोजन।

बौद्ध व वैदिक शिक्षा : समानता व असमानता
(BUDDHIST & VEDIC EDUCATION : SIMILARITY & DISSIMILARITY)

समानता : Similarity—डॉ० ए० एस० अल्तेकर के शब्दों में—**"जहाँ तक सामान्य शैक्षिक सिद्धान्त या प्रयोग की बात है, हिन्दुओं और बौद्धों में कोई अन्तर नहीं था। दोनों प्रणालियों के समान आदर्श थे और दोनों समान विधियों का अनुसरण करती थीं।"**

"There was no fundamental difference between Hindus and Buddhists as far as the general educational theory or practice was concerned. Both systems had similar ideals and followed similar methods."

—**Dr. A. S. Altekar** : *op. cit.*, p. 228.

वस्तुतः वैदिक शिक्षा का अनुकरण करके ही बौद्ध-शिक्षा का संगठन किया गया था। अतः दोनों प्रणालियों में समानताएँ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। मुख्य समानताओं का विवरण द्रष्टव्य है—

1. दोनों प्रणालियों में शिक्षा बाह्य नियन्त्रण से मुक्त थी।
2. दोनों प्रणालियों में शिक्षण-विधि मुख्यतः मौखिक थी।
3. दोनों प्रणालियों में छात्रों की दिनचर्या में एकरूपता थी।
4. दोनों प्रणालियों में शारीरिक दण्ड साधारणतया वर्जित था।
5. दोनों प्रणालियों में धार्मिक और नैतिक जीवन को प्रमुखता दी जाती थी।
6. दोनों प्रणालियों में शिक्षा-सम्बन्धी संस्कारों को महत्त्व दिया जाता था।
7. दोनों प्रणालियों में शिक्षा, भोजन और निवास की निःशुल्क व्यवस्था थी।
8. दोनों प्रणालियों में गुरु-शिष्य सम्बन्ध पवित्र, स्नेहपूर्ण और आध्यात्मिक थे।
9. दोनों प्रणालियों में छात्रों को अपने भोजन के लिए भिक्षा माँगने जाना पड़ता था।
10. दोनों प्रणालियों में शिक्षा आरम्भ करने की आयु और अध्ययन की अवधि निर्धारित थी।
11. दोनों प्रणालियों में सदाचार, सरल जीवन और उच्च विचारों पर बल दिया जाता था।
12. दोनों प्रणालियों में शिक्षा की संस्थाएँ—नगरों के कोलाहल से दूर प्रकृति के शान्त वातावरण में स्थित थीं।

असमानता : Dissimilarity—बौद्ध धर्म का उदय, वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ था। अतः वैदिक काल और बौद्ध काल की शिक्षा में कुछ असमानताओं का होना स्वाभाविक था। मुख्य असमानताओं का विवरण द्रष्टव्य है—

1. वैदिक काल में सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। इसके विपरीत, बौद्ध काल में इस शिक्षा की व्यवस्था थी।
2. वैदिक काल में शिक्षा का माध्यम, संस्कृत थी। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा का माध्यम, लोकभाषायें थीं।

3. वैदिक काल में सामान्य विद्यालयों का प्रचलन नहीं था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में इन विद्यालयों का प्रचलन था।
4. वैदिक काल में शिक्षक केवल ब्राह्मण थे। इसके विपरीत, बौद्ध काल में विभिन्न जातियों के भिक्षु, शिक्षक थे।
5. वैदिक काल में शिक्षा का स्वरूप, व्यक्तिगत और पारिवारिक था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा का स्वरूप संस्थागत और सामूहिक था।
6. वैदिक काल में शिक्षा-संस्थायें, एकतन्त्रवाद के सिद्धान्त पर आधारित थीं। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा-संस्थायें जनतन्त्रवाद के सिद्धान्त पर आधारित थीं।
7. वैदिक काल में शिक्षा के केन्द्र—आश्रम और गुरुकुल थे। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा के केन्द्र—मठ, विहार और सुसंगठित शिक्षा-संस्थाएँ थीं।
8. वैदिक काल में केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा के द्वार सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के लिए खुले हुए थे।
9. वैदिक काल में छात्रों का जीवन सादा और तपोमय था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में छात्रों का जीवन सादा पर सुविधापूर्ण था, क्योंकि उनको जीवन-सम्बन्धी सब सुख और सुविधायें उपलब्ध थीं।
10. वैदिक काल में गुरु की श्रेष्ठता और प्रधानता थी। इसके विपरीत, बौद्ध काल में गुरु का महत्त्व कम हो गया था, क्योंकि भिक्षु के रूप में मठ में प्रवेश करने के बाद छात्र पूर्ण स्वतन्त्रता और जीवन-सम्बन्धी सब अधिकारों का उपभोग करता था।

आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व
(ACCEPTABLE FEATURES FOR MODERN EDUCATION)

यद्यपि बौद्धकालीन शिक्षा का भारत में लोप हो चुका है, तथापि इसके कुछ तत्त्व आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए ग्रहणीय हैं; यथा—

(1) छात्रों का जीवन : Students' Life—बौद्ध काल में छात्रों के जीवन के दो मुख्य आदर्श थे—सादगी और श्रेष्ठ विचार। इन आदर्शों के बावजूद उनके लिए तपस्यापूर्ण जीवन के बजाय सुख-सुविधापूर्ण जीवन को अच्छा माना जाता था। इसलिए, उनको भोजन, वस्त्र, निवास, चिकित्सा आदि की सुविधायें प्रदान की गई थीं।

आधुनिक भारत में उस मध्य मार्ग का अनुसरण सर्वथा उचित प्रतीत होता है। छात्रों को आधुनिक आविष्कारों से प्राप्त होने वाली सुख-सुविधाओं से वंचित न करके, सादगी और श्रेष्ठ विचारों के आदर्शों को प्राप्त करने के लिए अनुप्राणित किया जा सकता है।

(2) छात्रों के अधिकार : Student's Rights—बौद्ध काल में जब छात्र को भिक्षु के रूप में मठ में प्रवेश करने की आज्ञा मिल जाती थी, तब उसे पूर्ण स्वतन्त्रता और जीवन-सम्बन्धी सभी अधिकार प्राप्त हो जाते थे।

आधुनिक भारतीय शिक्षा में इस तत्त्व का अत्यन्त महत्त्व है। छात्रों को अपनी शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्धित सभी कार्यों में भाग लेने की स्वतन्त्रता और अधिकार होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा में इस तत्त्व को समाविष्ट करके अनेक समस्याओं का समाधान

किया जाता है। डॉ० महेश चन्द्र सिंघल के शब्दों में—"आज भारतीय विश्वविद्यालयों के समस्त उपकुलपतियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि शिक्षा के विभिन्न पक्षों में, जिनमें प्रशासन भी शामिल है, किस सीमा तक छात्रों को सम्मिलित किया जाय और उन्हें अधिकार प्रदान किये जाएँ।"

(3) अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र : Centre of International Education—बौद्ध काल में भारत अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र था। सुदूर देशों से आने वाले छात्र, अध्ययन समाप्त करके अपने देशों को लौटते थे और वहाँ दया, प्रेम, अहिंसा, बौद्ध धर्म, विश्व-बन्धुत्व और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का संदेश फैलाते थे।

हमारा देश आज भी प्रेम, शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों का उपासक माना जाता है। अतः भारत को एक बार फिर अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बनाकर इन सिद्धान्तों का विश्व में व्यापक प्रचार किया जा सकता है। डॉ० महेश चन्द्र सिंघल के अनुसार—"शान्ति, अहिंसा, प्रेम और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त विश्व में फैलाने का कार्य भारतीय शिक्षा और विश्वविद्यालयों के द्वारा आज भी किया जा सकता है।"

(4) शिक्षा-संस्थाओं का जनतन्त्रीय संगठन : Democratic Organization of Educational Institutions—बौद्ध काल में शिक्षा-संस्थायें बाह्य नियन्त्रण से मुक्त थीं और उनका संगठन जनतन्त्रीय आधार पर किया गया था। आज हमारे देश में ऐसी सहस्रों शिक्षा-संस्थायें हैं, जो न तो बाह्य नियन्त्रण से मुक्त हैं और न जिनका संगठन ही जनतन्त्रीय है। इन संस्थाओं का स्वरूप बौद्ध काल की शिक्षा-संस्थाओं के अनुरूप बनाया जाना वांछनीय है।

इस स्वरूप को अंकित करते हुए डॉ० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है—"बौद्ध-प्रणाली में शिक्षा, बिहार या मठ में दी जाती थी, जिसमें सामूहिक जीवन, भ्रातृत्व भावना और जनतन्त्र के लिए अवसर प्रदान होता था।"

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe the main characteristics of Buddhist education and trace out the chief contribution of Buddhist system of education to modern education.
   बौद्ध-शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए और आधुनिक शिक्षा को बौद्ध शिक्षा-प्रणाली की मुख्य देनों का उल्लेख कीजिए।
2. "Buddhist education shows several radical departures from Brahmanic." Discuss and point out the similarities between the two systems of education.
   "बौद्ध-शिक्षा अनेक महत्त्वपूर्ण बातों में ब्राह्मणीय शिक्षा से भिन्न है।" विवेचन कीजिए और शिक्षा की दोनों प्रणालियों में समानतायें बताइए।
3. Write short notes on—(a) Organization of Education, (b) Popular Elementary Education, (c) Features acceptable for modern Indian education.
   टिप्पणियाँ लिखिए—(अ) शिक्षा का संगठन, (ब) सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा, (स) आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व।

3

मुस्लिम-शिक्षा

MUSLIM-EDUCATION

(1200—1700)

> "There cannot be said to have been any systematic and consistent educational policy among the Muslim kings before the Mughals." —T. N. Siqueira.

विषय-प्रवेश

भारत की अतुलित सम्पत्ति से आकृष्ट होकर, मुसलमानों ने इस देश पर आठवीं शताब्दी में अपने आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। किन्तु, उनके आक्रमणों का असली तूफान महमूद गजनी के समय में आरम्भ हुआ, जिसने सन् 1,000 ई० से 1,026 ई० तक भारत पर लगभग 17 आक्रमण किये। उसके आक्रमणों का मुख्य ध्येय—इस देश की सम्पत्ति को लूटकर गजनी को वैभवशाली बनाना था, न कि यहाँ मुस्लिम शासन्त्र की स्थापना करना। अतः वह प्रत्येक आक्रमण के बाद लूट का माल लेकर स्वदेश को लौट जाता था।

महमूद ग़ज़नी के बहुत समय पश्चात् सन् 1192 ई० में मुहम्मद ग़ौरी ने दिल्ली के अन्तिम राजपूत राजा, पृथ्वीराज चौहान को पराजित करके, भारत में मुस्लिम शासन का शिलान्यास किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त, भारत पर क्रमशः गुलाम, ख़िलजी, तुग़लक, सैयद, लोदी और मुग़ल वंश ने सन् 1757 ई० तक शासन किया। उस वर्ष क्लाइव ने प्लासी के युद्ध में विजयी होकर, भारत में अंग्रेजी शासन का इतिहास आरम्भ किया।

इस प्रकार, लगभग 550 वर्ष तक भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। उन्होंने यहाँ एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात किया, जिसे "मध्यकालीन मुस्लिम-शिक्षा-प्रणाली" कहा जा सकता है। इस प्रणाली के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए डॉ० एफ० ई० केई ने लिखा है—"मुस्लिम शिक्षा एक विदेशी प्रणाली थी, जिसका भारत में प्रतिरोपण किया गया और जो ब्राह्मणीय शिक्षा से अति अल्प सम्बन्ध रखकर, अपनी नवीन भूमि में विकसित हुई।"

शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श
(AIMS & IDEALS OF EDUCATION)

मुसलमानों ने भारत पर अनेक शताब्दियों तक शासन किया, पर इस सम्पूर्ण अवधि में उनकी स्थिति अपनी और अपने राज्य की सुरक्षा के लिए सशस्त्र सैनिकों की-सी थी। ऐसी स्थिति में उनका ध्यान, शिक्षा पर पूर्णरूप से केन्द्रित न होना, कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। फिर, जिन मुस्लिम शासकों का भारत पर आधिपत्य रहा, उनमें से कुछ उदार एवं सहिष्णु और कुछ अनुदार एवं असहिष्णु थे। उदाहरणार्थ, बख्तियार, अलाउद्दीन, फिरोज तुग़लक और औरंगज़ेब इतने कट्टर और अनुदार थे कि उनका एकमात्र ध्येय—हिन्दुओं की शिक्षा और संस्कृति के केन्द्रों का विनाश करके, मुस्लिम शिक्षा और संस्कृति का प्रसार करना था। इसके विपरीत, अल्तमश, मुहम्मद तुग़लक, अकबर और शाहजहाँ के समान कुछ ऐसे मुस्लिम शासक भी थे, जिन्होंने शिक्षा के प्रति अगाध रुचि प्रकट की और उसे अपना संरक्षण प्रदान करके, उसके विस्तार में प्रशंसनीय योग दिया।

शिक्षा के प्रति मुस्लिम शासकों के इन विरोधी दृष्टिकोणों के कारण सम्पूर्ण मुस्लिम युग में शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शों में समरूपता नहीं मिलती है। परन्तु फिर भी, इस्लाम धर्म के सच्चे बन्दे होने के कारण सभी मुसलमान शासकों ने शिक्षा के कुछ ऐसे उद्देश्य और आदर्श निर्धारित किये, जिनमें निश्चित एकरूपता थी। हम इन उद्देश्यों और आदर्शों का संक्षिप्त विवरण लेखबद्ध कर रहे हैं, यथा—

1. ज्ञान का प्रसार : Spread of Learning—मुस्लिम-शिक्षा का पहला उद्देश्य—इस्लाम धर्म के अनुयायियों में ज्ञान का प्रसार करना था। मुहम्मद साहब ने ज्ञान को अमृत बताया था और कहा था कि ज्ञान ही निजाम अर्थात् मुक्ति का साधन है। ज्ञान के प्रकाश में आलोकित होकर ही व्यक्ति—धर्म और अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य में अन्तर कर सकता है। अतः अपने अनुयायियों को मुहम्मद साहब का उपदेश था—**"दान में धन देने की अपेक्षा अपने बच्चों को शिक्षा देना कहीं अधिक अच्छा है। छात्रों के कलम की स्याही, शहीदों के खून से भी अधिक पवित्र है।"**

मुहम्मद साहब के इस उपदेश को कार्य-रूप में परिणत करना, मुस्लिम शासकों ने अपना सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य माना। अतः उन्होंने मुसलमानों के मस्तिष्क को ज्ञान के आलोक से प्रकाशित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया।

2. इस्लाम का प्रसार : Spread of Islam—मुस्लिम-शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—इस्लाम का प्रसार करना था। मुसलमान अपने धर्म का विस्तार करना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं। उनका विश्वास है कि काफिरों से इस्लाम धर्म को अंगीकार करवाने वाला मुसलमान, ग़ाज़ी होता है। इस विश्वास से प्रेरित होकर, मुसलमान शासकों ने विभिन्न विधियों का प्रयोग करके, भारत के कोने-कोने में इस्लाम धर्म को फैलाने का प्रयत्न किया।

इन विधियों में से एक विधि थी—शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों को इस्लाम के सिद्धान्तों से अवगत कराना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए देश के विभिन्न स्थानों में मकतबों और मदरसों की स्थापना की गई, जिनमें धार्मिक शिक्षा का स्थान सर्वोपरि था। मकतबों में

कुरान की आयतों को कण्ठस्थ करना अनिवार्य था। मदरसों में दर्शन, साहित्य और इतिहास की शिक्षा धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर दी जाती थी। अतः जैसा कि डॉ० यूसुफ हुसेन ने लिखा है—**"मुस्लिम शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति—धर्म की पृष्ठभूमि में बोलते और विचार करते थे।"**

3. मुस्लिम संस्कृति का प्रसार : Spread of Muslim Culture—मुस्लिम शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—मुस्लिम संस्कृति का प्रसार करना था। मुसलमान, भारत में दूसरे देशों से आए थे। अतः उनकी और हिन्दुओं की संस्कृति में प्रत्येक दृष्टि से विषमता थी। इस विषमता का अन्त करने के लिए मुसलमानों ने शिक्षा को माध्यम बनाया। उनकी धारणा थी कि वे शिक्षा के द्वारा भारतवासियों को अपनी भाषा, प्रथाओं, आचार-विचार और सामाजिक नियमों से प्रभावित करके, अपने धर्म का अवलम्बी बना लेंगे।

4. धार्मिकता का समावेश : Infusion of Religiousness—मुस्लिम-शिक्षा का चौथा उद्देश्य—मुसलमानों में धार्मिकता का समावेश करना था। मजूमदार, रायचौधरी व दत्त के शब्दों में—**"भारत में मुस्लिम राज्य, धर्म-राज्य था, जिसका अस्तित्व सिद्धान्त रूप में धर्म की आवश्यकताओं के कारण उचित था।"**

"The Muslim State in India was a theocracy, the existence of which was theoretically justified by the need of religion."—**Majumdar, Ray-Chaudhuri & Datta :** *An Advanced History of India*, p. 391.

धर्म की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए मुसलमानों में धार्मिकता की भावना को समाविष्ट करना अनिवार्य था। यही कारण था कि मकतबों और मदरसों को साधारणतया मसजिदों से सम्बद्ध किया गया, जहाँ प्रतिदिन सामूहिक नमाज़ एक सामान्य बात थी। मकतबों और मदरसों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों में इस धार्मिक वातावरण द्वारा धार्मिकता का समावेश किया जाता था। साथ ही, उनको अपने जीवन में धर्म के महत्त्व और गौरव से परिचित कराया जाता था।

5. विशिष्ट नैतिकता का समावेश : Infusion of Distinct Morality—मुस्लिम-शिक्षा का पाँचवाँ उद्देश्य—व्यक्तियों में इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार विशिष्ट नैतिकता का समावेश करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति में शिक्षा से पर्याप्त सहायता मिली। मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं के द्वार मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों के लिए समान रूप से खुले हुए थे। अतः शिक्षा के द्वारा उनमें मुस्लिम नैतिकता के उन आदर्शों का समावेश किया जाता था, जो हिन्दुओं के आदर्शों से पूर्णतया भिन्न थे। अनेक हिन्दुओं ने मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं में ज्ञान का अर्जन करके, मुस्लिम संस्कृति और जीवन-विधि में अपना विश्वास प्रकट किया।

6. चरित्र का निर्माण : Formation of Character—मुस्लिम-शिक्षा का छठवाँ उद्देश्य—व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना था। मुहम्मद साहब ने चरित्र के निर्माण पर अतिशय बल दिया था। उनका कहना था कि इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार उत्तम चरित्र का निर्माण करके ही व्यक्ति—जीवन में सफलता हस्तगत कर सकता है। अतः मकतबों और मदरसों में छात्रों में अच्छी आदतों और उत्तम चरित्र का निर्माण करने के लिए शिक्षकों द्वारा निरन्तर प्रयास किया जाता था।

7. सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति : Achievement of Worldly Prosperity—मुस्लिम शिक्षा का सातवाँ उद्देश्य—व्यक्तियों को सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त करने के योग्य बनाना था। इस्लाम धर्म में कर्मों के अनुसार व्यक्ति के पुनर्जन्म का कोई स्थान नहीं है। अतः यह धर्म पारलौकिक जीवन की चर्चा न करके, केवल इहलौकिक जीवन का ही उल्लेख करता है। इसलिए, मुसलमानों का विश्वास है कि उनका जीवन केवल सांसारिक ही है और इसमें सभी प्रकार के सुखों एवं ऐश्वर्यों का उपभोग करना चाहिए।

मुसलमानों की इस आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए मुस्लिम शासकों ने राज्य के निम्नतम पदों से लेकर उच्चतम पदों तक केवल सुशिक्षित व्यक्तियों को ही नियुक्त किया। इसकी पुष्टि करते हुए जाफ़र ने लिखा है—**"ज्ञान का अत्यधिक सम्मान किया जाता था और विद्वान् मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण देश में प्रेम और सम्मान था। राज्य ने भी उनको प्रत्येक सम्भव विधि से प्रोत्साहित किया। न्यायाधीशों, कानून-वेत्ताओं और धर्माधिकारियों का इसी वर्ग के मनुष्यों में से चुनाव किया जाता था।"** अतः यह स्वाभाविक था कि इन पदों को प्राप्त करने के लिए न केवल मुसलमान, वरन् हिन्दू भी मुस्लिम शिक्षा ग्रहण करने के लिए उत्कंठित हो गये।

8. मुस्लिम श्रेष्ठता की स्थापना : Establishment of Muslim Supremacy—मुस्लिम-शिक्षा का आठवाँ और अन्तिम उद्देश्य हिन्दुओं को मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित करके, भारत में मुस्लिम श्रेष्ठता को सुदृढ़ आधार पर स्थापित करना था। मुस्लिम शासक इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे। शिक्षा ही वह साधन था, जिसके द्वारा हिन्दुओं के विचारों और दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्तन करके, इनको भारत में मुस्लिम शासन का दृढ़ स्तम्भ बनाया जा सकता था। अतः शिक्षा के द्वारा हिन्दुओं के मस्तिष्क में मुस्लिम आदर्शों और सिद्धान्तों को समाविष्ट करने का पूरा-पूरा उद्योग किया गया। अकबर ने अपनी शिक्षा-नीति का निर्माण मुख्यतः इसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किया था।

मुगल सम्राटों से पूर्व, मुस्लिम शासकों की शिक्षा की कोई निश्चित नीति नहीं थी। वे अपनी व्यक्तिगत रुचियों और आवश्यकताओं के अनुसार, शिक्षा के उद्देश्य में समय-समय पर थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते रहे, पर अधिकांश मुस्लिम युग में शिक्षा के उद्देश्य उपरिअंकित ही थे।

शिक्षा की व्यवस्था
(ORGANIZATION OF EDUCATION)

सामान्य परिचय—भारत में मुस्लिम शासकों ने केन्द्रीय या प्रान्तीय स्तर पर शिक्षा के किसी विभाग की स्थापना नहीं की, पर उन्होंने साधारणतः शिक्षा में रुचि अवश्य ली। फलस्वरूप, लगभग सम्पूर्ण मुस्लिम काल में प्राथमिक और उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। उस काल में शिक्षा के केवल यही दो स्तर थे। इन दोनों स्तरों पर शिक्षा प्रदान करने के लिए मुस्लिम शासकों और विद्या-प्रेमी, धनी व्यक्तियों द्वारा मकतबों और मदरसों की स्थापना की गई थी। इन संस्थाओं में शिक्षा का आयोजन मुख्यतः मुसलमानों के लिए ही था। डॉ० एफ० ई० केई के शब्दों में—**"कुछ अपवादों के अलावा मुस्लिम शिक्षा जनता के उन अल्पसंख्यकों के लिए थी, जो मुस्लिम-धर्म को अंगीकार कर लेते थे।"**

"Mohammedan education, with a few exceptions, was open to that minority of the population, which embraced the Mohammedan faith."

—Dr. F. E. Keay : *op. cit.*, p. 182.

केई के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम-शिक्षा संस्थाओं में हिन्दुओं का प्रवेश वर्जित नहीं था। परन्तु, इन संस्थाओं का धार्मिक कट्टरता का वातावरण, हिन्दू छात्रों के लिए इतना विषाक्त था कि वे इनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा से पूर्णरूपेण लाभान्वित नहीं हो पाते थे। इस सामान्य परिचय के पश्चात् हम उपरिवर्णित शिक्षा के दोनों स्तरों का परिचय उपस्थित कर रहे हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा
(PRIMARY EDUCATION)

1. शिक्षा-संस्थाएँ—प्राथमिक शिक्षा के मुख्य केन्द्र—मकतब थे। उनके अतिरिक्त, खानकाहों और दरगाहों (Khanaqahas & Dargahas) में भी प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन शिक्षा-संस्थाओं में केवल मुसलमान बच्चे ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। कुछ व्यक्तिगत शिक्षक अपने घरों पर प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते थे।

2. प्रवेश—जिस प्रकार वैदिक युग में "उपनयन संस्कार" के पश्चात् और बौद्ध-युग में "पव्वज्जा संस्कार" के उपरान्त बालक की शिक्षा आरम्भ होती थी, उसी प्रकार मुस्लिम युग में "बिस्मिल्लाह-खानी" (Bismillah-Khani) की रस्म के बाद बालक अपनी शिक्षा आरम्भ करता है। यह रस्म उस समय होती थी, जब बालक 4 वर्ष, 4 माह और 4 दिन का होता था। इस रस्म के समय बालक के लगभग सभी सम्बन्धी उपस्थित रहते थे और वह नए वस्त्र धारण करके मौलवी साहब के समक्ष उपस्थित होता था। मौलवी साहब कुरान शरीफ की आयतें पढ़ते थे और बालक से उनको दोहरवाते थे। यदि बालक उनको दोहराने में असमर्थ होता था, तो उसके द्वारा केवल "बिस्मिल्लाह" कहा जाना ही पर्याप्त समझा जाता था।

इस प्रकार, बालक की प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश होता था। डॉ० एफ० ई० केई के अनुसार—**"सभी मुसलमान बालकों से प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने की आशा की जाती थी, ताकि वे अपने प्रतिदिन के धार्मिक कार्यों से सम्बन्धित कुरान की आयतों को स्मरण कर लें। किन्तु, इस बात को निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि सभी बालक इस शिक्षा को प्राप्त करते थे।"**

3. पाठ्यक्रम—मकतबों का पाठ्यक्रम विभिन्न स्थानों में विभिन्न था। साधारणतः बालकों को पढ़ने, लिखने और साधारण अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी। उनको सबसे पहले वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान कराया जाता था और उसके पश्चात् कुरान की कुछ आयतें कंठस्थ कराई जाती थीं। बालक के लिए उनका अर्थ समझना आवश्यक नहीं था, पर उनका शुद्ध उच्चारण करना अनिवार्य था। उसके पश्चात् बालक को लिखना सिखाया जाता था। जब बालक को पढ़ने और लिखने का पर्याप्त ज्ञान हो जाता था, तब उसे व्याकरण और फारसी भाषा की शिक्षा दी जाती थी। व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत बातचीत करने के ढंग, सुन्दर लेख, पत्र-लेखन और अर्जीनवीसी का प्रमुख स्थान था।

बालक का नैतिक और चारित्रिक विकास करने के लिए उसे शेख सादी की प्रसिद्ध पुस्तकें, "बोस्ताँ" एवं "गुलिस्ताँ" पढ़ाई जाती थीं और पैगम्बरों की कथाएँ एवं मुस्लिम फकीरों की कहानियाँ सुनाई जाती थीं। इनके अतिरिक्त, उसको "लैला-मजनू", "यूसुफ-जुलेखा", "सिकन्दरनामा" आदि काव्यों का ज्ञान प्रदान किया जाता था।

यहाँ यह लिख देना अनुपयुक्त न होगा कि शाहजादों और सम्पन्न परिवारों के बालकों को उनके निवास-स्थानों पर व्यक्तिगत अध्यापकों द्वारा शिक्षा दी जाती थी और उनका पाठ्यक्रम, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार विशेष प्रकार का होता था।

4. शिक्षण-विधि—मकतबों में शिक्षण-विधि मौखिक और प्रत्यक्ष थी। बालक को शुद्ध उच्चारण का ज्ञान हो जाने के बाद कलमा और कुरान की कुछ आयतें कंठस्थ करनी पड़ती थीं। कक्षा के सब बालक उच्च स्वर में एक साथ बोलकर पहाड़े रटते थे। मौलवी साहब नया पाठ तभी पढ़ाते थे, जब बालकों को पिछला पाठ कण्ठस्थ हो जाता था। इस प्रकार, कण्ठस्थ करना, शिक्षण-विधि का मुख्य तत्त्व था।

बालक द्वारा लिखने के लिए लकड़ी की तख्ती का प्रयोग किया जाता था। वह उस पर मोटे सरकण्डे की कलम से लिखने का अभ्यास करता था। जब उसे लिखने का कुछ अभ्यास हो जाता था, तब वह पतले कलम से कागज पर लिखता था।

2. उच्च शिक्षा
(HIGHER EDUCATION)

1. शिक्षा-संस्थाएँ—उच्च शिक्षा की संस्थाएँ—मदरसे थे। बालक अपनी प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए मदरसे में प्रवेश करता था। उसे प्रवेश के समय कोई संस्कार सम्पन्न नहीं करना पड़ता था। उच्च शिक्षा के केन्द्र सम्पूर्ण देश में बिखरे हुऐ थे। इनमें आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, अजमेर, लखनऊ, स्यालकोट और मुर्शिदाबाद के मदरसों ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेष ख्याति अर्जित की थी। इसीलिए, बुखारा, अफ़गानिस्तान और अन्य मुस्लिम देशों के छात्र उनमें ज्ञान का अर्जन करने के लिए आते थे।

2. पाठ्यक्रम—उच्च शिक्षा की अवधि 10 से 12 वर्ष की थी। उसका पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत था और निम्नलिखित दो भागों में विभाजित था—

(i) धार्मिक शिक्षा—धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्र को कुरान की आयतें कण्ठस्थ करनी पड़ती थीं और उनका सूक्ष्म एवं आलोचनात्मक अध्ययन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, उसे सूफी सिद्धान्तों एवं इस्लामी इतिहास, कानूनों, सिद्धान्तों और परम्पराओं का अध्ययन करना पड़ता था।

(ii) लौकिक शिक्षा—लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्र को अग्रांकित विषयों की शिक्षा दी जाती थी—अरबी और फारसी भाषाओं का साहित्य एवं व्याकरण, कृषि, गणित, भूगोल, कानून, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, यूनानी चिकित्सा आदि।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सब विषयों की शिक्षा सब मदरसों में नहीं दी जाती थी। इसके विपरीत, प्रत्येक मदरसे में साधारणतः दो विषयों की शिक्षा दी जाती थी; जैसे—दिल्ली के मदरसे में कविता और संगीत की, स्यालकोट के मदरसे में गणित और ज्योतिष की एवं रामपुर के मदरसे में ज्योतिष और अर्थशास्त्र की।

3. शिक्षण-विधि—मदरसों में शिक्षण-विधि मौखिक थी और छात्रों को शिक्षा देने के लिए अध्यापक, भाषण-विधि का प्रयोग करते थे। कक्षा-नायकीय पद्धति (Monitorial System) का पर्याप्त प्रचलन था। धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के शिक्षण में तर्क-विधि का मुख्य स्थान था। संगीत, हस्तकला, चित्रकला और चिकित्साशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा में व्यावहारिक कार्य की समुचित व्यवस्था थी। छात्रों को स्वाध्याय के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और उनकी कठिनाइयों का अध्यापकों के द्वारा निराकरण किया जाता था।

इस प्रकार, यद्यपि मदरसों में शिक्षण-विधि मुख्यतः मौखिक थी, तथापि पढ़ने और लिखने को उससे श्रेष्ठतर स्थान प्रदान किया जाता था। **गन्नार मिरडल के शब्दों में—"उच्च-शिक्षा की संस्थाओं में पढ़ने और लिखने को मौखिक शिक्षण-विधियों से श्रेष्ठतर स्थान प्रदान किया जाता था।"**

"Reading and writing took precedence over oral methods of instructions in institutions of higher education."

—**Gunnar Myrdal :** *Asian Drama*, Vol. III, p. 1631

4. शिक्षा का माध्यम—मुस्लिम शासन-काल में राज्य की भाषा, फारसी थी। इस भाषा का ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्यों को राजपद प्राप्त हो सकते थे। इस कार्य में सहायता देने के लिए फारसी को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। **गन्नार मिरडल के अनुसार—"उच्च स्तर पर शिक्षा का माध्यम फारसी भाषा थी।"**

5. परीक्षाएँ—आधुनिक युग के समान मुस्लिम युग में छात्रों की परीक्षा की कोई निश्चित प्रणाली नहीं थी। शिक्षक प्रत्येक छात्र के ज्ञान का स्वयं मूल्यांकन करके, उसे उच्च कक्षा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दे देता था।

6. उपाधियाँ—सामान्य रूप से, शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को प्रमाण-पत्र या उपाधियाँ नहीं दी जाती थीं। किन्तु जो छात्र अपने अध्ययन के विषय में असाधारण योग्यता का प्रमाण देते थे, उनको उपाधियों से विभूषित किया जाता था। उदाहरणार्थ—साहित्य के छात्रों को "काबिल" की, धर्मशास्त्र के छात्रों को "आलिम" की और तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के छात्रों को "फाजिल" की उपाधि से अलंकृत किया जाता था। छात्रों को उपाधियाँ प्रदान करने के समय नियमित रूप से समारोह का आयोजन किया जाता था।

शिक्षा-संस्थाओं के प्रकार
(TYPES OF EDUCATIONAL INSTITUTIONS)

मुस्लिम युग में अनेक प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ थीं; यथा—

1. मकतब : Maktabs—"मकतब" शब्द की उत्पत्ति, अरबी के "कुतुब" (Kutub) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है—"उसने लिखा" (He wrote)। उर्दू भाषा में "कुतुब" शब्द—"किताब" का बहुवचन है। इस प्रकार, "मकतब" वह स्थान है, जहाँ बालकों को पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। मकतब, प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र थे और साधारणतः किसी मसजिद से सम्बद्ध होते थे। कहीं-कहीं मौलवी लोग व्यक्तिगत रूप से अपने घरों पर या अन्य सुविधाजनक स्थानों पर मकतब चलाते थे। मकतबों में

मुसलमान बालकों के साथ हिन्दू बालक भी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। परन्तु मकतबों की संख्या इतनी कम थी कि सब बालकों की प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती थी।

डॉ० युसूफ़ हुसेन के अनुसार—"मकतब", एक शिक्षक वाली संस्थाएँ थीं। इनमें शिक्षण-कार्य प्रातःकाल से मध्यान्ह तक और फिर अपरान्ह में होता था। छात्रों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। शिक्षकों के भरण-पोषण की व्यवस्था, धनी व्यक्तियों द्वारा की जाती थी। राज्य को मकतबों में विशेष प्रयोजन नहीं था। जिन स्थानों में मदरसे नहीं थे, वहाँ के कुछ मकतबों में उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध था।

2. खानक़ाहें : Khanqahs—"खानकाह", प्रारम्भिक शिक्षा के केन्द्र थे। इनमें केवल मुसलमान बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इनका व्यय—दान में प्राप्त होने वाले धन से चलता था।

3. दरगाहें : Dargahas—"खानकाहों" की भाँति "दरगाह" भी प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र थे। इनकी स्थिति बहुत-कुछ खानकाहों के समान थी। इनमें भी केवल मुसलमान बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

4. कुरान स्कूल : Koran Schools—इन स्कूलों में केवल कुरान की शिक्षा दी जाती थी। इनका वर्णन करते हुए **डी ला फ़ॉस** (De La Fosse) ने **"Quinqunnial Review of India, 1907-1912"** में लिखा है—"कुरान-स्कूल साधारणतः किसी मसजिद से संलग्न होते थे। इनमें छात्रों को पहले अरबी लिपि का ज्ञान कराया जाता था और फिर कुरान की आयतें कण्ठस्थ कराई जाती थीं। उनको लिखने की और गणित की शिक्षा नहीं दी जाती थी।"

5. फारसी के स्कूल : Persian Schools—मुस्लिम शासन-काल में फ़ारसी, राजभाषा थी। अतः राजपद प्राप्त करने के इच्छुक हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए फारसी भाषा का ज्ञान होना अनिवार्य था। इस माँग की पूर्ति करने के लिए फारसी के स्कूलों की स्थापना की गई थी। इसमें छात्रों को सादी और हाफिज़ के काव्यों एवं मुस्लिम संस्कृति की शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों में शिक्षा का स्तर काफ़ी ऊँचा था।

6. फ़ारसी व कुरान के स्कूल : Persian Koran Schools—जैसा कि नाम से विदित है, ये स्कूल—फ़ारसी और कुरान स्कूलों के मिश्रित रूप थे। दूसरे शब्दों में, इन स्कूलों में फारसी और कुरान—दोनों की शिक्षा दी जाती थी।

7. अरबी के स्कूल : Arabic Schools—इन स्कूलों का मुख्य उद्देश्य—अरबी भाषा और साहित्य के विद्वानों का निर्माण करना था। अतः इनमें शिक्षा का स्तर अत्यन्त उच्च होना स्वाभाविक था।

8. मदरसे : Madarsahs—"मदरसा" शब्द की उत्पत्ति, अरबी भाषा के "दरस" (Dars) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है—"भाषण" (A Lecture)। इस प्रकार, "मदरसा" वह स्थान है, जहाँ शिक्षण के लिए भाषण या व्याख्यान-विधि का प्रयोग किया जाता है। मदरसे, उच्च शिक्षा के केन्द्र थे और सामान्यतया किसी मसजिद से संलग्न होते थे। इनकी स्थापना—राज्य और धनी विद्याप्रेमियों द्वारा की जाती थी। इनमें विभिन्न शिक्षकों द्वारा विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम फ़ारसी था।

मदरसे, सावास शिक्षा-केन्द्र थे, पर अपने परिवारों के साथ रहने वाले छात्र भी वहाँ जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इतिहासकार **इलियट** (Elliot) ने एक छात्र के विषय में लिखा है, जो दो मील दूर से प्रतिदिन दिल्ली के मदरसे में अध्ययन करने जाया करता था। मदरसों के साथ छात्रावास संलग्न थे, जिनमें छात्रों के दैनिक भोजन की सुन्दर व्यवस्था थी। प्रत्येक छात्र को आर्थिक सहायता के रूप में कुछ धन मिलता था। योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती थीं। शिक्षकों के लिए मदरसों में निवास और भोजन का प्रबन्ध था। इस प्रकार, छात्र और शिक्षक निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क में रहते थे।

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
(OTHER SPHERES OF EDUCATION)

1. स्त्री-शिक्षा : Women's Education—डॉ० एफ० ई० केई के शब्दों में—**"पर्दा-प्रथा ने, जिसने छोटी बालिकाओं के अलावा सब मुसलमान स्त्रियों को एकान्त में बन्द रखा, उनकी शिक्षा को महान् कठिनाई का कारण बना दिया।"**

पर्दा-प्रथा के कारण केवल छोटी आयु की बालिकाएँ मकतबों में जाकर बालकों के साथ विद्या का अर्जन करती थीं, पर उन्हें कुछ ही समय के बाद यह कार्य स्थगित करना पड़ता था। उनको उच्च शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं, क्योंकि राज्य या समाज की ओर से उनके लिए पृथक् शिक्षा-संस्थाओं की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। फलस्वरूप, निम्न और निर्धन वर्गों की बालिकाएँ या तो ज्ञान-प्राप्ति के लाभ से वंचित रह जाती थीं या उनका ज्ञान अत्यन्त अल्प पढ़ने और लिखने तक सीमित रह जाता था।

मध्य वर्ग की बालिकाओं को शिक्षा के अधिक अवसर प्राप्त थे। वे विद्याध्ययन के लिए सामान्य मकतबों में न जाकर, व्यक्तिगत रूप से स्त्रियों द्वारा अपने घरों पर चलाए जाने वाले मकतबों में जाकर विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। इस सम्बन्ध में **डॉ० युसुफ़ हुसेन** ने लिखा है—**"निजी घरों में बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए मकतब थे, जहाँ अधिक आयु की महिलाएँ उनको कुरान, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ और सदाचार की पुस्तकें पढ़ाती थीं।"**

मालवा के शासक, गियासुद्दीन तुगलक ने, जिसने सन् 1469 से 1500 तक शासन किया, सारंगपुर में सभी वर्गों की बालिकाओं के लिए, एक मदरसे की स्थापना की। **"फ़रिश्ता (Ferishta) के अनुसार—इस मदरसे में बालिकाओं को नृत्य, संगीत, सिलाई, बुनाई, बढ़ईगीरी, सुनारगीरी, लुहारगीरी, जूते बनाने, मख़मल बनाने, युद्ध-कला, रणक्षेत्र-कला आदि की शिक्षा दी जाती थी। उनकी शिक्षा का भार उनके अभिभावकों को वहन करना पड़ता था। अतः केवल धन-सम्पन्न व्यक्ति ही अपनी बालिकाओं को इस विद्यालय में अध्ययन के लिए भेज पाते थे।"**

राजघरानों और कुलीन परिवारों की बालिकाओं और स्त्रियों को उनके निवास-स्थानों पर ही व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जाती थी। उनको धर्म एवं साहित्य के अतिरिक्त, नृत्य, संगीत एवं अन्य ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार, शिक्षा प्राप्त करने वाली अनेक मुस्लिम राजकुमारियों के नाम आज भी गर्व से स्मरण

किये जाते हैं; जैसे—अल्तमश की पुत्री, रज़िया सुल्ताना अपनी विद्वता के लिए विख्यात थी। दक्षिण की वीरांगना, चाँद सुल्ताना को तुर्की, अरबी, फारसी और मराठी भाषाओं पर समान अधिकार था। बाबर की पुत्री, गुलबदन बेगम की कृति, "हुमायूँ-नामा" इतिहास की अमूल्य निधि मानी जाती है। हुमायूँ की भतीजी सलीमा सुल्ताना; जहाँगीर की पत्नी, नूरजहाँ और औरंगजेब की पुत्री, जेबुन्निसा बेगम—सभी विदुषी महिलाएँ थीं।

उक्त महिलाओं के अतिरिक्त और भी अनेक सुशिक्षित स्त्रियाँ थीं। किन्तु, इनकी तुलना में उन सामान्य स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक थी, जो अशिक्षित थीं। वस्तुस्थिति यह थी कि जबकि राजघरानों और कुलीन परिवारों की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचलन था, सामान्य स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ। अतः वे शिक्षा से रंचमात्र भी लाभान्वित नहीं हुईं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए डॉ० एफ़० ई० केई ने लिखा है—**"मुसलमान स्त्रियों के विशाल सामान्य समूह को पारिवारिक कर्त्तव्यों को करने के लिए घरेलू प्रशिक्षण के अलावा किसी भी प्रकार की कोई शिक्षा प्राप्त नहीं हुई।"**

2. व्यावसायिक शिक्षा : Professional Education—दिल्ली के सुल्तानों और मुगल सम्राटों को व्यावसायिक शिक्षा के प्रति किसी-न-किसी रूप में कम या अधिक रुचि अवश्य थी। ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक शिक्षा का विकास होना स्वाभाविक था। हम इसके महत्त्वपूर्ण अंगों पर प्रकाश डाल रहे हैं; यथा—

(i) सैनिक शिक्षा : Military Education—भारत के सब मुस्लिम शासकों का लक्ष्य अपने राज्य को स्थायी और सुदृढ़ बनाना था। विदेशी और विधर्मी होने के कारण, वे भारतीयों को सदैव शंका की दृष्टि से देखते थे। उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने और बनाये रखने के लिए मुस्लिम शासकों को समय-समय पर हिन्दू राजाओं से युद्ध करने पड़ते थे।

ऐसी परिस्थिति में मुस्लिम शासकों द्वारा सैनिक शिक्षा पर बल दिया जाना आवश्यक था। यह शिक्षा साधारण सैनिकों और राजकुमारों के लिए भिन्न प्रकार की थी। सैनिकों को तीर, भाला एवं तलवार चलाने, दुर्ग का घेरा डालने और घोड़े एवं हाथी पर बैठकर युद्ध करने की शिक्षा दी जाती थी। मुगल-काल में उनको गोली चलाने का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। राजकुमारों को इन सभी बातों के अतिरिक्त सेना के संचालन, संगठन और नेतृत्व का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था। यहाँ यह बता देना असंगत न होगा कि सैनिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षण-संस्थाएँ नहीं थीं। यह शिक्षा, राज्य के अनुभवी सैनिकों द्वारा दी जाती थी।

(ii) चिकित्साशास्त्र की शिक्षा : Medical Education—चिकित्साशास्त्र की उपयुक्त शिक्षा देने के लिए संस्कृत के ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया या इन ग्रन्थों के आधार पर फारसी में पुस्तकों की रचना की गई। इस प्रकार की कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें थीं—"मदानुश-शिफाए-सिकन्दरी", "दस्तूर-उल-अतिब्बा" और "तुहफत-अल-मोमिन।"

चिकित्साशास्त्र की शिक्षा, मदरसों में या विशिष्ट शिक्षा-संस्थाओं में दी जाती थी। आगरा में अकबर द्वारा स्थापित किये गये मदरसे और रामपुर की विशिष्ट शिक्षा-संस्था—चिकित्साशास्त्र की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थी।

(iii) हस्तकलाओं की शिक्षा : Education in Handicrafts—अधिकांश मुस्लिम शासक—ऐश्वर्य और विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। अतः इस जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्धित सभी हस्तकलाओं की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस प्रकार की मुख्य कलाएँ थीं—कशीदाकारी; ज़री, लकड़ी एवं हाथी दाँत का काम; दरी, पर्दे, जूते, रेशम, मलमल एवं आभूषण बनाना आदि।

इन हस्तकलाओं की शिक्षा—कारखानों में दी जाती थी। मुहम्मद तुग़लक और फ़िरोज तुग़लक के शासन-काल में इन कारखानों का उल्लेख मिलता है। अकबर के समय में सब कारखाने—"दिवाने-बुयतात" नामक सरकारी विभाग की अधीनता में थे। इन कारखानों के विषय में जाफ़र ने लिखा है—**"भारत में हज़ारों कारखाने थे, जिनमें लड़कों को बहुधा विशिष्ट कलाओं और दस्तकारियों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी व्यवसाय के शिल्पकार का शिष्य बना दिया जाता था।"**

"There were thousands of *Karkhanas* or workshops, wherein boys were often apprenticed with the artisan to the trade for receiving instructions in particular arts and crafts."

—**S. M. Jaffer : *Education in Muslim India*, pp. 12-13.**

(iv) ललित कलाओं की शिक्षा : Education in Fine Arts—लगभग सभी मुस्लिम शासक, सौन्दर्य के उपासक थे और अपने महलों एवं दरवाजों की शोभा में वृद्धि करने के लिए उत्कंठित रहते थे। फलस्वरूप, ललित कलाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। इन कलाओं में अग्रांकित को उच्चतम स्थान प्राप्त था—संगीत, चित्रकला और नृत्यकला। इन कलाओं का प्रशिक्षण—कारखानों में, वंशानुगत रूप में और व्यक्तिगत रूप में उस्तादों द्वारा दिया जाता था।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ
(CHIEF FEATURES OR CHARACTERISTICS OF EDUCATION)

भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों और तदुपरान्त इस देश में मुस्लिम-शासन की स्थापना के कारण, यहाँ की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली जर्जर होकर अतीत के गर्त में विलीन होने लगी और उसके स्थान पर एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का उद्भव हुआ। मुसलमानों की यह नवीन शिक्षा-प्रणाली इस देश में लगभग 600 वर्ष तक प्रचलित रही और मकतबों के रूप में इसके अवशेष आज भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। इस शिक्षा-प्रणाली में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं, जिन्होंने भयंकर विप्लवों और राजनीतिक संघर्षों के मध्य भी इसको जीवित रखा। हम इन विशेषताओं का निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर रहे हैं, यथा—

1. व्यावहारिक शिक्षा : Practical Education—मुस्लिम-शिक्षा केवल शिक्षा के लिए ही नहीं, अपितु व्यावहारिक जीवन के लिए भी थी। परलोक और पुनर्जन्म में विश्वास न करने के कारण मुसलमान—शिक्षा को आध्यात्मिक विकास और मोक्ष-प्राप्ति का साधन नहीं मानते हैं। उनका विश्वास है कि जीवन केवल इसी संसार में है और इसलिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति को इस जीवन के लिए तैयार किया जाना चाहिए। अपने इस विचार से प्रेरित होकर, उन्होंने शिक्षा को व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

इस दिशा में औरंगजेब के प्रयास प्रशसनीय हैं। उसने अपने व्यक्तिगत शिक्षक मुल्ला शाह सलेह की सार्वजनिक रूप में इसलिए निन्दा की, क्योंकि उसने उसको व्यावहारिक शिक्षा नहीं दी थी। औरंगजेब ने राजकुमारों के लिए शाब्दिक और शास्त्रीय शिक्षा की अपेक्षा भूगोल, इतिहास, राजतन्त्र, सैन्य-संचालन और समीपवर्ती राज्यों की भाषाओं की शिक्षा को अधिक उपयोगी बताया। अपनी इसी धारणा के कारण, उसने सामान्य बालकों के पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तन करने की आज्ञा दी।

2. निःशुल्क शिक्षा : Free Education—मकतबों और मदरसों में निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था थी। उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। इन शिक्षा-संस्थाओं के व्यय का सम्पूर्ण भार इनको स्थापित करने और संचालित करने वाले शासकों या धनी व्यक्तियों द्वारा वहन किया जाता था।

मदरसों में निःशुल्क शिक्षा के अलावा निःशुल्क निवास, भोजन और वस्त्रों की भी सुविधा थी। इब्न बतूता ने इस प्रकार के अनेक मदरसों का वर्णन किया है। उनमें से एक मदरसे के विषय में **इब्न बतूता** ने लिखा है—**"यह अति विशाल और भव्य मदरसा है। इसमें छात्रों के रहने के लिए 300 कमरे हैं और छात्रों को दैनिक भोजन और सालाना कपड़ों का खर्च दिया जाता है।"**

3. व्यक्तिगत सम्पर्क : Individual Contact—प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति के समान मुस्लिम-शिक्षा-पद्धति में भी गुरु और शिष्य का व्यक्तिगत सम्पर्क था। शिक्षक अपने छात्रों के साथ निवास करता था। अतः वह अपने विचारों और आदर्शों से उनको प्रभावित करके, उनकी प्रतिभा, कुशलता और योग्यता की वृद्धि में निरन्तर योग देता था। **टी० एन० सिक्वेरा** के अनुसार—**"शिक्षा को व्यक्तिगत प्रक्रिया माना जाता था। शिक्षक को अपने छात्रों के साथ रहना पड़ता था।"**

"Education was considered a personal process; the teacher had to live with his pupils." —**T. N. Siqueira** : *The Education of India*, p. 18.

4. कक्षा-नायकीय पद्धति : Monitorial System—मुस्लिम-शिक्षा-संस्थाओं में कक्षा-नायकीय पद्धति का प्रचलन था। इस पद्धति में उच्च कक्षाओं के योग्य छात्र या नायक निम्न कक्षाओं के छात्रों को पढ़ाकर, शिक्षक के अध्यापन-कार्य में सहायता देते थे। मुसलमानों ने इस पद्धति को अपनी सुविधा के लिए प्राचीन भारतीय शिक्षा से ग्रहण किया था।

5. शिक्षक की स्थिति : Status of Teacher—मुस्लिम युग में शिक्षा के प्रति लौकिक दृष्टिकोण के कारण, शिक्षक की स्थिति में परिवर्तन हो गया था। उसकी स्थिति उतनी उच्च नहीं थी, जितनी कि प्राचीन भारत में थी। सम्राट औरंगजेब ने अपने शिक्षक, मुल्ला शाह सलेह की भेंट करने की प्रार्थना को तीन मास तक ठुकरा कर और अन्त में भेंट करने पर, उसे अज्ञातवास की आज्ञा देकर, शिक्षक के प्रति जिस व्यवहार का प्रमाण दिया, वह उनकी निम्नतर स्थिति का सजीव उदाहरण है।

फिर भी, जैसा कि **डॉ० एफ० ई० केई** ने लिखा है—"शिक्षकों की सामाजिक स्थिति उच्च थी और वे साधारणतया चरित्रवान् मनुष्य थे, जिनको व्यक्तियों का विश्वास और सम्मान प्राप्त था।" **जाफर** ने लगभग यही विचार इन शब्दों में अंकित किया

है—**"शिक्षकों का समाज में उच्च स्थान था और यद्यपि उनका वेतन अल्प था, तथापि उनको सार्वजनिक सम्मान और विश्वास प्राप्त था।"**

"Teachers occupied a high position in society, and though their emoluments were small, they commanded universal respect and confidence." —**S. M. Jaffer** : *op. cit.*, p. 4.

6. गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Teacher-Pupil Relationship—यद्यपि औरंगजेब ने भरे दरबार में अपने गुरु, मुल्ला शाह सलेह का अपमान और अनादर किया था, तथापि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि गुरु-भक्ति के प्राचीन आदर्श का पूर्ण लोप हो गया था। अपने पिता को बन्दी बनाने वाले, भाइयों की हत्या करने वाले, राजसिंहासन पर अपना अवैध अधिकार स्थापित करने वाले और अपनी शक्ति एवं श्रेष्ठता के मद से उन्मत्त होने वाले औरंगजेब का अपने गुरु के प्रति दुर्व्यवहार कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। उसके अभद्र व्यवहार को केवल अपवाद कहा जा सकता है, क्योंकि सामान्य रूप से समाज में शिक्षक का सम्मान होता था और छात्र उसके प्रति विनम्र एवं भक्तिपूर्ण थे। वे गुरु की सेवा करना और उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करना अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु की कृपा से ही उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

शिक्षक भी छात्रों के प्रति स्नेह और पुत्रवत् व्यवहार करता था। जिन मदरसों से छात्रावास संलग्न थे, उनमें शिक्षक और छात्रों का निकट और निरन्तर सम्पर्क रहता था। शिक्षक पग-पग पर उनका पथ-प्रदर्शन करता था, उनके मस्तिष्क को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करता था और प्रशंसा एवं निन्दा का प्रयोग करके उनमें अच्छी आदतों और अच्छे चरित्र का निर्माण करता था।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि गुरु-शिष्य के आदर्श सम्बन्ध की जो श्रेष्ठ परम्परा वैदिक काल में आरम्भ हुई थी, वह मुस्लिम काल में यथावत् बनी रही। **डॉ० एफ० ई० केई** के शब्दों में—**"शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध वैसा ही था, जैसा कि ब्राह्मणीय शिक्षा में था।"**

7. शिक्षा का संरक्षण : Patronage of Education—यह तथ्य निर्विवाद है कि सम्पूर्ण मुस्लिम काल में शिक्षा को राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। साथ ही यह कथन भी विवादरहित है कि लगभग सभी मुस्लिम शासकों ने मकतबों और मदरसों की स्थापना करके, शिक्षा के प्रति अपने प्रेम और उदारता का परिचय दिया।

उपर्युक्त दोनों धारणाओं की पुष्टि में **डॉ० एफ० ई० केई** का अग्रांकित मत उद्धृत करना असंगत न होगा—**"भारत में मुस्लिम शासकों ने शिक्षा के प्रति सामान्यतः अत्यधिक रुचि प्रदर्शित की और उनमें से अनेक ने अपने राज्य में विभिन्न स्थानों पर मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों का शिलान्यास किया। शासकों के उदाहरण का उनके अनेक प्रभावशाली प्रजाजनों द्वारा अनुकरण किया गया। विद्वानों, कवियों और अन्य साहित्यिक मनुष्यों को राज्य या अमीरों के संरक्षण के कारण बहुधा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। छात्रों को बहुधा शिष्यवृत्तियाँ और छात्रवृत्तियाँ दी जाती थीं।"**

8. शिक्षा की अनिवार्यता : Indispensability of Education—मुसलमानों द्वारा शिक्षा को व्यक्ति के जीवन के लिए तीन मुख्य कारकों से अनिवार्य माना जाता है। पहला, कुरान शरीफ में ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य बताया गया है।

दूसरा, मुसलमानों द्वारा मुहम्मद साहब के इस कथन में विश्वास किया जाता है—"जो छात्र, ज्ञान की खोज करता है, उसे ईश्वर—स्वर्ग में उच्च स्थान प्रदान करता है।" तीसरा, इस्लाम धर्म में कहा गया है—**"जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है, यह धार्मिक कार्य करता है, जो ज्ञान की बात करता है, वह ईश्वर की प्रशंसा करता है, जो ज्ञान की खोज करता है, वह ईश्वर की उपासना करता है।"**

"He who acquires knowledge, performs an act of piety; who speaks of it, praises the Lord; who seeks it, adores God."

—**Amir Ali** : *Spirit of Islam*, p. 360.

इस प्रकार की धार्मिक पृष्ठभूमि में शिक्षा को व्यक्ति के लिए अनिवार्य समझा गया। यही कारण था कि सभी मुस्लिम शासकों और ज्ञान-प्रेमी व्यक्तियों ने मकतबों और मदरसों की स्थापना करके और उनमें निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करके, जनसाधारण के लिए शिक्षा को अधिक-से-अधिक सुलभ बनाने का प्रयत्न किया।

9. सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि : Promotion of Cultural Unity—मुस्लिम शासकों के आरम्भ में मकतबों और मदरसों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा केवल मुसलमानों तक ही सीमित थी और उनमें हिन्दुओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध था। सिकन्दर लोदी के समय से यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया था। फलस्वरूप, सभी जातियों के हिन्दू—मकतबों और मदरसों में प्रवेश करके, मुसलमानों के साथ शिक्षा ग्रहण करने लगे थे।

इस प्रकार, मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं ने सभी जातियों के हिन्दुओं और मुसलमानों में पारस्परिक सम्पर्क स्थापित किया, जिसके दो सुन्दर परिणाम दृष्टिगोचर हुए—जातीय बन्धनों की समाप्ति और सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि। डॉ० एफ० ई० केई के अनुसार—**"मुस्लिम-शिक्षा ने जाति के बन्धनों को तोड़ने में सहायता दी और भारत की सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि की।"**

10. भाषा व विज्ञानों को प्रोत्साहन : Encouragement to Language & Sciences—मुस्लिम युग में फारसी भाषा और विज्ञानों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इसका कारण यह था कि फारसी सभी मुस्लिम शासकों की राजभाषा थी। अतः इस भाषा के विद्वानों को राजपदों के लिए बहुत माँग थी। इसी प्रकार, विज्ञानवेत्ताओं की भी माँग थी।

उक्त दोनों माँगों को पूर्ण करने के लिए, मुस्लिम युग में फारसी भाषा और विज्ञानों की शिक्षा का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया गया। **गन्नार मिरडल** का कथन है—**"क्योंकि पदाधिकारियों, प्रशासकों, शिल्पियों और इस प्रकार के अन्य व्यक्तियों की बहुत माँग थी, इसलिए भाषा और विज्ञानों को शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया गया।"**

11. साहित्य व इतिहास का विकास : Development of Literature & History—मुस्लिम युग में साहित्य और इतिहास का पर्याप्त विकास हुआ। अनेक मुस्लिम शासक विद्या के प्रेमी और विद्वानों के संरक्षक थे। संरक्षण-प्राप्त विद्वानों का आर्थिक चिन्ता से मुक्त होना और इसके फलस्वरूप उनके द्वारा साहित्य-सृजन के प्रति ध्यान दिया जाना स्वाभाविक था। यही कारण था कि मुस्लिम युग में नीति, दर्शन आदि

विषयों पर साहित्य का निर्माण हुआ और रामायण, महाभारत आदि हिन्दू ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया।

भारत में क्रमबद्ध इतिहास का लेखन सर्वप्रथम मुस्लिम-काल में ही आरम्भ हुआ। इस काल से पूर्व हमें ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमिक वर्णन बहुत कम मिलता है। कल्हन की "राजतरंगिनी" को अवश्य इतिहास की कोटि में स्थान दिया जाता है, पर इस प्रकार की किसी अन्य पुस्तक की रचना, मुसलमान शासकों के समय से पूर्व नहीं हुई। इन शासकों में से कुछ ने अपने संस्मरणों और आत्मकथाओं के रूप में इतिहास लिखे एवं अपने दरबारों में इतिहासकारों को संरक्षण प्रदान किया। इन इतिहासकारों में जियाउद्दीन बर्नी का "तारीखे फिरोजशाही", अबुल फजल का "अकबरनामा" और बदायूँनी का "मुन्तखब-उत-तवारीख" इतिहास के बेजोड़ ग्रन्थ हैं।

12. धार्मिक व लौकिक शिक्षा का समन्वय : Synthesis of Religious & Secular Education—मुस्लिम शिक्षा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता थी—धार्मिक और लौकिक शिक्षा का समन्वय। मकतबों में बालकों को कुरान की आयतें कठस्थ कराई जाती थीं। साथ ही, उनको अंकगणित, बहीखाता करने का ढंग, पत्र-लेखन-कला और अर्जीनवीसी आदि जीवनोपयोगी विषयों का अध्ययन कराया जाता था। मदरसों में छात्रों को नियमित रूप से कुरान का अध्ययन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, उनको भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार, शिक्षा के दोनों स्तरों पर धार्मिक और लौकिक विषयों का समावेश था।

शिक्षा के मुख्य दोष
(CHIEF DEFECTS OF EDUCATION)

टी० एन० सिक्वेरा का कथन है—"भारत पर मुसलमानों की विजय इस्लामी-शिक्षा के उस अन्धकारपूर्ण युग की समकालीन थी, जबकि विद्यालयों ने अपने व्यापक सांस्कृतिक आदर्शों को खो दिया था।"

"The Muslim conquest of India coincided with a dark age in Islamic education when the schools had lost their wider ideals of culture."

—**T. N. Siqueira** : *op. cit.*, p. 9.

सिक्वेरा के इस कथन को ध्यान में रखते हुए, हम कह सकते हैं कि मुस्लिम-शिक्षा दोषमुक्त नहीं थी। हम उसके मुख्य दोषों की चर्चा निम्नांकित पंक्तियों में यथास्थान कर रहे हैं—

1. शिक्षा के लौकिक पक्ष पर बल : Stress on Secular Aspect of Education—मुस्लिम-शिक्षा में धर्म का मूर्धन्य स्थान था। किन्तु, इस्लाम धर्म पारलौकिक जीवन की अपेक्षा इहलौकिक जीवन को महत्त्व देता है। अतः मुस्लिम युग में शिक्षा के लौकिक पक्ष को प्रधानता दी गई और शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य यह स्वीकार किया गया—छात्रों को ज्ञान से सम्पन्न करके, समाज में सुयश और राज्य में श्रेष्ठ पद प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना, ताकि वे सभी सांसारिक सुखों और ऐश्वर्यों का उपभोग कर सकें। छात्र भी अपने समक्ष इसी उद्देश्य को रख कर, कठोर परिश्रम द्वारा ज्ञान का अर्जन करते थे और अपनी योग्यता में अधिक-से-अधिक वृद्धि करने के लिए प्रति-क्षण प्रयत्नशील रहते थे।

2. स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of Women's Education—मुस्लिम-युग में पर्दे की प्रथा के कारण, स्त्री-शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ। जनसाधारण की बालिकाएँ अपने मुहल्लों के मकतबों में बालकों के साथ थोड़ा-सा पढ़ना और लिखना सीख लेती थीं। इसके अतिरिक्त, उनकी शिक्षा के लिए राज्य या समाज की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं था। राजकुलों और धनी परिवारों की बालिकाओं और स्त्रियों को उनके घरों पर शिक्षा दी जाती थी। पर इनकी संख्या अत्यन्त अल्प थी।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि मुस्लिम-काल में सामान्य रूप से स्त्रियों की शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की गई। इसका परिणाम बताते हुए, **टी० एन० सिक्वेरा** ने लिखा है—**"स्त्रियों की शिक्षा पढ़ने और लिखने के न्यूनतम तत्त्वों की संकुचित स्थिति में पहुँच गई थी।"**

"Education of women was reduced to the barest elements of reading and writing." —**T. N. Siqueira** : *op. cit.* p. 139.

3. प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा : Neglect of Vernaculars—मुस्लिम-शिक्षा-पद्धति में फारसी और अरबी का शीर्षस्थ स्थान था। मकतबों में बालकों को फ़ारसी की वर्णमाला सिखाई जाती थी और कुरान की आयतें रटाई जाती थीं। मदरसों में उच्च शिक्षा का माध्यम—फारसी थी। फारसी सम्पूर्ण मुस्लिम-काल में राजभाषा थी। राजपदों पर उन्हीं लोगों को आसीन किया जाता था, जिनको फारसी का पूर्ण ज्ञान और अरबी का पर्याप्त ज्ञान होता था। अतः इन पदों के लिए इच्छुक न केवल मुसलमानों, वरन् हिन्दुओं को भी फारसी और अरबी का अनिवार्य रूप से अध्ययन करना पड़ता था। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय भाषाओं के प्रति रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप उनका विकास अवरुद्ध हो गया।

अकबर ने अपनी हिन्दू-नीति के कारण इस बात की चेष्टा की कि विद्यालयों में फारसी के अतिरिक्त हिन्दी की भी शिक्षा दी जाय। उसकी चेष्टा के परिणामस्वरूप हिन्दी को प्रोत्साहन तो अवश्य प्राप्त हुआ, पर उसकी प्रगति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। औरंगजेब ने प्रान्तीय भाषाओं, मुख्यतः उर्दू में शिक्षण और रचना को प्रोत्साहित किया, पर उसे अपने कार्य में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। वस्तुतः इन दोनों मुगल सम्राटों के प्रयासों का फारसी और अरबी की स्थिति पर केवल अस्थायी प्रभाव पड़ा। इन दोनों भाषाओं की प्रधानता पूर्ववत् बनी रही और प्रान्तीय भाषाओं की पहले के समान उपेक्षा की गई।

4. हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of Education of Hindus—आरम्भ में मुस्लिम-शिक्षा केवल उन अल्पसंख्यकों को ही उपलब्ध थी, जो इस्लाम धर्म के अनुगामी थे। सिकन्दर लोदी के शासन-काल में मकतबों और मदरसों के द्वार हिन्दुओं के लिए भी खोल दिये थे; पर वहाँ उनके साथ समानता का व्यवहार नहीं किया जाता था। केवल—अकबर के शासन-काल में हिन्दू बालकों को मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ। जहाँ तक हिन्दू शिक्षा-पद्धति का सम्बन्ध था, उसको अनेक मुसलमान शासकों ने नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि लगभग सम्पूर्ण मुस्लिम-युग में हिन्दुओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध नहीं हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा उनकी शिक्षा की उपेक्षा की गई। हिन्दुओं की शिक्षा से सम्बन्धित उनकी नीति का वर्णन करते हुए **टी० एन० सिक्वेरा** ने लिखा है—"मुसलमान शासकों को अपनी हिन्दू प्रजा की शिक्षा के विषय में दो बातों में से एक का निश्चय करना पड़ा—हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा करना या उनके लिए पृथक् विद्यालयों की स्थापना करना। अधिकांश मुस्लिम शासकों ने उनकी शिक्षा की उपेक्षा की, उनकी शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता नहीं दी और उनके लिए नवीन विद्यालयों का निर्माण नहीं किया। अकबर के समान बहुत ही कम शासकों ने हिन्दुओं की शिक्षा को प्रोत्साहित किया।"

5. शिक्षा के आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा : Neglect of Spiritual Aspect of Education—मुस्लिम-शिक्षा, धर्म-प्रधान थी। छात्रों को अपने सम्पूर्ण अध्ययन-काल में कुरान शरीफ की नियमित रूप से शिक्षा दी जाती थी। किन्तु, इस शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—उनमें धार्मिकता की भावना का समावेश करना था, न कि उनका आध्यात्मिक विकास करना।

इस प्रकार, मुस्लिम युग में शिक्षा के आध्यात्मिक पक्ष की प्रायः पूर्ण उपेक्षा की गई। परिणामतः मुस्लिम-शिक्षा आध्यात्मिक उन्नति के उस शिखर से बहुत नीचे रह गई, जिस पर प्राचीन भारतीय शिक्षा पहुँच गई थी और जिनके कारण भारत को विश्व का आध्यात्मिक गुरु माना जाता था।

6. शिक्षा में स्थिरता का अभाव : Lack of Stability in Education—इस्लाम-धर्म में अडिग आस्था रखने के कारण मुसलमान, माता-पिता अपने बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य मानते थे। परन्तु जैसा कि **टी० एन० सिक्वेरा** ने लिखा है—**"न तो माता-पिता ने और न शासकों ने अपने कर्त्तव्य का विधिपूर्वक पालन किया। एक शासक या राजकुमार, विद्यालयों की स्थापना करता था और दूसरा यदि उनको नष्ट नहीं करता था, तो बन्द अवश्य कर देता था।"**

सिक्वेरा के कथन से सिद्ध हो जाता है कि मुस्लिम शासकों की शिक्षा-सम्बन्धी नीति में स्थिरता और क्रमबद्धता का नितान्त अभाव था। यही कारण था कि यदि एक शासक के समय में शिक्षा पुष्पित होती थी, तो दूसरे शासक के समय में कुम्हला जाती थी। शिक्षा के इस अस्थिर स्वरूप का कारण बताते हुए **डॉ० एफ० ई० केई** ने लिखा है—**"शिक्षा का अस्थिर और अनिश्चित स्वरूप मुख्यतः निरंकुश शासन का परिणाम था।"**

7. शिक्षा में व्यापकता का अभाव : Lack of Universality in Education—मुस्लिम-युग में शिक्षा को इस्लाम-धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य माना जाता था और उसे राज्य का संरक्षण भी प्राप्त था। फिर भी, वह व्यापक रूप धारण न कर सकी। इसके आधारभूत कारण पाँच थे; यथा—

पहला, मुस्लिम-शिक्षा की व्यवस्था केवल नगरों और बड़े कस्बों में की गई थी, जहाँ मुसलमानों की अधिकांश जनसंख्या निवास करती थी। **दूसरा,** मुस्लिम शासकों का

जनसाधारण की शिक्षा में लेशमात्र भी रुचि नहीं थी। अतः नगरों और कस्बों से दूर के स्थानों में न तो मुस्लिम-शिक्षा का आविर्भाव हुआ और न विकास। **तीसरा,** दान धर्म और उदारता से प्रेरित होकर मुस्लिम शासकों और उनके अमीर-उमरावों ने केवल महत्त्वपूर्ण स्थानों पर ही मकतबों और मदरसों का निर्माण किया। **चौथा,** मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं में प्रदान की जाने वाली शिक्षा पर धार्मिक कट्टरता की इतनी गहरी और व्यापक छाप थी कि हिन्दू बालक उससे लाभान्वित न हो सके। **पाँचवाँ,** मुस्लिम युग में शिक्षा-संस्थाओं की संख्या बहुत कम थी। अतः केवल धनी और प्रभावशाली व्यक्तियों के बालकों को ही उनमें प्रवेश मिलता था। फलस्वरूप, सामान्य व्यक्तियों के बालकों के लिए शिक्षा प्राप्त करने का कोई साधन नहीं था। ऐसी स्थिति में शिक्षा में व्यापकता का अभाव होना स्वाभाविक था।

8. कठोर शारीरिक दण्ड : Severe Corporal Punishment—मुस्लिम-शिक्षा-व्यवस्था में कठोर दण्ड की प्रथा प्रचलित थी। छात्रों को पाठ याद न होने पर या अन्य अपराध करने पर बेंत, कोड़े, घूँसे, लात, थप्पड़ आदि से शारीरिक दण्ड दिया जाता था। यदि वे कोई भीषण अपराध करते थे, तो उनको विभिन्न प्रकार की शारीरिक यातनाएँ दी जाती थीं।

एडम (Adam) ने अपनी *"Reports"* में कुछ शारीरिक यातनाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—छात्र को मुर्गा बनाना, उसको पीठ या गर्दन या दोनों पर निश्चित समय के लिए ईंट या लकड़ी का भारी टुकड़ा रखना, उसे पैरों के बल वृक्ष की शाखा से लटकाना, उसे बिल्ली या अन्य किसी कष्टदायक पशु के साथ बोरे में बन्द करना, उसे भूमि पर पेट के बल लेट कर अपने शरीर को निश्चित दूरी तक घसीटना।

ये सभी दण्ड निष्ठुर एवं अमानवीय होने के साथ-साथ अमनोवैज्ञानिक और शिक्षा-सिद्धान्तों के प्रतिकूल थे। इस प्रकार के दण्ड दिए जाने का कारण यह था कि राज्य की ओर से कोई दण्ड विधान निर्धारित नहीं था। अतः शिक्षक अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार छात्रों को कोई भी दण्ड देने के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र थे।

9. छात्रों की विलासप्रियता : Students' Love of Luxury—प्राचीन काल की भाँति मुस्लिम काल में छात्रों को कठोर और तपस्वी जीवन व्यतीत नहीं करना पड़ता था। उन्हें छात्रावासों में अनेक प्रकार के सुख-साधन और सौन्दर्य-प्रसाधन की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। फलस्वरूप, वे कुछ ही समय में इतने विलासी बन जाते थे कि वे सुखभोग के वास्तविक जीवन से पृथक् किसी अन्य जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यही कारण था कि उनमें आत्म-त्याग, आत्म-निर्भरता और आत्म-अनुशासन आदि सद्गुणों के एक भी चिन्ह की झलक दुर्लभ थी।

10. अन्य दोष : Other Defects—उपर्युक्त के अतिरिक्त, मुस्लिम शिक्षा-पद्धति में कुछ अन्य दोष और थे; यथा—

पहला, बालकों को मकतबों में कुरान की आयतें कण्ठस्थ कराई जाती थीं, जिनका अर्थ जानना उनके लिए आवश्यक नहीं समझा जाता था। इससे उनकी

स्मरण-शक्ति तो निश्चित रूप से तीव्र हो जाती थी, पर उनकी मनन, चिन्तन आदि अन्य मानसिक शक्तियों का विकास नहीं होता था।

दूसरा, बालकों को पहले पढ़ने का अभ्यास कराया जाता था और उसकी समाप्ति के पश्चात् लिखने का। इससे उनका पर्याप्त समय नष्ट होता था और उनका सन्तुलित विकास भी नहीं होता था।

तीसरा, मौखिक शिक्षण पर इतना अधिक बल दिया जाता था कि बालकों को निरीक्षण, परीक्षण आदि व्यावहारिक क्रियाओं के लिए कोई अवसर प्राप्त नहीं होता था।

चौथा, डॉ० यूसुफ हुसेन के अनुसार—"मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति में लचीलेपन का अभाव था। परिणामतः वह अत्यधिक अनम्य (Rigid) और अनिर्माणकारी (Non-Creative) बन गई थी।"

पाँचवाँ, डॉ० यूसुफ हुसेन के शब्दों में—"मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति में छात्रों में व्यावहारिक निर्णय प्रदान करने की क्षमता नहीं थी। वह अत्यधिक निष्प्राण और पुस्तकीय थी।"

अन्तिम, डॉ० यूसुफ हुसेन के विचारानुसार—**"यह कहना ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य होगा कि मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति, नेतृत्व के गुणों का विकास करने में विफल हुई। अतः वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लिए असाधारण व्यक्तियों की माँग की पूर्ति नहीं कर सकी।"**

"It would be historically true to assert that the medieval system of education failed to impart the qualities of leadership and thus ensure the supply of outstanding personalities in the different walks of life."

—**Dr. Yusuf Husain** : *Glimpses of Medieval Indian Culture*, p. 97.

आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व

(ACCEPTABLE FEATURES FOR MODERN EDUCATION)

मुस्लिम-शिक्षा में हमें ऐसे अनेक उपयोगी तत्त्व मिलते हैं, जो आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए ग्रहणीय हैं; यथा—

1. व्यावहारिक शिक्षा : Practical Education—आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षा को आध्यात्मिक विकास और मोक्ष-प्राप्ति का साधन बनाना सर्वथा अनुचित है। अतः यह आवश्यक है कि जिस प्रकार मुस्लिम-शिक्षा में व्यावहारिक विषयों को महत्त्व दिया जाता था, उसी प्रकार भारत की आधुनिक शिक्षा में भी दिया जाय। व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करके छात्र—समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं और साथ ही अपनी जीविका का सरलता से उपार्जन भी कर सकते हैं।

2. निःशुल्क शिक्षा : Free Education—मुस्लिम-शिक्षा, प्राथमिक और उच्च—दोनों स्तरों पर निःशुल्क थी। आधुनिक भारतीय शिक्षा, प्राथमिक स्तर पर तो निःशुल्क है, पर माध्यमिक और उच्च स्तरों पर नहीं है। अतः इन स्तरों पर शिक्षा को निःशुल्क बनाया जाना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि आज की शिक्षा इतनी महँगी हो गई है कि अनेक छात्र माध्यमिक और विशेष रूप से उच्च शिक्षा के लिए लालायित होने पर भी उसे प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

यह तथ्य निर्धन परिवारों के बालकों के विषय में विशेष रूप से सत्य है। उच्च शिक्षा को निःशुल्क बनाने से राज्य-सरकारों का व्यय अवश्य बढ़ जायगा, पर इससे हित भी अवश्य अधिक होगा। इसकी पुष्टि में यह कारण प्रस्तुत किया जा सकता है कि दो को प्रतिभाशाली व्यक्ति उपलब्ध हो सकते हैं, जो प्रखर बुद्धि वाले होते हुए भी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए अपने को असमर्थ पाते हैं।

3. व्यक्तिगत सम्पर्क : Individual Contact—मुस्लिम युग के अधिकांश मदरसों में शिक्षक और छात्र साथ-साथ रहते थे। फलस्वरूप, उनमें व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो जाता था। इस सम्पर्क के माध्यम से शिक्षक, छात्रों में विशिष्ट गुणों का समावेश करते थे।

आधुनिक भारतीय शिक्षा में व्यक्तिगत सम्पर्क नाम की कोई चीज नहीं है। यही कारण है कि छात्रों में उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता की निरन्तर वृद्धि होती चली जा रही है। इसको समाप्त करने और छात्रों का चारित्रिक उन्नयन करने के लिए शिक्षकों से उनका निकट और व्यक्तिगत सम्पर्क होना परम आवश्यक है। अतः मुस्लिम शिक्षा में पाये जाने वाले शिक्षकों और छात्रों के व्यक्तिगत सम्पर्क को आधुनिक भारतीय शिक्षा में समाविष्ट किया जाना अनिवार्य है।

4. शिक्षक की स्थिति में उन्नति : Elevation of Teacher's Status—आधुनिक भारत मे शिक्षक की स्थिति निम्न से निम्नतर होती चली जा रही है। इसके लिए आंशिक रूप से शिक्षक, पर मुख्य रूप से समाज और राज्य उत्तरदायी हैं। इसका कारण यह है कि न तो शिक्षक को समाज में सम्मान प्राप्त है और न राज्य का संरक्षण। अतः आवश्यक है कि समाज और राज्य—दोनों ही उसके प्रति अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करें और उसकी स्थिति को समुन्नत बनाने में उद्योग करें। मुस्लिम युग में शिक्षक को छात्रों की भक्ति, समाज का सम्मान और राज्य का संरक्षण प्राप्त था। आधुनिक भारत में मुस्लिम-शिक्षा के इस तत्त्व को एकमत से स्वीकार किया जाना चाहिए।

5. धार्मिक व लौकिक शिक्षा का समन्वय : Synthesis of Religious & Secular Education—आज के भौतिकवादी युग में लौकिक शिक्षा की असीम आवश्यकता है। किन्तु इस शाश्वत सत्य को विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि धर्म—व्यक्ति के जीवन और चरित्र का प्रधान आधार-स्तम्भ है। आधुनिक भारतीय शिक्षा की परिधि में से धर्म को बाहर निकाल कर इस आधार-स्तम्भ को हटा दिया गया है।

इसके कुत्सित परिणाम, भारत के प्रत्येक स्थान में देखने को मिल रहे हैं। अकारण झूठ बोलना, स्वार्थवश धोखा देना, निजहित के लिए लूटमार करना, काम-वासना की तृप्ति के लिए अबलाओं का अपहरण करना—ये सभी बातें धर्मविहीन शिक्षा की द्योतक हैं। इनके कारण आज के भारतीय अपने आदि पूर्वजों की बर्बर अवस्था की ओर अत्यन्त त्वरित गति से बढ़ रहे हैं। इससे उनकी रक्षा तभी की जा सकती है, जब मुस्लिम-शिक्षा का अनुकरण करके, आधुनिक भारतीय शिक्षा में भी धार्मिक और लौकिक शिक्षा का समन्वय किया जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Give a brief account of the organization of education in medieval India.
मध्यकालीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. What were the aims and ideals of Muslim education ? How far were they formulated keeping in view the interests of Muslim rulers of India ?
मुस्लिम-शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श क्या थे ? उनका निर्माण भारत के मुस्लिम शासकों के हितों को कहाँ तक ध्यान में रखकर किया गया था ?
3. Describe briefly the essential features of Muslim education. Which of these would you like to revive in modern India and why ?
मुस्लिम-शिक्षा की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। आप आधुनिक भारत में इनमें से किन को पुनर्जीवित करना चाहेंगे और क्यों ?
4. Describe briefly the main defects of education prevalent in the medeival period. How far have these defects been removed in the modern education of India ?
मध्यकाल में प्रचलित शिक्षा के मुख्य दोषों की विवेचना कीजिए। भारत की आधुनिक शिक्षा में इन दोषों का निवारण कहाँ तक हुआ है ?

●●

4

यूरोपीय मिशनरियों के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य

EARLY EDUCATIONAL ACTIVITIES OF EUROPEAN MISSIONARIES

(1600—1833)

"The beginning of the present system of education in India can be traced to the efforts of the Christian missionaries." —A. N. Basu.

विषय-प्रवेश

सुदूर अतीत से ही भारत के पश्चिमी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। हिन्दू राजाओं के समय में उन देशों में भारतीय वस्त्र, रत्न आदि की बहुत माँग थी। इन राजाओं की अपेक्षा अधिक ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करने वाले मुसलमान शासकों ने विलास की सामग्री और कला की कृतियों के उत्पादन को उदारतापूर्वक प्रोत्साहन दिया। ये वस्तुएँ शीघ्र ही पश्चिमी देशों में विख्यात हो गईं और वहाँ पहुँचने लगीं। उस समय वहाँ भारत से व्यापार करने के तीन मुख्य केन्द्र थे—टायर, सिकन्दरिया और कुस्तुनतुनिया। इन केन्द्रों को भारतीय वस्तुएँ उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रदेश से होती हुई, प्राचीन स्थल-मार्गों से जाती थीं। इनके बदले में वहाँ से चाँदी, मूँगा, मदिरा आदि वस्तुएँ आती थीं। आयात और निर्यात के इन पदार्थों का क्रय-विक्रय करके यूरोप के व्यापारी धनवान बन गए थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी में तुर्कों की दक्षिणी-पश्चिमी एशिया और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप की विजय के कारण भारत और यूरोप के मध्य प्राचीन स्थल-मार्ग अवरुद्ध हो गए। इससे यूरोप के व्यापारियों को चिन्तित देखकर, वहाँ के नाविकों ने भारत के लिए जल-मार्ग खोजने का बीडा उठाया। इस कार्य का श्रेय पुर्तगाल नाविक, वास्को-ड-गामा (Vasco-De-Gama) को प्राप्त हुआ। उसने 27 मई, 1498 को भारत के पूर्वी तट पर पहुँचकर, कालीकट के प्रसिद्ध बन्दरगाह में अपने जहाज का लंगर डालकर खड़ा किया।

इस नवीन जल-मार्ग की खोज के फलस्वरूप यूरोप के व्यापारियों का भारत में आगमन हुआ। आरम्भ में उनकी रुचि केवल व्यापार में थी। किन्तु, जैसा कि टी० एन० सिक्वेरा ने लिखा है—**"व्यापार के बाद इस देश में उनका झण्डा लहराया और उसके साथ उनकी शिक्षा का आरम्भ हुआ।"**

"The flag followed trade. And with the trade came education."
—T. N. Siqueira : *The Education of India*, p. 19.

मिशनरियों द्वारा आधुनिक शिक्षा का आरम्भ

(INTRODUCTION OF MODERN EDUCATION BY MISSIONARIES)

यूरोप के व्यापारियों के भारत-आगमन के कुछ समय उपरान्त, वहाँ के ईसाई मिशनरियों ने इस देश में प्रवेश किया। मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य—भारतवासियों को को अपने धर्म का अनुयायी बनाना था। न कि यूरोपीय ढंग की शिक्षा-संस्थाओं का शिलान्यास करना। फिर भी, उन्होंने इस कार्य को प्राथमिकता प्रदान की। इसका कारण बताते हुए, प्रसिद्ध मिशनरी डॉ० डी० ओ० ऐलेन (Dr. D. O. Allen) ने लिखा है—**"शिक्षा-संस्थाओं ने मिशनरियों को भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने और उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों से अवगत कराने का अवसर प्रदान किया।"**

इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाने के लिए, मिशनरियों ने भारत के विभिन्न स्थानों में शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की और उनमें पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरम्भ किया। यही कारण है मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्त्तक माना जाता है। इस सम्बन्ध में नूरुल्ला व नायक के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैं—**"मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा-पद्धति के प्रवर्त्तक होने का सम्मान प्राप्त है।"**

"To the missionaries belong the honour of being pioneer in the modern educational system of India."
—Nurullah & Naik : *A History of Education in India*, p. XIV.

मिशनरियों के शिक्षा-कार्य

(EDUCATIONAL ACTIVITIES OF MISSIONARIES)

यूरोप के मिशनरियों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किये, उनका संक्षिप्त विवरण द्रष्टव्य है—

1. डच मिशनरी : Dutch Missionaries—डच मिशनरियों ने चिनसुरा, नागापट्टम और विमलीपट्टम में कुछ स्कूलों का निर्माण किया। इन स्कूलों में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों और अन्य भारतीयों के बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। डच मिशनरियों ने धर्म-प्रचार के कार्य को वरीयता नहीं दी। अतः उन्होंने अपने स्कूलों को धर्म-प्रचार का केन्द्र नहीं बनाया।

2. डेन मिशनरी : Dane Missionaries—डेन मिशनरियों ने तंजौर, सीरामपुर त्रिचनापली और फोर्ट सेण्ट डेविड में प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण किया। इन विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषाएँ थीं। डेन मिशनरियों ने अपने धर्म-प्रचार के कार्य में मुसलमानों से सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा की। अतः उन्होंने मुसलमान शासकों की प्राथमिक शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया। उन्होंने ट्रानक्यूबर में एक प्रशिक्षण-विद्यालय का भी नव-निर्माण किया, जिसमें प्राथमिक विद्यालयों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता था।

3. फ्रांसीसी मिशनरी : French Missionaries—फ्रांसीसी मिशनरियों ने माही, यनाम, कारीकल, पांडिचेरी और चन्द्रनगर में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों की विशेषता यह थी कि इनमें बालकों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। इनमें अध्ययन करने वाले बालकों को कभी-कभी मुफ्त भोजन, वस्त्र और पुस्तकें दी जाती थीं।

4. पुर्तगाली मिशनरी : Portuguese Missionaries—पुर्तगाली मिशनरियों ने गोवा, डामन, ड्यू, बेसीन, लंका, हुगली, कोचीन और चटगाँव में प्राथमिक विद्यालय स्थापित किये। इन विद्यालयों में पुर्तगाली और स्थानीय भाषाओं के अतिरिक्त कृषि, गणित, ईसाई-धर्म और थोड़ी-सी दस्तकारी की शिक्षा दी जाती थी।

पुर्तगाली मिशनरियों ने प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था की। उन्होंने गोआ, बेसीन, चॉल और बन्दोरा में कॉलेजों का निर्माण किया। इन कालेजों में लेटिन, व्याकरण, संगीत, तर्कशास्त्र, ईसाई-धर्म और पुर्तगाली भाषा की शिक्षा दी जाती थी। इन कॉलेजों में चॉल का Jesuit College और बन्दोरा का St. Anne College विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।

5. अंग्रेज मिशनरी : English Missionaries—अन्य मिशनरियों की अपेक्षा अंग्रेज मिशनरियों का कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक था। उन्होंने मद्रास, बम्बई और बंगाल में धर्म विद्यालयों (Charity School) की स्थापना की। इनमें कम्पनी के कर्मचारियों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी।

अंग्रेज मिशनरियों ने बंगाल को अपने धर्म-प्रचार का मुख्य केन्द्र बनाया। वहाँ सीरामपुर नामक स्थान के तीन मिशनरी, ईसाई-धर्म को व्यापक रूप प्रदान करने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील थे। इन मिशनरियों के नाम थे—कैरे, वार्ड और मार्शमैन (Carey, Ward & Marshman)। ये तीनो मिशनरी—"सीरामपुर त्रिमूर्ति" (Serampore Trio) के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने सन् 1808 ई० में "हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम निवेदन" *(Addresses to Hindus & Muslims)* नामक पुस्तिका प्रकाशित की। उसमें उन्होंने मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर और हिन्दू-धर्म को अज्ञान, आडम्बर और मिथ्या विश्वास से परिपूर्ण बताया। इस आक्षेप के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों में क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसको शान्त करने के लिए तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर-जनरल, लार्ड मिन्टो (Lord Minto) ने तीनों पादरियों को बन्दी करवा दिया और मिशनरियों के धर्म-प्रचार कार्य पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की धर्म-विरोधी नीति से मिशनरियों को अत्यधिक असन्तोष हुआ। किन्तु उन्होंने अपने को भारत में इस नीति के प्रतिकूल कार्य करने में असमर्थ पाया। अतः जैसा कि नूरुल्ला व नायक ने लिखा है—**"मिशनरियों और उनके मित्रों ने धर्म-प्रचार-कार्य में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से इंगलैण्ड में आन्दोलन प्रारम्भ किया। आन्दोलन करने वालों में मुख्य स्थान—चार्ल्स ग्रांट का था।"**

चार्ल्स ग्रांट : Charles Grant

चार्ल्स ग्रांट अनेक वर्षों तक इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी के रूप में भारत में कार्य कर चुका था। अपने पद से अवकाश प्राप्त करके, वह इंगलैण्ड लौट गया।

था। वहाँ उसने सन् 1792 ई० में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका शीर्षक था—"ग्रेट ब्रिटेन के एशियाई प्रजाजनों की सामाजिक स्थिति पर विचार।"

"Observations on the State of Society among the Asiatic Subjects of Great Britain."

ग्रांट ने अपनी पुस्तिका में हिन्दुओं का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए लिखा—**"हिन्दू इसलिए गलती करते हैं, क्योंकि उनमें अज्ञानता है और उनको उनकी गलतियाँ उचित प्रकार से कभी बताई नहीं गयी हैं।"**

"The Hindoos err, because they are ignorant, and their errors have never been fairly laid before them." **—Charles Grant.**

ग्रांट ने अपनी पुस्तिका में हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमानों की अज्ञानता का भी चित्र अंकित किया। उसने इन दोनों जातियों की अज्ञानता का निवारण करने के लिए अग्रांकित पचमुखी योजना प्रस्तुत की—(1) भारत में विद्यालयों की स्थापना, (2) विद्यालयों में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा, (3) विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा और साहित्य की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, (4) पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान का प्रसार, और (5) ईसाई-धर्म का व्यापक प्रचार। इस योजना को प्रस्तुत करने के पश्चात ग्रांट ने लिखा—**"इस योजना की सफलता के लिए केवल सरकार के हार्दिक संरक्षण की आवश्यकता है। यदि सरकार इसकी सफलता चाहती है, तो यह अवश्य सफल हो सकती है।"**

"There is nothing wanting to the success of this plan, but, the hearty patronage of Government. If they wish it to succeed, it can and must succeed." **—Charles Grant.**

ग्रांट की धारणा थी कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्, भारतीयों की विचारधारा में परिवर्तन हो जायेगा और वे ईसाई-धर्म के अनुयायी बन जायेंगे। यद्यपि उसकी यह धारणा निराधार थी, तथापि भारतीयों की शिक्षा के सम्बन्ध में उसके प्रस्ताव उसकी दूरदर्शिता के प्रमाण हैं। उसने सन् 1792 में ही भारतीयों के लिए अंग्रेजी शिक्षा के महत्त्व को भली-भाँति समझ लिया था। अपने प्रस्तावों द्वारा उसने भारतीयों की शिक्षा के लिए, जिस अग्रिम रूपरेखा का निर्माण किया, उसे भविष्य में मान्यता प्रदान की गई। इसीलिए ग्रांट को आधुनिक भारतीय शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है। नूरुल्ला व नायक ने ठीक ही लिखा है—**"ग्रांट को कभी-कभी भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।"**

"Grant is sometimes described as the father of modern education in India." **—Nurullah & Naik** : *op. cit.*, p. 77.

मिशनरी कार्यों का पुनरारम्भ
(Revival of Missionary Activities)

ग्रांट के विचारों का ब्रिटिश लोकसभा के सदस्य, रॉबर्ट विल्बरफोर्स (Robert Wilberforce) पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। अतः जब सन् 1793 में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का "आज्ञा-पत्र" (Charter) पुनरावर्तन (Renewal) के लिए हाउस ऑफ कामन्स के समक्ष आया, तब विल्बरफोर्स ने यह प्रस्ताव रखा कि "आज्ञा-पत्र" में एक ऐसी धारा जोड़ दी जाय, जिससे मिशनरियों को पर्याप्त संख्या में भारत भेजा जा सके।

किन्तु कम्पनी के संचालक—"सीरामपुर त्रिमूर्ति" के कार्यों के कारण भारतीयों में उत्पन्न होने वाले रोष को भूले नहीं थे। वे भारत में अपने नवनिर्मित राज्य को मिशनरियों को धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता देकर, खोना नहीं चाहते थे। अतः **कम्पनी के संचालकों ने** विल्बरफोर्स के प्रस्ताव का प्रबल विरोध करते हुए कहा—**"हिन्दुओं की धार्मिक तथा नैतिक पद्धति अन्य किसी राष्ट्र से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अतएव न उनके धर्म-परिवर्तन की ही कोशिश की जाय और न उन्हें उनकी संस्कृति की शिक्षा के सिवा अन्य प्रकार के ज्ञान प्रदान करने की चेष्टा ही की जाय।"**

संचालकों के विरोध का समर्थन करते हुए, रैंडल जेकसन नामक हाउस ऑफ कामन्स के एक सदस्य ने कहा—**"हमने अपनी शिक्षा का प्रचार करके अमरीका में अपने उपनिवेशों को खो दिया। अतः हमें भारत में अपनी शिक्षा का प्रसार नहीं करना चाहिए।"**

"We lost our colonies in America by imparting our education there; we need not do so in India too." —**Randle Jackson.**

उक्त विरोधों के कारण, विल्बरफोर्स का प्रस्ताव उखाड़ कर फेंक दिया गया। किन्तु, इस असफलता ने ग्रांट को निरुत्साहित नहीं किया और वह अपने आन्दोलन को निरन्तर नव जीवन प्रदान करता रहा। अन्ततोगत्वा, जब सन् 1813 में कम्पनी का "आज्ञा-पत्र" पुनरावर्तन के लिए हाउस ऑफ़ कामन्स में फिर आया, तो उसमें एक नवीन धारा जोड़कर अंग्रेज मिशनरियों को भारत में बेरोक-टोक प्रवेश करने का अधिकार दे दिया गया। इसका परिणाम बताते हुए, **नूरुल्ला व नायक** ने लिखा है—**"मिशनरियों ने अति विशाल संख्या में भारत आना और अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना करना आरम्भ किया। इस प्रकार, उन्होंने आधुनिक शिक्षा-पद्धति का शिलान्यास किया।"**

"Missionaries began to land in India in large numbers and establish English schools, thereby laying the foundation of the modern educational system." —**Nurullah & Naik** : *op. cit.*, p. 82.

उपसंहार

भारत आने वाले यूरोपीय मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य—यहाँ के निवासियों को ईसाई-धर्म में दीक्षित करना था। उनके इस उद्देश्य की चाहे जितनी भी निन्दा की जाय, पर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा को साधन बनाकर, उन्होंने इस क्षेत्र में जो कार्य किए, वे भारतीय शिक्षा के इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेंगे। उन्होंने इस देश में न केवल आधुनिक शिक्षा-पद्धति को प्रचलित किया, वरन् स्वयं शिक्षा-संस्थाओं का संचालन करके, भारतीयों के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया।

उन्होंने यह कार्य उस समय किया, जब प्राचीन भारतीय शिक्षा, यवनों द्वारा पदाक्रान्त की जा चुकी थी और मुस्लिम शिक्षा अपने संरक्षकों के अभाव में डगमगा रही थी। ऐसे समय में मिशनरियों ने एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करके, इस देश की जनता का अकथनीय हित किया। ए० एन० वसु का यह कथन अक्षरशः सत्य है—**"यह मुख्यतः मिशनरियों के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इस देश में शिक्षा की एक नवीन पद्धति का आविर्भाव देखा।"**

"It was mainly due to the efforts of the missionaries that the early years of the nineteenth century witnessed the emergence of a new system of education in this country."

—**A. N. Basu** : *Education in Modern India*, p. 17.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Give a brief account of the early educational activities of European missionaries.
यूरोपीय मिशनरियों के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. "The beginnings of the present system of education in India can be traced to the efforts of Christian missionaries." Discuss.
"भारत में शिक्षा की वर्तमान प्रणाली का आरम्भ ईसाई-मिशनरियों के प्रयासों में खोजा जा सकता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. "Charles Grant is often described as the father of modern education in India." Elucidate.
"चार्ल्स ग्रांट को बहुधा भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।" इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए।

●●

5

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य

EARLY EDUCATIONAL ACTIVITIES OF ENGLISH EAST INDIA COMPANY

(1600—1839)

"The company was empowered to perform all the State functions—executive, judicial, legislative and economic."
—Dr. Balkrishna.

विषय-प्रवेश

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को रानी एलिजाबेथ प्रथम (Queen Elizabeth I) से 31 दिसम्बर, सन् 1600 ई० को पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए "आज्ञा-पत्र" (Charter) प्राप्त हुआ था। उस समय से लेकर लगभग 150 वर्ष तक कम्पनी का मुख्य उद्देश्य—व्यापार करना था। किन्तु, यूरोप की अन्य व्यापारिक कम्पनियों के समान उसे थोड़ा-बहुत धर्म-प्रचार का कार्य भी करना पड़ा।

सन् 1757 में प्लासी की विजय और सन् 1765 में शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की "दीवानी" प्राप्त करने के पश्चात्, इस देश के पर्याप्त भू-भाग के शासन की बागडोर कम्पनी के हाथ में आ गई और उसकी सत्ता ने राजनीतिक रूप धारण किया। अपनी इस सत्ता को चिरस्थायी बनाने के लिए, कम्पनी द्वारा भारतीयों की शिक्षा के प्रति ध्यान दिया जाना अनिवार्य हो गया। यहीं से इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारतीय शिक्षा-नीति का आरम्भ होता है। इस नीति के अन्तर्गत कम्पनी ने सन् 1833 तक उच्च शिक्षा की कुछ संस्थाओं की स्थापना की। हम क्रमबद्धता की दृष्टि से इनका वर्णन करने से पूर्व, कम्पनी द्वारा संचालित किये जाने वाली प्रारम्भिक शैक्षिक संस्थाओं का उल्लेख कर रहे हैं।

स्कूलों व कालेजों की स्थापना
(ESTABLISHMENT OF SCHOOLS & COLLEGES)

1. प्राथमिक विद्यालय : Primary Schools—सन् 1765 ई० से पूर्व कम्पनी का ध्यान मुख्य रूप से व्यापार पर और आंशिक रूप में धर्म-प्रचार पर केन्द्रित था। अतः

उसने जनसाधारण की शिक्षा में कोई रुचि व्यक्त नहीं की। उसने केवल अपने कर्मचारियों के बच्चों को निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा देने के लिए कुछ धर्मार्थ विद्यालयों (Charity Schools) की स्थापना की। इन विद्यालयों में बच्चों को पढ़ने, लिखने, साधारण गणित और ईसाई-धर्म की शिक्षा दी जाती थी।

सन् 1765 तक कम्पनी की शिक्षा-नीति उक्त बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने तक ही सीमित रही। किन्तु, उसके उपरान्त कम्पनी की शिक्षा-नीति में परिवर्तन हुआ और उसने उच्च शिक्षा की संस्थाएँ स्थापित कीं। हम इनमें से चार महत्त्वपूर्ण संस्थाओं का विवरण लेखबद्ध कर रहे हैं।

2. कलकत्ता मदरसा : Calcutta Madarassah—इस संस्था की स्थापना, भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल और बँगला एवं फारसी के प्रगाढ़ विद्वान, वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) के व्यक्तिगत प्रयत्न के फलस्वरूप सन् 1781 में हुई। इसकी स्थापना का तात्कालिक कारण हेस्टिंग्ज को कलकत्ता नगर के कुछ सम्भ्रान्त मुसलमानों से प्राप्त होने वाला आवेदन-पत्र था।

"कलकत्ता मदरसा" में शिक्षा की अवधि 7 वर्ष की थी और शिक्षा का माध्यम, अरबी भाषा थी। इस संस्था के पाठ्यक्रम में अग्रांकित विषयों को स्थान दिया गया था—दर्शन, व्याकरण, अंकगणित, रेखागणित, तर्कशास्त्र, नक्षत्र-विद्या, मुस्लिम कानून और धार्मिक सिद्धान्त। कुछ ही समय में इस संस्था की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। अतः सुदूर गुजरात, कर्नाटक और कश्मीर तक के विद्यार्थीगण इसमें शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने लगे।

"कलकत्ता मदरसा" स्थापित करने में हेस्टिंग्ज का प्रत्यक्ष उद्देश्य—कम्पनी की नौकरी के लिए मुसलमानों को उचित प्रकार की शिक्षा प्रदान करना था। किन्तु, कूटनीति-परायण हेस्टिंग्ज के वास्तविक उद्देश्य के दर्शन, हॉवेल के अग्रांकित वाक्य में होते हैं—**"कलकत्ता के मुसलमानों की सद्भावना प्राप्त करने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा 'कलकत्ता मदरसा' स्थापित किया गया।"**

"The *Calcutta Madarassah* was founded by Warren Hastings in order to conciliate the Mohammedans of Calcutta."
—A. Howell : *Education in India*, p. 1.

3. बनारस संस्कृत कॉलेज : Benares Sanskrit College—इस संस्था की स्थापना, बनारस राज्य के रेजीडेण्ट, जानेथन डंकन (Jonathan Duncan) के व्यक्तिगत प्रयत्न के परिणामस्वरूप सन् 1791 में हुई। इस संस्था में "मनुस्मृति" के अनुसार हिन्दू-धर्म-सिद्धान्त, न्याय, कानून, गणित, इतिहास, तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी।

जिस दृष्टि से मुसलमान नवयुवकों के लिए "कलकत्ता मदरसा" की स्थापना की गई थी, उस दृष्टि से हिन्दू नवयुवकों के लिए "बनारस संस्कृत कॉलेज" की सृष्टि की गई थी। दूसरे शब्दों में, मुसलमान नवयुवकों को मुस्लिम कानूनों और हिन्दू नवयुवकों को हिन्दू कानूनों में विशेष योग्यता प्रदान करके, अंग्रेज न्यायाधीशों को सहायता देने के लिये तैयार किया जाता था।

किन्तु, वास्तव में जिस प्रकार "कलकत्ता मदरसा" की स्थापना, मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए की गई थी, उसी प्रकार "बनारस संस्कृत कॉलेज" का शिलान्यास, हिन्दुओं को संतुष्ट करने के लिए किया गया था। नूरुल्ला व नायक के शब्दों में —**"बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना, कम्पनी के नवविजित प्रदेशों की हिन्दू जनता की सद्भावना प्राप्त करने के प्रयास के परिणामस्वरूप की गई थी।"**

4. फोर्ट विलियम कॉलेज : Fort William College—इस संस्था की सृष्टि भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल, लार्ड वेलेजली (Lord Wellesley) द्वारा सन् 1800 में कलकत्ता नगर में की गई। इस संस्था की सृष्टि का मुख्य उद्देश्य बताते हुए, **टी० एन० रिक्चेरा** ने लिखा है—**"यह कालेज, कम्पनी के असैनिक कर्मचारियों के लिए था और उनको भारतीय भाषाओं, हिन्दी, मुस्लिम क़ानून एवं भारतीय इतिहास की शिक्षा प्रदान करता था।"**

इस कॉलेज में डॉ० केरे (Carey), कोलब्रुक (Colebrooke) और पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे सुविख्यात मनीषी शिक्षा देने का कार्य करते थे। डॉ० गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने, जिसको आधुनिक उर्दू का जन्मदाता कहा जाता है, इस कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में सन् 1804 से 1820 तक कार्य किया।

5. पूना संस्कृत कॉलेज : Poona Sanskrit College—सन् 1818 में अंग्रेजों ने अन्तिम पेशवा के राज्य का अन्त करके, बम्बई प्रेसीडेन्सी का निर्माण किया। इस घटना के एक वर्ष बाद पूना का रेज़ीडेन्ट, एल्फिन्स्टन (Elphinstone) इस नव-निर्मित प्रेसीडेन्सी का गवर्नर नियुक्त हुआ। पूना में कुछ समय तक निवास करने के कारण, वह इस तथ्य से अवगत था कि पेशवागण अपने दक्षिणा-कोष से लगभग 5 लाख रुपया प्रति वर्ष ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में देते थे।

ऐल्फिन्स्टन ने दक्षिणा-कोष के कुछ अंश की सहायता से सन् 1821 में "पूना संस्कृत कॉलेज" की स्थापना की। राजनीति-निपुण एल्फ़िन्स्टन का इस संस्था को स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य—दक्षिण के प्रभावशाली ब्राह्मणों को संतुष्ट करना था। **डॉ० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार—"इस संस्था को खोलने का मुख्य उद्देश्य एल्फ़िन्स्टन का यह था कि पेशवा राज्य का अन्त हो जान के कारण ब्राह्मणों में असन्तोष न फैले।"**

1813 का आज्ञा-पत्र
(CHARTER OF 1813)

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के "आज्ञा-पत्र" का प्रत्येक 20 वर्ष के पश्चात् ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पुनरावर्तन किया जाता था। इस उद्देश्य से सन् 1813 में "आज्ञा-पत्र" को पार्लियामेण्ट के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उस अवसर पर घोर विरोध होते हुए भी ग्रांट और विल्बरफोर्स के दल को विजय प्राप्त हुई। सन् 1813 के "आज्ञा-पत्र" में अग्रांकित धारा को जोडकर, भारत में शिक्षा-प्रसार का उत्तरदायित्व कम्पनी के ऊपर रखा गया—**"साहित्य के पुनरुद्धार और समुन्नति के लिए भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहित करने के लिए और भारत के ब्रिटिश प्रदेशों के निवासियों में विद्वानों के ज्ञान का प्रसार एवं विकास करने के लिए प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रुपये की धनराशि पृथक् रखी जायगी और व्यय की जायगी।"**

"....a sum of not less than one lac of rupees in each year shall be set apart and applied to the revival and improvement of literature and encouragement of the learned natives of India and for the introduction and promotion of knowledge of sciences among the inhabitants of the British territories in India."

—**Charter of 1813, Section 43.**

इस धारा का भारतीय शिक्षा के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके कारण ग्रांट और विल्बरफोर्स द्वारा लगभग बीस वर्ष तक चलाए जाने वाले आन्दोलन की इतिश्री हुई। इसने भारतीयों की शिक्षा को कम्पनी का उत्तरदायित्व बताया। इसने भारत में अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करके, भारतीय शिक्षा को एक नई दिशा में मोड़ा। **नूरुल्ला व नायक के अनुसार—"1813 के आज्ञा-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा में मोड़ा।"**

"The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education."

—**Nurullah & Naik :** *op. cit.*, p. 82.

प्राच्य-पाश्चात्य विवाद
(ORIENTAL-OCCIDENTAL CONTROVERSY)

सन् 1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा ने भारतीयों की शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी पर रखा और उसे उनकी शिक्षा पर प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रुपये की धनराशि व्यय करने का आदेश दिया। किन्तु "धारा" में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था कि यह धनराशि किस प्रकार की शिक्षा पर व्यय की जाय—प्राच्य शिक्षा पर या पाश्चात्य शिक्षा पर ? फलतः इस प्रश्न को लेकर, कम्पनी के कर्मचारियों में शिक्षा के स्वरूप के विषय में विवाद उठ खड़ा हुआ। इस विवाद को **"प्राच्य-पाश्चात्य विवाद"** की संज्ञा दी गई है। इस विवाद में भाग लेने वाले दो मुख्य दल थे—प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी (Orientalists & Occidentalists)।

विवाद का मुख्य कारण
(MAIN CAUSE OF CONTROVERSY)

विवाद का मुख्य कारण—सन् 1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा में प्रयोग किये गये दो शब्द थे—"साहित्य" और "भारतीय विद्वान्"। प्राच्यवादियों और पाश्चात्यवादियों ने इन दोनों शब्दों की व्याख्या दो विभिन्न प्रकार से की। इस व्याख्या पर प्रकाश डालते हुए, **डॉ० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय** ने लिखा है—"प्राच्यवादियों का कहना था कि इस धारा के 'साहित्य' शब्द के अन्तर्गत आते हैं—केवल 'अरबी और संस्कृत साहित्य', एवं 'भारतीय विद्वान्' का अर्थ है—इन दोनों भाषाओं में से किसी भी एक भाषा का भारतीय विद्वान्। पाश्चात्यवादियों का मत था कि इन दोनों शब्दों का अर्थ इतना संकीर्ण नहीं है। 'साहित्य' में अंग्रेजी का भी विशेष स्थान है।

प्राच्यवादी : Orientalists

प्राच्यवादी दल में कम्पनी के पुराने और अनुभवी कर्मचारी थे। इसमें सर्वप्रथम स्थान, वारेन हेस्टिंग्ज और जानेथन डंकन का था, जिन्होंने "कलकत्ता मदरसा" और

"बनारस संस्कृत कॉलेज" की सृष्टि करके, प्राच्यवादी नीति के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। लार्ड मण्टो भी इसी नीति का पोषक था। इस नीति को बंगाल की "लोक-शिक्षा-समिति" (General Council of Public Instruction) के अधिकांश सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। इन सदस्यों में दो मुख्य थे—"समिति" का मन्त्री, विल्सन (H. H. Wilson) और बंगाल का शिक्षा-सचिव, प्रिन्सेप (H. T. Prinsep)। प्रिन्सेप—प्राच्यवादी दल का नेता भी था।

कम्पनी के उपरिलिखित सभी कर्मचारी और प्राच्यवादी-नीति के अन्य पोषक, उच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ थे। उनकी धारणा थी कि भारतवासियों को विभाजित रख कर ही उन पर शासन किया जा सकता था। अतः वे इस देश के निवासियों को अरबी, फारसी और संस्कृत पर आधारित शिक्षा प्रदान करके, विभिन्न धर्मों और जातियों में विभाजित रखना चाहते थे। विल्सन इस बात का घोर विरोधी था कि भारतीय, अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करके, उसके देशवासियों से समानता करने का दावा करें। प्रिन्सेप का दृढ़ विचार था कि भारतीयों में अंग्रेजी पर अधिकार प्राप्त करने की क्षमता नहीं है।

अन्य प्राच्यवादियों ने भारतीयों को अंग्रेजी की शिक्षा दिए जाने के विपक्ष में तीन तर्क प्रस्तुत किये। **पहला,** भारत में पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों का प्रसार करने से इस देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का लोप हो जायगा। **दूसरा,** भारत में अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन देने से उस भारतीय साहित्य का विनाश हो जायगा, जिसमें अनेक युगों का ज्ञान संचित है। **तीसरा, टी० एन० सिक्वेरा** के अनुसार—**"जब भारतीयों की अपनी स्वयं की एक प्राचीन और भव्य संस्कृति है, तब उनको अन्य देश की भाषा और साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाध्य करना दोषपूर्ण नीति है।"**

प्राच्यवादियों ने उपर्युक्त तर्क उपस्थित करके, इस बात पर बल दिया कि भारतीयों की प्राचीन शिक्षा, साहित्य और संस्कृति को सुरक्षित रखना आवश्यक है। अतः उनकी शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाय और उनमें पाश्चात्य ज्ञान का कदापि प्रसार न किया जाय।

पाश्चात्यवादी : Occidentalists

पाश्चात्यवादी दल में कम्पनी के नवयुवक कर्मचारी और मिशनरी थे। वे सम्पूर्ण देश में यत्र-तत्र बिखरे हुए थे। इसलिए, दल का न तो कोई संगठित स्वरूप था और न उनका कोई नेता ही था। फिर भी, उन्होंने प्राच्यवादियों की नीति का जमकर विरोध किया। उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि प्राच्य शिक्षा-प्रणाली मरणासन्न अवस्था को प्राप्त कर चुकी है और उसे पुनर्जीवन प्रदान करना मानव-प्रयास से बाहर की बात है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह घोषित किया कि अरबी फारसी और संस्कृत के साहित्यों में पुरातन और निरर्थक विचारों के सिवा किसी प्रकार का उपयोगी ज्ञान नहीं मिलता है। अतः भारतीयों का मानसिक विकास करने के लिए, उनको अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों से अवगत कराया जाना परम आवश्यक है।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि पाश्चात्यवादियों ने भारतीयों में यूरोपीय ज्ञान और विज्ञानों के प्रसार का समर्थन किसी निस्स्वार्थ भावना से नहीं, वरन् निज हित की भावना से प्रेरित होकर किया। उन्हें अपने व्यापारिक और प्रशासकीय

कार्यालयों के लिए अंग्रेजी शिक्षित "बाबू-वर्ग" की आवश्यकता थी। उन्हें यह बात असह्य थी कि उनके देशवासी, इंगलैड से आकर इस निम्न वर्ग में सम्मिलित हों। अतः उन्होंने यही अधिक विवेकपूर्ण समझा कि भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार, करके "बाबू-वर्ग" का निर्माण किया जाय।

इस प्रकार, प्राच्यवादियों और पाश्चात्यवादियों का विवाद, सन् 1834 तक चलता रहा। अन्त में, जनवरी, 1835 में 'लोक-शिक्षा-समिति' के मन्त्री ने दोनों दलों के वक्तव्यों को भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिंक (Bentinck) के सम्मुख निर्णयार्थ प्रस्तुत किया।

मैकॉले का विवरण-पत्र, 1835
(MACAULAY'S MINUTE, 1835)

10 जून, सन् 1834 को लार्ड मैकॉले (Macaulay) ने गवर्नर-जनरल की कौंसिल के "कानून-सदस्य" के रूप में भारत में पदार्पण किया। उस समय तक "प्राच्य-पाश्चात्य विवाद" उग्रतम रूप धारण कर चुका था। बैंटिंक का विश्वास था कि मैकॉले जैसा प्रकाण्ड विद्वान् ही इस विवाद को समाप्त कर सकता था। इस विचार से उसने मैकॉले को बंगाल की "लोक-शिक्षा-समिति" का सभापति नियुक्त किया। फिर, उसने मैकॉले से सन् 1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा में अंकित एक लाख रुपये की धनराशि को व्यय करने की विधि और अन्य विवादग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में कानूनी सलाह देने का अनुरोध किया। साथ ही, उसने "समिति" के मन्त्री को प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी दलों के वक्तव्यों को मैकॉले के समक्ष उपस्थित करने का आदेश दिया।

मैकॉले ने सर्वप्रथम "आज्ञा-पत्र" की उक्त धारा और दोनों दलों के वक्तव्यों का सूक्ष्म अध्ययन किया। तदुपरान्त, उसने तर्कपूर्ण और बलवती भाषा में अपनी सलाह को अपने प्रसिद्ध "विवरण-पत्र" में लेखबद्ध करके, 2 फरवरी, सन् 1835 को बैंटिंक के पास भेज दिया। हम मैकॉले के 'विवरण-पत्र' के दो प्रमुख अंशों का वर्णन कर रहे हैं; यथा—

(1) 43वीं धारा की व्याख्या
(INTERPRETATION OF 43RD SECTION)

मैकॉले ने अपने "विवरण-पत्र" में सन् 1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा की निम्नलिखित प्रकार से व्याख्या की है—

1. एक लाख रुपये की धनराशि व्यय करने के लिए सरकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वह इस धनराशि को अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार भी व्यय कर सकती है।
2. "साहित्य" शब्द के अन्तर्गत केवल अरबी और संस्कृत साहित्य ही नहीं, अपितु अंग्रेजी साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है।
3. "भारतीय विद्वान" मुसलमान मौलवी एवं संस्कृत के पण्डित के अलावा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का विद्वान् भी हो सकता है।

(2) अंग्रेजी के पक्ष में तर्क
(ARGUMENTS IN FAVOUR OF ENGLISH)

"आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा की व्याख्या करने के बाद, मैकॉले ने प्राच्य-शिक्षा एवं साहित्य का प्रबल खण्डन और अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों की

शिक्षा का शक्तिशाली समर्थन किया। सर्वप्रथम, मैकॉले ने भारतीय भाषाओं को अध्ययन के लिए, पूर्णतया निरर्थक बताते हुए लिखा—**"भारत के निवासियों में प्रचलित देश भाषाओं में साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान-कोष का अभाव है और वे इतनी अविकसित तथा गँवारू हैं कि जब तक उनको बाह्य भण्डार से सम्पन्न नहीं किया जायगा, तब तक उनसे किसी भी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का सरलता से अनुवाद न हो सकेगा।"**

भारतीय भाषाओं की निरर्थकता सिद्ध करने के पश्चात्, मैकॉले ने अरबी, फारसी और संस्कृत की अपेक्षा अंग्रेजी को कहीं अधिक उच्च स्थान देते हुए लिखा—**"एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अल्मारी का भारत और अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कोई महत्त्व नहीं है।"**

"A single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia." —Macaulay's *Minute*.

इस प्रकार अरबी, फारसी और संस्कृत को अध्ययन-क्षेत्र से बाहर निकाल कर मैकॉले ने अंग्रेजी को उनकी अपेक्षा अधिक समृद्ध बताया और उसके अध्ययन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए—

1. अरबी और संस्कृत की तुलना में अंग्रेजी अधिक उपयोगी है, क्योंकि यह नवीन ज्ञान की कुंजी है।

2. अंग्रेजी इस देश के शासकों की भाषा है, भारत के उच्च वर्गों द्वारा बोली जाती है और पूर्वी समुद्रों में व्यापार की भाषा बन सकती है।

3. जिस प्रकार लेटिन एवं यूनानी भाषाओं से इंग्लैण्ड में और पश्चिमी यूरोप की भाषाओं से रूस में पुनरुत्थान हुआ, उसी प्रकार अंग्रेजी से भारत में होगा।

4. भारतवासी—अरबी और संस्कृत की शिक्षा की अपेक्षा अंग्रेजी की शिक्षा के लिए अधिक उत्कंठित हैं।

5. भारतवासियों को अंग्रेजी का अच्छा विद्वान् बनाया जा सकता है और हमारा प्रयास इसी दिशा में होने चाहिए।

6. अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा इस देश में एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जा सकता है जो रक्त और रंग में भले ही भारतीय हो, पर रुचियों, विचारों, नैतिकता और विद्वत्ता में अंग्रेज होगा।

"It is possible through English education to bring about a class of persons, Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect."—Macaulay, H. Shary, ed. Macaulay's *Minute*, *Selection from Educational Records*, Part I, p. 117.

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर मैकॉले ने यह मत व्यक्त किया कि प्राच्य-शिक्षा संस्थाओं पर धन व्यय करना मूर्खता है और इनको बन्द कर दिया जाय। इनके स्थान पर अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के लिए संस्थाओं की सृष्टि की जाय। अंग्रेजी भाषा का यशगान और समर्थन करते हुए, मैकॉले ने कहा—**"अंग्रेजी पश्चिम की भाषाओं में भी सर्वोपरि है। जो व्यक्ति अंग्रेजी भाषा जानता है, वह उस विशाल ज्ञान-भण्डार को सुगमता से प्राप्त कर लेता है जिनकी विश्व की सबसे बुद्धिमान जातियों ने रचना की है।"**

"English stands pre-eminent even among the language of the west. Whoever knows the English language has ready access to all the vast intellectual wealth, which all the wisest nations of the earth have created."

—Macaulay's *Minute*.

बैंटिंक द्वारा विवरण-पत्र की स्वीकृति, 1835
(BENTINCK'S APPROVAL OF THE MINUTE, 1835)

लार्ड विलियम बैंटिंक ने मैकॉले के "विवरण-पत्र" में व्यक्त किए गए सभी विचारों का अनुमोदन किया। तदुपरान्त, 7 मार्च, सन् 1835 को एक विज्ञप्ति (Proclamation) द्वारा, उसने सरकार की शिक्षा-नीति को अग्रांकित शब्दों में घोषित किया—**"शिक्षा के लिए निर्धारित सम्पूर्ण धन का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग केवल अंग्रेजी की शिक्षा के लिए ही किया जा सकता है।"**

"All government fund appropriated for the purposes of education would be best employed on English education alone."

—*Government Proclamation of* 1835.

इस विज्ञप्ति ने कम्पनी की शिक्षा-नीति में सहसा परिवर्तन करके भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नया मोड़ दिया। **टी० एन० सिक्चेरा के शब्दों में—"इस विज्ञप्ति ने भारत में शिक्षा के इतिहास को एक नया मोड़ दिया। यह उस दिशा के विषय में, जो सरकार सार्वजनिक शिक्षा को देना चाहती थी, निश्चित नीति की प्रथम सरकारी घोषणा थी।"**

विवाद का अन्त, 1839
(END OF CONTROVERSY, 1839)

"विज्ञप्ति" ने सरकार की शिक्षा-नीति को निश्चित दिशा तो प्रदान कर दी, पर वह प्राच्य-पाश्चात्य विवाद का अन्त न कर सकी। उसके प्रकाशन के तेरह दिन बाद ही लार्ड बैंटिंक ने अपनी जन्म-भूमि के लिए प्रस्थान किया। उसके प्रस्थान करते ही प्राच्यवादी दल ने अपना आन्दोलन पुनः प्रारम्भ कर दिया। उसके पश्चात् जब लार्ड ऑकलैंड (Auckland) ने भारत के गवर्नर-जनरल का पद सम्हाला, तब उसने "प्राच्य-पाश्चात्य विवाद" को अत्यन्त गम्भीर रूप में पाया। उसने लगभग चार वर्ष तक इस विवाद के कारणों का सतर्कता से अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणामस्वरूप वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विवाद का मूल कारण यह था कि सरकार द्वारा प्राच्य-शिक्षा पर कम धन व्यय किया जा रहा था।

ऑकलैंड को विश्वास था कि यदि प्राच्य-शिक्षा पर कुछ धन और व्यय कर दिया जाय, तो प्राच्यवादी अपना आन्दोलन स्थगित कर देंगे। अपने इसी विश्वास के आधार पर उसने 24 नवम्बर, सन् 1839 को अपना प्रसिद्ध "विवरण-पत्र" प्रकाशित किया। इस "विवरण-पत्र" में उसने प्राच्यवादियों को प्रति वर्ष 31 हजार रुपये की अतिरिक्त धनराशि देने की घोषणा की। इस घोषणा ने प्राच्यवादियों को प्रसन्न कर दिया। फलस्वरूप, लम्बे काल से चले आने वाले विवाद का अन्त हो गया। **डॉ० एस० एन० मुकर्जी के शब्दों में—"लार्ड ऑकलैंड को इस बात का अभिमान था कि उसने 31,000 रुपये प्रति वर्ष की मामूली रकम अधिक व्यय करके, उत्तेजित विवाद का अन्त कर दिया।"**

निस्यन्दन-सिद्धान्त : Filtration Theory

1. सिद्धान्त का अर्थ : अंग्रेजी के "Filtration" शब्द का अर्थ है—"निस्यन्दन" अर्थात् "छानने की क्रिया"। व्यापारियों की कम्पनी होने के कारण, वह भारतीयों की शिक्षा पर कम-से-कम धन व्यय करना चाहती थी। अतः उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि शिक्षा का नियोजन केवल उच्च वर्गों के लिए किया जाय, क्योंकि शिक्षा इन वर्गों के व्यक्तियों से छन-छन कर स्वयं ही निम्न वर्गों के व्यक्तियों तक पहुँच जायगी। इस सिद्धान्त के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए **अरथर मेह्यू** ने लिखा है—**"शिक्षा ऊपर से प्रवेश करके, जनसाधारण तक पहुँचनी थी। लाभप्रद ज्ञान, भारत के सर्वोच्च वर्गों से बूँद-बूँद करके नीचे टपकना था।"**

"Education was to permeate the masses from above. Drop by drop from the Himalayas of the Indian life useful information was to trickle downwards." —**Arthur Mayhew :** *The Education of India*, p. 9

2. सिद्धान्त के समर्थक—"निस्यन्दन-सिद्धान्त" के समर्थकों में थे—ईसाई मिशनरी, बम्बई के गवर्नर की कौंसिल का सदस्य, फ्रांसिस वार्डन (Francis Warden), कम्पनी के संचालक और मैकॉले।

(i) ईसाई-मिशनरियों का आग्रह था कि यदि भारत के उच्च वर्गों के हिन्दुओं को अंग्रेजी की शिक्षा देकर ईसाई-धर्म का अवलम्बी बना लिया जायगा, तो निम्न वर्गों के व्यक्ति उनके उदाहरण से प्रभावित होकर स्वयं ही ईसाई-धर्म में दीक्षित हो जायेंगे।

(ii) **फ्रांसिस वार्डन** ने 23 दिसम्बर, सन् 1823 के अपने "विवरण-पत्र" में यह विचार व्यक्त किया—**"बहुत-से व्यक्तियों को थोड़ा-सा ज्ञान देने की बजाय थोड़े-से व्यक्तियों को बहुत-सा ज्ञान देना अधिक उत्तम और निरापद है।"**

(iii) **कम्पनी के संचालकों** ने 29 सितम्बर, सन् 1830 के अपने "आदेश-पत्र" में मद्रास के गवर्नर को यह परामर्श दिया—**"शिक्षा की प्रगति उसी समय हो सकती है, जब उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जाय, जिनके पास अवकाश है और जिनका अपने देश के निवासियों पर प्रभाव है।"**

(iv) **मैकॉले** ने अपने सन् 1835 के "विवरण-पत्र" में "निस्यन्दन-सिद्धान्त" का समर्थन करते हुए लिखा—**"हमें इस समय एक ऐसे वर्ग का निर्माण करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए, जो हमारे और उन लोगों के बीच में दुभाषिए का काम करे, जिन पर हम शासन करते हैं।"**

3. ऑकलैंड द्वारा सिद्धान्त की स्वीकृति—भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल, लार्ड ऑकलैंड ने "निस्यन्दन-सिद्धान्त" को शिक्षा की सरकारी नीति के रूप में स्वीकार किया और 24 नवम्बर, सन् 1839 के अपने "विवरण-पत्र" द्वारा अग्रांकित घोषणा की—**"सरकार के प्रयास, समाज के उन उच्च वर्गों में उच्च शिक्षा का प्रसार करने तक सीमित रहने चाहिए, जिनके पास अध्ययन के लिए अवकाश है और जिनकी संस्कृति छन-छन कर जनसाधारण तक पहुँचेगी।"**

"Attempts of Government should be, restricted to the extension of higher education to the upper classes of society who have leisure for study and whose culture would filter down to the masses."

—**Auckland's** *Minute*, 1839.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss briefly the educational policy of the English East India Company between 1765 and 1833.
1765 से 1833 तक इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शिक्षा-नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. Write short notes on—(a) Charity Schools, (b) Calcutta Madarassah, (c) Benares Sanskrit College, and (d) Charter of 1813.
संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—(अ) धर्मार्थ विद्यालय, (ब) कलकत्ता मदरसा, (स) बनारस संस्कृत कालेज, और (द) सन् 1813 का आज्ञा-पत्र।
3. "The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education." Discuss.
"सन् 1813 के आज्ञा-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा में मोड़ा।" समीक्षा कीजिए।
4. What were the main causes of the Oriental-Occidental Controversy ? How was it brought to a close ?
प्राच्य-पाश्चात्य विवाद के मुख्य कारण क्या थे ? इसका अन्त किस प्रकार किया गया ?
5. "Macaulay's *Minute* gave a new direction to the History of Education in India." Comment.
"मैकॉले के विवरण-पत्र ने भारत में शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा प्रदान की।" आलोचना कीजिए।
6. Write short notes on—(a) Filtration Theory, (b) Orientalists and Occidentalists, and (c) Government Proclamation of 1835.
अग्रांकित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—(अ) निस्यन्दन-सिद्धान्त, (ब) प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी, और (स) सन् 1835 की सरकारी घोषणा।

●●

6

वुड का आदेश-पत्र, 1854

WOOD'S DESPATCH, 1854

"Wood's Despatch is Magna Charta of Education in India." —H. R. James.

विषय-प्रवेश

भारतीय शिक्षा के इतिहास में सन् 1833 से 1853 की अवधि को शिक्षा के अंग्रेजीकरण की अवधि कहा जाता है। बैंटिंक की सन् 1835 की "विज्ञप्ति" ने अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार को सरकार की शिक्षा-नीति बताया। इस नीति को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए "लोक-शिक्षा-समिति" ने अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए, संस्थाओं का नव-निर्माण किया। सन् 1833 के "आज्ञा-पत्र" ने भारत के सिंहद्वार सब देशों के मिशनरियों के लिए खोल दिए। अतः अंग्रेज मिशनरियों के अलावा अन्य देशों के मिशनरियों ने भी भारत में अंग्रेजी की शिक्षा के लिए मिशन स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की।

इन सब कार्यों के फलस्वरूप सन् 1853 के अन्त तक भारत में अंग्रेजों के माध्यम से अंग्रेजी शिक्षा का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस अवधि की इन दो विशेषताओं के साथ-साथ कुछ अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, **श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय** ने लिखा है—**"शिक्षा-छनाई सिद्धान्त का बोलबाला रहा, जन-शिक्षा असम्भव गिनी गई एवं देशी शिक्षा कुचल दी गई, पाश्चात्य शिक्षा का आदर बढ़ा, प्राच्य विद्या निरर्थक मानी गई, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हुआ, सांस्कृतिक एवं लोकभाषाएँ निकम्मी ठहराई गईं।"**

वुड के आदेश-पत्र का मूल कारण
(ORIGIN OF WOOD'S DESPATCH)

सन् 1853 में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के "आज्ञा-पत्र" के पुनरावर्तन का अवसर आया। उस अवसर पर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने यह निश्चय किया कि भारतीय शिक्षा की प्रमुख समस्याओं का समाधान किया जाना अनिवार्य था। इस विचार से प्रेरित होकर, पार्लियामेंट ने एक "जाँच-समिति" की नियुक्ति की और उसे भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में अपने सुझाव देने का आदेश दिया। इस "समिति" के सुझावों के आधार पर

कम्पनी के संचालकों ने 19 जुलाई, सन् 1854 को एक आदेश-पत्र में अपनी भारतीय शिक्षा की नीति का प्रकाशन किया। उस समय सर चार्ल्स वुड (Sir Charles Wood) इंग्लैण्ड के "बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल" (Board of Control) का सभापति था। अतः आदेश-पत्र को उसी के नाम पर **"वुड का आदेश-पत्र"** (Wood's Despatch) कहा गया। यह सौ अनुच्छेदों का लम्बा लेख-पत्र है, जिसमें भारतीय शिक्षा के अंग-प्रत्यंगों पर विचार किया गया है और उसके सम्बन्ध में विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की गई हैं।

आदेश-पत्र के सुझाव व सिफारिशें
(SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS OF THE DESPATCH)

हम "वुड के आदेश-पत्र" में लिखित महत्त्वपूर्ण सिफारिशों का निम्नांकित स्तम्भों में क्रमबद्ध वर्णन कर रहे हैं—

1. शिक्षा का उत्तरदायित्व : Responsibility of Education—"आदेश-पत्र" में यह स्वीकार किया गया कि भारत में शिक्षा का प्रसार करने का उत्तरदायित्व कम्पनी पर है। इस उत्तरदायित्व को पुनीत कर्त्तव्य बताते हुए, "आदेश-पत्र" में कहा गया—**"अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में से कोई भी विषय हमारे ध्यान को इतना आकृष्ट नहीं करता है, जितना कि शिक्षा। यह हमारे सबसे अधिक पुनीत कर्त्तव्यों में से एक है।"**

2. शिक्षा का उद्देश्य : Aims of Education—"आदेश-पत्र" ने भारतीयों की शिक्षा के अग्रांकित चार उद्देश्य घोषित किए—(1) भारतीयों में शिक्षा का प्रसार करके, उनकी मानसिक और चारित्रिक उन्नति करना; (2) भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान से अवगत कराके, उनकी भौतिक समृद्धि करना; (3) भारतीयों को राजपदों के लिए सुयोग्य व्यक्ति बनाना; और (4) भारतीयों को अपने देश को समृद्धशाली बनाने में सहायता देना।

3. पाठ्यक्रम : Curriculum—"आदेश-पत्र" ने अरबी, फारसी और संस्कृत को उपयोगी बताते हुए, उनको पाठ्यक्रम में स्थान दिया। किन्तु, भारतीयों के लिए यूरोप के समुन्नत कला-कौशल, विज्ञान, दर्शन और साहित्य को अधिक उपयोगी बताकर, पाठ्यक्रम में विशेष स्थान प्रदान किया गया। इन विषयों को यूरोपीय ज्ञान की संज्ञा देते हुए, "आदेश-पत्र" में घोषित किया गया—**"हम बलपूर्वक घोषित करते हैं कि हम भारत में जिस शिक्षा का प्रसार देखना चाहते हैं, वह है—यूरोपीय ज्ञान।"**

4. शिक्षा का माध्यम : Medium of Instruction—"आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी का समुचित ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के लिए अंग्रेजी को और अन्य व्यक्तियों के लिए देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम निश्चित किया। इस प्रकार, अंग्रेजी और देशी भाषाओं—दोनों को शिक्षा का माध्यम निश्चित करते हुए, **"आदेश-पत्र"** ने यह आशा प्रकट की—**"हम यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिए अंग्रेजी भाषा और भारत की देशी भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में साथ-साथ देखने की आशा करते हैं।"**

"We look to the English language and to the Vernacular languages of India together as the media for the diffusion of European knowledge."

—Wood's *Despatch.*

5. शिक्षा-विभागों की स्थापना : Establishment of Education Department—"आदेश-पत्र" ने सुझाव दिया कि प्रान्तीय बोर्डों और शिक्षा-समितियों (Provincial Boards

& Councils of Education) को भंग करके भारत के पाँचों प्रान्तों (पंजाब, बंगाल, मद्रास, बम्बई और उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश) में एक-एक लोक-शिक्षा-विभाग (Department of Public Instruction) की स्थापना की जाय। इस विभाग के संचालन का सम्पूर्ण भार लोक शिक्षा-संचालक (Director of Public Instruction) पर रखा जाय। उसे अपने कार्य में सहायता देने के लिए उपशिक्षा-संचालकों, विद्यालय-निरीक्षकों और सहायक विद्यालय-निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय।

6. विश्वविद्यालयों की स्थापना : Establishment of Universities—"आदेश-पत्र" में भारतीयों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित करने की आज्ञा दी गई। "आदेश-पत्र" में कहा गया कि इन विश्वविद्यालयों का संगठन, लन्दन-विश्वविद्यालय को आदर्श मानकर किया जाय, जो उस समय केवल परीक्षण-संस्था थी।

7. क्रमबद्ध संस्थाओं की स्थापना : Establishment of Graded Institution—"आदेश-पत्र" में यह मत प्रकट किया गया कि सम्पूर्ण भारत में क्रमबद्ध शिक्षा-संस्थाओं की योजना को क्रियान्वित किया जाय। "आदेश-पत्र" ने इन संस्थाओं के स्वरूप को इस प्रकार निश्चित किया—

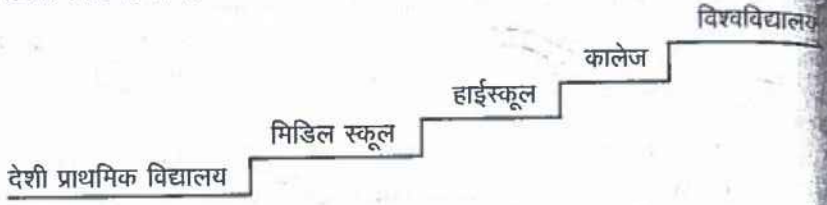

8. जन-शिक्षा का विस्तार : Expansion of Mass Education—"आदेश-पत्र" में यह निस्संकोच रूप से स्वीकार किया गया कि कम्पनी ने "निस्यन्दन सिद्धान्त" का अनुसरण करके, जनसाधारण की शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की है। अतः "आदेश-पत्र" ने यह सिफारिश की कि सरकार—प्राथमिक शिक्षा पर अधिक धन व्यय कर, प्रत्येक जिले में स्कूलों की स्थापना करे, देशी विद्यालयों का सुधार करे और मेधावी एवं निर्धन छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करे, ताकि उनको निम्नतम स्तर से उच्चतम स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा मिले।

9. सहायता-अनुदान-प्रणाली : Grant-in-Aid System—"आदेश-पत्र" ने भारत में जन-शिक्षा-कार्य को सफल बनाने के उद्देश्य से शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के लिए "सहायता-अनुदान-प्रणाली" को प्रचलित करने का सुझाव दिया। उसने यह भी सुझाव दिया कि भवन-निर्माण, छात्रवृत्तियों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, अध्यापकों के वेतन आदि के लिए भी अलग-अलग अनुदान दिए जाएँ। "सहायता-अनुदान-प्रणाली" की रूपरेखा का संकेत देते हुए, "आदेश-पत्र" में यह वाक्य अंकित किया गया—**"हमने भारत में उसी सहायता-अनुदान प्रणाली को अपनाने का निश्चय किया है, जो इस देश में अत्यधिक सफलता से सम्पादित की गई है।"**

"We have resolved to adopt in India the system of grant-in-aid which has been carried out in this country (England) with very great success."

—**Wood's** *Despatch.*

10. अध्यापकों का प्रशिक्षण : Training of Teachers—"आदेश-पत्र" ने इस बात पर बल दिया कि अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाओं का शिलान्यास किया जाय। "आदेश-पत्र" ने यह इच्छा व्यक्त की कि छात्रों को प्रशिक्षण-काल में छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को उत्तम वेतन देकर, शिक्षा के व्यवसाय को आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाय।

11. व्यावसायिक शिक्षा : Vocational Education—"आदेश-पत्र" में व्यावसायिक शिक्षा की चर्चा करते हुए कहा गया कि भारत में ऐसे स्कूलों और कॉलेजों की सृष्टि की जाय, जिनमें छात्रों को विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा ग्रहण करने की सुविधा मिल सके।

12. स्त्री-शिक्षा : Female Education—"आदेश-पत्र" में यह सिफारिश की गई कि स्त्री-शिक्षा को उदारतापूर्वक सहायता-अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाय। "आदेश-पत्र" में उन व्यक्तियों की सराहना की गई, जिन्होंने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए धन दिया था।

13. मुसलमानों की शिक्षा : Education of Muslims—"आदेश-पत्र" में यह स्वीकार किया गया कि मुसलामानों की शिक्षा पिछड़ी हुई दशा में थी। अतः उसने दृढतापूर्वक कहा कि कम्पनी के अधिकारियों को मुसलमानों की शिक्षा का विस्तार करने के लिए विशेष प्रयत्न करने चाहिए।

14. प्राच्य-साहित्य व देशी भाषाओं को प्रोत्साहन : Encouragement to Oriental Literature & Vernacular Languages—"आदेश-पत्र" में यह अभिलाषा अक्षरबद्ध की गई कि प्राच्य-साहित्य और देशी भाषाओं को प्रोत्साहित किया जाय। इसके अतिरिक्त, उसमें यह अभिलाषा भी लिपिबद्ध की गई कि देशी भाषाओं में पुस्तकों की रचना करवाई जाय, उनके लेखकों को उत्तम पारिश्रमिक दिया जाय और पाश्चात्य विज्ञान एवं साहित्य की पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद करवाया जाय।

15. शिक्षा व रोजगार : Education & Employment—"आदेश-पत्र" ने इस बात पर बल दिया कि अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरियाँ दी जायें। इस सम्बन्ध में कम्पनी के संचालकों की इच्छा को "आदेश-पत्र" में अंग्रांकित शब्दों में व्यक्त किया गया—**"जो बात हम चाहते हैं, वह यह है कि यदि सरकारी नौकरियों के लिए उम्मीदवारों की अन्य योग्यतायें समान हों, तो उस व्यक्ति की तुलना में जिसने अंग्रेजी की अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं की है, उस व्यक्ति को वरीयता दी जाय, जिसने अच्छी शिक्षा प्राप्त की है।"**

"What we desire is that, when other qualifications of the candidates for appointments under government are equal, a person who has received a good education should be preferred to one who has not."

—**Wood's** *Despatch.*

आदेश-पत्र का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF THE DESPATCH)

"वुड के आदेश-पत्र" का निष्पक्ष मूल्यांकन करने के लिए उसके गुणों और दोषों का अवलोकन करना वांछनीय है। अतः हम संक्षेप में उनका उल्लेख कर रहे हैं, यथा—

(1) गुण : Merits—"आदेश-पत्र" के प्रमुख गुण अधोलिखित हैं—

1. "आदेश-पत्र" ने भारतीय शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण किया, शिक्षा की नीति का निर्धारण किया और शिक्षा को निश्चित दिशा प्रदान की।

2. "आदेश-पत्र" ने प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा के प्रति ध्यान देकर, क्रमबद्ध शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना का सुझाव दिया।

3. "आदेश-पत्र" ने "निस्यन्दन-सिद्धान्त" को सर्वथा अनुपयुक्त बताकर, जन-शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की।

4. "आदेश-पत्र" ने भारतीय भाषाओं के महत्त्व को स्वीकार करके उनको माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया।

5. "आदेश-पत्र" ने भारतीय साहित्य की उपयोगिता को स्वीकार करके, उसको पाठ्यक्रम में उचित स्थान प्रदान किया।

6. "आदेश-पत्र" ने लोक-शिक्षा-विभागों, प्रशिक्षण-संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के नव-निर्माण का सुझाव देकर, भारतीय शिक्षा को विकसित और संगठित करने का उद्योग किया।

7. "आदेश-पत्र" ने व्यावसायिक शिक्षा के लिए स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना का प्रस्ताव प्रस्तुत करके, देश में बढ़ती हुई बेकारी की समस्या का समाधान करने की चेष्टा की।

8. "आदेश-पत्र" ने स्त्रियों और मुसलमानों की शिक्षा का विस्तार करना सरकार का कर्त्तव्य बताकर, उनकी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने में योग दिया।

9. "आदेश-पत्र" ने सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं के लिए सहायता-अनुदान-प्रणाली का अनुमोदन करके, भारतीय शिक्षा के प्रसार में सहायता की।

(2) दोष : Defects—उपरिवर्णित गुणों से हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि "आदेश-पत्र" दोषमुक्त था। वस्तुतः उसमें अनेक स्पष्ट दोष थे; यथा—

1. "आदेश-पत्र" ने शिक्षा पर राज्य का पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर दिया। फलस्वरूप, चिरकाल से चले आने वाले स्वतन्त्र शिक्षण-कार्य का अन्त हो गया।

2. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दिये जाने का आदेश अंकित किया। फलतः प्राच्य-शिक्षा, साहित्य और विद्यालयों का अस्तित्व संकट में पड़ गया।

3. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करना निर्धारित किया। इस उद्देश्य को निर्धारित करके, "आदेश-पत्र" ने शिक्षा के व्यापक उद्देश्य को नष्ट कर दिया।

4. "आदेश-पत्र" ने भारतीय शिक्षा को पूर्णतया विदेशी रंग में रँग दिया और भारतीयों को उसे ग्रहण करने के लिए राजपदों का प्रलोभन दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीयों का अपने देश की शिक्षा-प्रणाली से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

5. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी को उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बना दिया। अतः शिक्षा-संस्थाओं में प्राच्य-भाषाओं का गौण स्थान हो गया।

6. "आदेश-पत्र" ने जिस शिक्षा-प्रणाली का अनुमोदन किया, उसमें परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि था। अतः छात्रों का एकमात्र उद्देश्य—ज्ञान का अर्जन करना न होकर, परीक्षा में उत्तीर्ण होना हो गया।

7. "आदेश-पत्र" ने भारतीय विश्वविद्यालयों को लन्दन-विश्वविद्यालय के आदर्श पर संगठित किये जाने का निर्देश दिया। इस निर्देश के फलस्वरूप भारत में प्राचीन विश्वविद्यालयों की परम्पराओं की पूर्ण उपेक्षा की गई।

8. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाकर, भारतीय छात्रों का महान् अहित किया। इसका कारण यह था कि इन छात्रों के लिए अंग्रेजी के माध्यम से सब विषयों की गहराई तक पहुँचकर, उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना असम्भव था।

9. "आदेश-पत्र" ने शिक्षा की परिधि में से धर्म को निकालकर उसे पूर्णतया लौकिक बना दिया।

आलोचकों की सम्मतियाँ
(VIEWS OF CRITICS)

सन् 1854 के "आदेश-पत्र" के उल्लिखित गुणों से मुग्ध होकर, कुछ आलोचकों ने उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उनके विपरीत, "आदेश-पत्र" के दोषों से क्षुब्ध होकर, कुछ आलोचकों ने उसकी कड़ी निन्दा की है। हम कतिपय अनुकूल और प्रतिकूल सम्मतियों का दिग्दर्शन करा रहे हैं; यथा—

1. हैम्पटन—"सन् 1854 का आदेश-पत्र एक युग का, शिक्षा के महान् अग्रदूतों के युग का अन्त करता है।"

"Despatch of 1854 marks the end of an era, the age of the great educational pioneers."

—**H. V. Hampton** : *Biographical Studies in Modern Indian Education*, p. 115.

2. जेम्स—"सन् 1854 का आदेश-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में चरम विन्दु है। जो-कुछ उससे पहले हुआ, वह उसकी ओर संकेत करता है; और जो-कुछ उसके बाद हुआ, वह उससे निकला है।"

"The Despatch of 1854 is the climax in the history of education, what goes before leads up to it, what follows flows from it."

—**H. R. James** : *Education & Statesmanship in India*, p. 42.

3. बसु—"इस आदेश-पत्र को भारतीय शिक्षा का शिलाधार कहा जाता है। यह कहा जाता है कि इसने हमारी आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का शिलान्यास किया।"

"This Despatch is said to be the corner-stone of Indian education. It is said to have laid the foundation of our present system of education."

—**A. N. Basu** : *Education in Modern India*, pp. 37-38.

4. डॉ० मुकर्जी—"आदेश-पत्र ने देश की प्राचीन परम्पराओं का पता नहीं लगाया और इस बात पर लेशमात्र भी विचार नहीं किया कि भारत में शिक्षा—धार्मिक संस्कार थी।"

"The Despatch did not enquire into the past traditions of the country and did not at all consider that education was a religious sacrament in India." —**Dr. S. N. Mukerji** : *History of Education in India*, p. 130.

5. भगवान दयाल—"वुड के आदेश-पत्र का मुख्य दोष—शिक्षा का गलत उद्देश्य था। यह उद्देश्य—पूर्व और पश्चिम की सर्वोत्तम बातों का समन्वय न होकर, केवल यूरोपीय ज्ञान की प्राप्ति का था।"

"The fundamental defect in Wood's Despatch was the wrong aim of education. It was not to be a synthesis of the best things that both the East and the West had to offer; but only European knowledge."

—**Bhagwan Dayal** : *The Development of Modern Indian Education*, p. 233.

6. प्रांजपे—"सन् 1854 में आदेश-पत्र का चाहे जो भी महत्त्व हो, पर इस समय उसको शिक्षा का अधिकार-पत्र कहना हास्यास्पद होगा।"

"Whatever were its value in 1854, it would be ridiculous to describe the Despatch as an Educational Charter now."

—**M. R. Paranjpe** : *Progress of Education*, Poona, July 1941, p. 52.

निष्कर्ष

आलोचकों की उपरिअंकित सम्मतियों के आधार पर हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि "वुड का आदेश-पत्र" भारतीय शिक्षा के इतिहास में बेनजीर है। उसने भारतीय शिक्षा के सभी पक्षों के सम्बन्ध में इतनी व्यापक और महत्त्वपूर्ण सिफारिशें कीं, जिनको आज भी पूरा करना असम्भव है। उसने भारतीय शिक्षा की अनेकरूपता को समाप्त करके एकरूपता प्रदान करने की चेष्टा की। उसी के सुझावों के फलस्वरूप मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, सम्पूर्ण देश में क्रमबद्ध शिक्षा-संस्थाओं की योजना कार्यान्वित की गई, सहायता-प्रणाली का सूत्रपात किया गया, प्रान्तों में लोक-शिक्षा-विभागों का निर्माण हुआ और छात्रवृत्तियाँ देने की परम्परा आरम्भ हुई।

किन्तु, "आदेश-पत्र" का दूसरा पहलू भी है। उपरिअंकित कार्यों के कारण उसका चाहे जितना भी यशगान क्यों न किया जाय, पर उसको शिक्षा का महाधिकार-पत्र कहलाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इंगलैण्ड के 1215 के "महाधिकार पत्र" ने उस देश के जन-जन को स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया। परन्तु सन् 1854 के "आदेश-पत्र" ने सार्वभौमिक शिक्षा के सम्बन्ध में मौन धारण करके, भारतीय जनता को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित रखा। इसके अतिरिक्त "आदेश-पत्र" ने भारतीय शिक्षा को सरकार के अधीन करके, उसे जंजीरों से जकड दिया, उस पर विदेशी ढाँचे को थोप कर प्राचीन शिक्षा-पद्धतियों का नामोनिशान मिटा दिया और धर्म को शिक्षा से सदैव के लिए विदा करके, शिक्षा के प्राचीन आदर्श की बुनियाद को हिला दिया।

इस प्रकार, वुड के "आदेश-पत्र" ने भारतीयों और उनकी परम्परागत शिक्षा का जो अहित किया, उसको ध्यान में रखकर हम निर्भयता से कह सकते हैं कि "आदेश-पत्र" को शिक्षा का महाधिकार-पत्र कहे जाने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। इसी विचार से उद्वेलित होकर नूरुल्ला व नायक ने लिखा है—**"हमें उन अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में, जिनमें कुछ इतिहासकारों ने आदेश-पत्र का वर्णन किया है और इसे 'भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र' बताया है, कोई औचित्य नहीं मिलता है।"**

"We cannot find any justification for the superlative terms in which some historians have described the Despatch and even called it, 'The Magna Charta' of Indian Education."

—**Nurullah & Naik** : *op. cit.*, pp. 215-216.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the main recommendations of Wood's Despatch of 1854 ? Give a critical estimate of the place of this Despatch in the history of modern Indian education.
   सन् 1854 के वुड के आदेश-पत्र की प्रमुख सिफारिशें क्या थीं ? आधुनिक भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस आदेश-पत्र के स्थान का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. "Wood's Despatch is called the Magna Charta of Indian education." Discuss.
   "वुड का आदेश-पत्र, भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र कहा जाता है।" समीक्षा कीजिए।
3. Point out some of the important recommendations of Wood's Despatch which can prove useful for education in modern India.
   वुड के आदेश-पत्र की कुछ महत्त्वपूर्ण सिफारिशें बताइए, जो आधुनिक भारत में शिक्षा के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं।

●●

7

भारतीय शिक्षा-आयोग

(हण्टर कमीशन)

INDIAN EDUCATION COMMISSION
(Hunter Commission)
(1882—1883)

> "Institutions under private managers cannot be successful unless they are frankly accepted as an essential part of the general scheme of education."
>
> —**Indian Education Commission Report.**

विषय-प्रवेश

सन् 1854 के वुड के "आदेश-पत्र" के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा के अनेक क्षे[त्रों] में क्रान्तिकारी परिवर्तन परिलक्षित हुए। सन् 1855 के अन्त तक प्रत्येक प्रान्त [में] "लोक-शिक्षा-विभाग" की स्थापना हो गई, सहायता-अनुदान-प्रणाली प्रचलित की गई औ[र] विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने की योजना क्रियान्वित की गई। सन् 1857 में मद्रा[स,] बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया गया किन्तु, उसी वर्ष 185[7] की क्रान्ति के विस्फोट ने भारतीय शिक्षा की प्रगति का मार्ग कुछ समय के लिए अवरु[द्ध] कर दिया। यह क्रान्ति—कम्पनी के शासन के विरुद्ध भारतवासियों के प्रबल असन्तो[ष] की प्रतीक थी। अतः सन् 1858 में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने कम्पनी के शासन को समा[प्त] करके इंगलैण्ड की रानी विक्टोरिया (Victoria) को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया।

इस प्रकार, भारत के शासकों में तो परिवर्तन हो गया, किन्तु कम्पनी [के] कर्मचारियों में परिवर्तन नहीं हुआ, क्योंकि वे भारत की साम्राज्ञी के सेवकों के रूप [में] यथावत् कार्य करते रहे। कम्पनी के अधिकारी रह चुकने के कारण उनके मानसि[क] दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अतः उन्होंने "आदेश-पत्र" के इस निर्देश के प्र[ति] रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया कि सरकार द्वारा "निस्यन्दन-सिद्धान्त" का परित्याग कर[के] जनसाधारण की शिक्षा का प्रसार करने के लिए सक्रिय पग उठाए जाने चाहिए[।] उनकी इस हठधर्मी से न केवल भारत में, वरन् इंगलैण्ड में भी व्यापक असन्तोष [की] लहर फैल गई।

[भ]ारत से सहानुभूति रखने वाले इंगलैण्ड के कुछ व्यक्तियों ने इस असन्तोष को [भार]त में शिक्षा की सामान्य समिति" (General Council of Education in India) का [गठन] करके प्रदर्शित किया। उनको अपने आन्दोलन-कार्य में मिशनरियों से पर्याप्त [सहाय]ता मिली।

["स]मिति" और भारत के सौभाग्य से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने सन् 1880 में लार्ड रिपन [(Rip]on) को इस देश के नए गवर्नर-जनरल के रूप में मनोनीत किया। उस अवसर [पर] "समिति" के कुछ सदस्यों ने लार्ड रिपन से भेंट करके, उसे भारत-स्थित अंग्रेज [अधि]कारियों की अनुदार शिक्षा-नीति से अवगत कराया और यह अनुरोध किया कि [भा]रतीय शिक्षा की गतिविधियों की जाँच करके, उसके विकास का मार्ग प्रशस्त किया [जा]ए।

लार्ड रिपन ने उनकी इच्छा को पूर्ण करने का वचन दिया। अपने इसी वचन का पालन करने के लिए, उसने भारत पहुँचने के कुछ समय पश्चात् सन् 1882 में "भारतीय शिक्षा-आयोग" (Indian Education Commission) की नियुक्ति की। इस "आयोग" का अध्यक्ष—गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी-सभा का सुयोग्य सदस्य सर विलियम हण्टर (Sir William Hunter) था। अतः इसके नाम से इस "आयोग" को "हण्टर कमीशन" (Hunter Commission) कहकर भी पुकारा जाता है।

आयोग के जाँच विषय
(TERMS OF REFERENCE OF THE COMMISSION)

"आयोग" को निम्नांकित विषयों की जाँच करके, उनके सम्बन्ध में अपने सुझावों और सिफारिशों को प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया—

1. क्या सरकार ने उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा के प्रति अधिक ध्यान देकर प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना की है ?
2. प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है और उसके सुधार एवं विकास के लिए क्या उपाय अपनाए जाने चाहिए ?
3. माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है और उसका प्रसार किन साधनों के द्वारा किया जाना चाहिए ?
4. देश की शिक्षा-प्रणाली में राजकीय विद्यालयों की क्या स्थिति है और भारतीय शिक्षा-प्रणाली में उनकी आवश्यकता है या नहीं ?
5. देश की शिक्षा-व्यवस्था में मिशन स्कूलों का क्या स्थान होना चाहिए ?
6. शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयासों के प्रति सरकार की नीति क्या होनी चाहिए ?
7. "आयोग" को दो विशेष आदेश दिए गए—"**(1) इस बात की जाँच करना कि [18]54 के 'आदेश-पत्र' के सिद्धान्तों को किस प्रकार क्रियान्वित किया गया है। (2) ऐसे [उ]पायों का सुझाव देना, जिनको 'आयोग', 'आदेश-पत्र' में निर्धारित की गई नीति को [क्रि]यान्वित करने के लिए उचित समझता है।**"

"It will be the duty of the **Commission** to enquire particularly into [th]e manner in which effect has been given to the principles of the

Despatch of 1854; and to suggest such measures as it may think desirable to further carrying out of the policy therein laid down."

—*Government Resolution Appointing the Commission, 188*

"आयोग" ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण करके, शिक्षाविदों से भेंट करके और शिक्षा-सम्बन्धी राजकीय लेखों का अध्ययन करके, मार्च, सन् 1883 में अपना 600 पृष्ठ का प्रतिवेदन सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

आयोग के सुझाव व सिफारिशें

(SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS OF THE COMMISSION)

"आयोग" ने भारतीय शिक्षा के सभी अंगों और क्षेत्रों का गहन अध्ययन करने के पश्चात् उनके सम्बन्ध में अपने सुझावों और सिफारिशों को लिपिबद्ध किया। हम यहाँ शिक्षा के प्रमुख अंगों से सम्बन्धित उसके विचारों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. शिक्षा-नीति : Educational Policy

"आयोग" ने शिक्षा-नीति के विषय में 5 सुझाव दिए, यथा—

1. सरकार को राजकीय विद्यालयों की स्थापना की गति को शनैः-शनैः मन्द करके, इन विद्यालयों के प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व से पृथक् हो जाना चाहिए।

2. सरकार को सहायता अनुदान के नियमों को अधिक उदार बनाकर, शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयासों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

3. सरकार को प्राथमिक विद्यालयों का स्वयं संचालन न करके, उनका उत्तरदायित्व स्थानीय निकायों पर छोड़ देना चाहिए।

4. सरकार को माध्यमिक स्कूलों और कॉलेजों का प्रबन्ध क्रमशः कुशलतापूर्वक कार्य कराने वाली व्यक्तिगत संस्थाओं को सौंप देना चाहिए।

5. सरकार को भविष्य में केवल सहायता-अनुदान के आधार पर स्थापित किए जाने वाले माध्यमिक स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना को प्रोत्साहन देना चाहिए।

सारांश में, "आयोग" ने शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में सरकार को सन् 1854 के "आदेश-पत्र" के अग्रांकित सुझाव का अनुसरण करने का परामर्श दिया—**"राजकीय शिक्षा-संस्थाओं को उन स्थानों में चलने दिया जाय, जहाँ उनकी आवश्यकता है। किन्तु, सरकार का मुख्य कर्त्तव्य—व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाओं की उन्नति और प्रसार करना होना चाहिए।"**

2. प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

"आयोग" ने प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य, प्रसार, प्रशासन, वित्त-व्यवस्था, पाठ्यक्रम, शिक्षा-स्तर के उन्नयन और सरकार की नीति के सम्बन्ध में सारगर्भित सुझाव दिए, यथा—

1. उद्देश्य व प्रसार—प्राथमिक शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—जनसाधारण में शिक्षा का विस्तार करना होना चाहिए। इस शिक्षा का आदिवासियों और पिछड़ी हुई जातियों में प्रसार करने के लिए सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए।

2. प्रशासन—प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन और संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार को जिला-परिषदों, नगरपालिकाओं आदि स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर देना चाहिए।

3. वित्त-व्यवस्था—प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिए स्थानीय निकायों द्वारा स्थायी और पृथक् कोष का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रान्तीय सरकारों को इस कोष का 1/2 सम्पूर्ण व्यय का 1/3 भाग आर्थिक सहायता के रूप में स्थानीय निकायों को देना चाहिए।

4. पाठ्यक्रम—प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार करने के उद्देश्य से उसमें पहले से समाविष्ट विषयों के अतिरिक्त, अग्रांकित जीवनोपयोगी विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए—कृषि, बहीखाता, क्षेत्रमिति, सरल-विज्ञान, आरोग्य विज्ञान, महाजनी गणित और औद्योगिक कलाएँ। सम्पूर्ण देश में एक ही पाठ्यक्रम होना चाहिए और उसे स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए।

5. शिक्षा-स्तर का उन्नयन—प्राथमिक शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के लिए प्रत्येक विद्यालय-निरीक्षक के अधिकार-क्षेत्र में कम-से-कम एक नार्मल स्कूल स्थापित किया जाना चाहिए।

6. सरकार की नीति—प्राथमिक शिक्षा की नीति के विषय में **"आयोग"** ने सरकार को अग्रांकित मंत्रणा दी—**"देश की वर्तमान परिस्थितियों में यह वांछनीय है कि जनसाधारण की प्राथमिक शिक्षा और उसकी व्यवस्था, प्रसार एवं उन्नति को शिक्षा-प्रणाली का वह अंग घोषित किया जाय, जिसके प्रति अब राज्य की सतत् चेष्टाएँ पहले से अधिक मात्रा में केन्द्रित की जानी चाहिए।"**

"It is desirable, in the present circumstances of the country to declare the elementary education of the masses, its provision, extension, and improvement to be that part of the educational system to which the strenuous efforts of the State should now be directed in a still larger measure than heretofore."

—*Indian Education Commission Report.*

3. माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार, पाठ्यक्रम, शिक्षा-स्तर के उन्नयन, शिक्षा के माध्यम और सरकार की नीति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए; यथा—

1. प्रसार—माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए सहायता-अनुदान-प्रणाली का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस प्रणाली के प्रयोग में सरकार को अपनी उदारता का परिचय देना चाहिए।

2. पाठ्यक्रम—माध्यमिक शिक्षा के दोषों का निराकरण करने के लिए, "आयोग" ने उच्च कक्षाओं में दो प्रकार के पाठ्यक्रमों का सुझाव दिया—"अ" कोर्स और "ब" कोर्स ("A" Course & "B" Course)। "आयोग" का मत था कि "अ" कोर्स—साहित्यिक होना चाहिए और उन छात्रों के लिए होना चाहिए, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के इच्छुक हों। "ब" कोर्स में व्यापारिक, व्यावसायिक और असाहित्यिक विषयों का समावेश होना चाहिए। यह कोर्स उन छात्रों के लिए होना

चाहिए, जो शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् व्यावसायिक या असाहित्यिक कार्यों में संलग्न होने के इच्छुक हों।

3. शिक्षा-स्तर का उन्नयन—माध्यमिक शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के लिए लाहौर और मद्रास में पहले से स्थापित प्रशिक्षण-कॉलेजों के अलावा अन्य स्थानों पर प्रशिक्षण-कॉलेजों की स्थापना की जानी चाहिए। इन कॉलेजों में छात्राध्यापकों को शिक्षा-सिद्धान्त और कक्षा-शिक्षण में भलीभाँति परिचित कराया जाना चाहिए।

4. शिक्षा का माध्यम—"आयोग" ने शिक्षा के माध्यम के विषय में कोई स्पष्ट सुझाव नहीं दिया। उसने केवल यह कहा कि मिडिल स्कूलों में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना अधिक वाछनीय है, पर छात्रों को अंग्रेजी का भी कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। यह विचार व्यक्त करके, "आयोग" ने हाई-स्कूलों के अतिरिक्त मिडिल स्कूलों में भी शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का पक्ष लिया।

5. सरकार की नीति—माध्यमिक शिक्षा के विषय में "आयोग" ने यह नीति निर्धारित की कि सरकार को इस शिक्षा का भार कुशल भारतीयों को सौंपकर, इससे मुक्त हो जाना चाहिए। सरकार को केवल सहायता-अनुदान द्वारा माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहिए। "आयोग" ने यह सुझाव भी दिया कि सरकार को अपने स्कूलों को क्रमशः व्यक्तिगत संस्थाओं को हस्तान्तरित कर देना चाहिए। सरकार को राजकीय विद्यालयों का निर्माण और संचालन केवल उन स्थानों में करना चाहिए, जहाँ की जनता अनुदान-प्रथा के आधार पर विद्यालयों को चलाने में असमर्थ हो। परन्तु, इस सम्बन्ध में भी "आयोग" ने सरकार की शिक्षा-नीति को अग्रांकित शब्दों में स्पष्ट कर दिया—**"सरकार का कर्त्तव्य प्रत्येक जिले में केवल एक हाई-स्कूल की स्थापना करना है। उसके पश्चात् उस जिले में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ देना चाहिए।"**

"The duty of the Government was only to establish a high school in every district and after that the expansion of secondary education in that district should be left to private enterprise."

—Indian Education Commission Report.

4. कॉलेज-शिक्षा : College Education

यद्यपि कॉलेज-शिक्षा—"आयोग" की जाँच का विषय नहीं था, तथापि उसने सार्वजनिक कॉलेजों और उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक लाभप्रद सुझाव दिये; यथा—

1. कॉलेजों की सहायता-अनुदान के रूप में दी जाने वाली धनराशि को उनके व्यय, शिक्षकों की संख्या, कार्य-कुशलता और स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाना चाहिए।

2. कॉलेजों को समय-समय पर फर्नीचर, पुस्तकालय, भवन-निर्माण और शिक्षण-सम्बन्धी अन्य कार्यों के लिए आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

3. कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति करते समय यूरोप के विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीयों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

4. कॉलेजों के पाठ्यक्रमों का विस्तार करके, छात्रों को उनकी रुचियों के अनुकूल विषयों का चयन करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

5. कॉलेजों के छात्रों के नैतिक स्तर का उत्थान करने के लिए उनको प्रकृति-धर्म (Natural Religion) और मानव-धर्म के सिद्धान्तों से परिचित कराया जाना चाहिए।

6. कॉलेजों के छात्रों को मापन और नागरिक कर्त्तव्यों से अवगत कराने के लिए व्याख्यानमालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

7. कॉलेजों में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए उचित छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. सार्वजनिक कॉलेजों को राजकीय कॉलेजों की अपेक्षा कम शुल्क लेने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

"आयोग" ने राजकीय कॉलेजों की अपेक्षा सार्वजनिक कॉलेजों को ही अधिक प्रोत्साहन दिए जाने का समर्थन किया। अतः उसने यह विचार अंकित किया कि राजकीय कॉलेजों का संचालन केवल उन्हीं स्थानों में किया जाय, जहाँ की जनता सार्वजनिक कॉलेजों की स्थापना करने में असमर्थ हो। इस प्रकार, "आयोग" ने स्पष्ट रूप से यह नीति प्रतिपादित की कि सरकार को माध्यमिक शिक्षा की भाँति उच्च शिक्षा के उत्तरदायित्व से भी मुक्त हो जाना चाहिए। **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** के अनुसार—**"आयोग ने इस बात का अनुमोदन किया कि सरकार को कॉलेज शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्यक्ष कार्य करने से हट जाना चाहिए।"**

"The Commission advocated the withdrawal of Government from direct enterprise in the field of college education."

—Dr. S. N. Mukerji : *History of Education in India*, p. 162.

5. विशिष्ट शिक्षा : Special Education

"आयोग" ने विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत अग्रांकित के सम्बन्ध में अपने प्रस्ताव प्रस्तुत किए—

1. मुसलमानों की शिक्षा : Education of Muslims—सन् 1882 में मुसलमानों की शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई दशा में थी। अतः "आयोग" ने उसके प्रसार के लिए अग्रांकित सुझाव दिए—(1) प्राचीन ढंग के मुस्लिम विद्यालयों को प्रोत्साहन, (2) मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं को उदार आर्थिक सहायता, (3) मुस्लिम प्राइमरी स्कूलों के निरीक्षण के लिए मुसलमान विद्यालय-निरीक्षकों की नियुक्ति, (4) मुसलमानों के लिए उन स्थानों पर, जहाँ उनकी संख्या पर्याप्त हो, मुस्लिम मिडिल और हाई-स्कूलों की स्थापना, (5) मुसलमान शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण-संस्थाओं की स्थापना, (6) मुसलमान छात्रों के लिए प्राथमिक स्तर से लेकर शिक्षा के उच्च स्तर तक छात्रवृत्तियों की व्यवस्था।

2. स्त्री-शिक्षा : Women's Education—स्त्री-शिक्षा की उन्नति के लिए "आयोग" ने अग्रांकित सिफारिशें कीं—(1) बालिका-विद्यालयों को उदार आर्थिक सहायता,

(2) बालिका-विद्यालयों के निरीक्षण के लिए निरीक्षिकाओं की नियुक्ति, (3) बालिकाओं के लिए छात्रवृत्तियों और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, (4) बालिकाओं के प्राथमिक विद्यालयों के लिए सुगम पाठ्यक्रम का निर्माण, (5) पर्दे में रहने वाली बालिकाओं के लिए उनके घरों पर शिक्षा देने के लिए अध्यापिकाओं की नियुक्ति, (6) स्त्रियों को शिक्षा-व्यवसाय की प्रति आकृष्ट करने के लिए महिला-प्रशिक्षण-विद्यालयों की स्थापना।

3. धार्मिक शिक्षा : Religious Education—धार्मिक शिक्षा के विषय में **"आयोग"** के सुझाव ये थे—**"धर्म-निरपेक्ष राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का दिया जाना सम्भव नहीं है। राजकीय विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा का कदापि समावेश नहीं हो सकता है, पर व्यक्तिगत विद्यालयों में प्रबन्धकों की इच्छा से धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।"**

आयोग का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF THE COMMISSION)

"भारतीय शिक्षा-आयोग" प्रथम आयोग था, जिसने भारतीय शिक्षा के विविध अंगों का गहन अध्ययन करके, उनके सम्बन्ध में सारगर्भित सुझाव लेखबद्ध किये थे। उसने देश के सम्मुख शिक्षा की ऐसी योजना उपस्थित की, जिसमें प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक राज्य और जनता को कन्धे-से-कन्धा मिलाकर शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करना अनिवार्य हो गया। उसने यह स्पष्ट कह दिया कि सहायता-अनुदान की उदार नीति का अनुसरण करने से शिक्षा का प्रवाह अविराम गति से प्रभावित होने लगेगा। उसने माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को दो भागों में विभक्त करके उस पेचीदगी को सुलझाने की क्षमता का प्रमाण दिया, जिसे सुलझाने के लिए स्वतन्त्र भारत में बहुउद्देश्यीय विद्यालयों की योजना को क्रियान्वित किया गया है। उसी के मार्ग-प्रदर्शन के कारण भारतीयों ने शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण करके, शिक्षा का भार अपने कन्धों पर लेना आरम्भ किया। **"आयोग"** के इन्हीं सब उपयोगी कार्यों के कारण उसकी सराहना करते हुए, **नूरुल्ला व नायक** ने लिखा है—**"आयोग की जाँच के फलस्वरूप भारत में महान शैक्षिक जागृति हुई और उसके मुख्य निर्णयों का 1902 तक भारत की शिक्षा-नीति पर प्रभुत्व रहा।"**

"The enquiry of the Commission led to a great educational awakening in India and its main findings dominated Indian educational policy till 1902." —**Nurullah and Naik** : *A History of Education in India*, p. 227.

कतिपय छिद्रान्वेषियों ने "आयोग" के गुणों के प्रति कोई ध्यान न देकर, केवल उसकी कमियों को खोजने में अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया है। उन्होंने आग्रहपूर्वक उस पर चार अक्षम्य दोषों का आरोपण किया है। **पहला,** "आयोग" ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाकर, भारतीयों को अपनी भाषाओं के अध्ययन की ओर से विमुख कर दिया। **दूसरा,** "आयोग" ने प्रौद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में मौन धारण करके, भारत की आर्थिक और औद्योगिक उन्नति की अवहेलना की। **तीसरा,** "आयोग" ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विषय में एक भी शब्द अंकित न करके, इस देश की सार्वजनिक शिक्षा के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया। **चौथा,** "आयोग" ने शिक्षा के क्षेत्र में निर्याण-नीति (Policy of Withdrawal) का प्रचार करके, राज्य को शिक्षा-व्यवस्था

के अनिवार्य उत्तरदायित्व से पूर्णतया मुक्त कर दिया। "आयोग" के इन्हीं कार्यों से खिन्न होकर और उसके सिद्धान्तों में नवीनता का अभाव बताकर, **ए० एन० बसु** (A. N. Basu) ने लिखा है—**"आयोग ने लगभग उन्हीं सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति की, जिनको वर्षों पूर्व वुड के आदेश-पत्र में स्वीकार किया गया था। उसने उन सिद्धान्तों में से कुछ को केवल विस्तृत कर दिया और कुछ पर यत्र-तत्र थोड़ा-सा बल दे दिया।"**

बसु के कथन में सत्य अवश्य है, क्योंकि "आयोग" ने सन् 1854 के "आदेश-पत्र" की सिफारिशों की पुनरावृत्ति की। किन्तु, इस पुनरावृत्ति के द्वारा उसने "आदेश-पत्र" की उन सिफारिशों में जान डाल दी, जिनमें दुर्बलता और शिथिलता थी। अपने इस कार्य द्वारा "आयोग" ने एक ऐसी शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया, जिसको सरकार ने सहर्ष स्वीकार किया। यही कारण था कि भारत में लगभग अगले बीस वर्षों (1882-1902) में "आयोग" के सुझावों ने भारतीय शिक्षा के प्रत्येक अंग को प्रभावित किया। इसीलिए भारतीय शिक्षा के इतिहास में "भारतीय शिक्षा-आयोग" को विशेष स्थान दिया जाता है। अतः हम निष्कर्ष रूप में **टी० एन० सिक्वेरा** के शब्दों में कह सकते हैं—**"अपने सब सुझावों के लिए "आयोग" हार्दिक सहायता का पात्र है। यदि आज भारतीय शिक्षा-प्रणाली के विषय में इतने अधिक असन्तोष का अनुभव किया जा रहा है, तो इसका कारण यह है कि 1882 में निर्धारित की जाने वाली शिक्षा-नीति के मुख्य अभिप्राय का अनुसरण नहीं किया गया है।"**

"For all this, the Commission deserves hearty approval. If so much dissatisfaction is felt with the educational system today, it is because it has not followed the spirit of the policy laid down in 1882."

—**T. N. Siqueira** : *The Education of India*, p. 73.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the main recommendations of the Indian Education Commission of 1882 and how did they influence education in India ?
   सन् 1882 के भारतीय शिक्षा-आयोग की मुख्य सिफारिशें कौन-सी थीं और उन्होंने भारत में शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया ?
2. State and discuss the recommendations of the Indian Education Commission of 1882 regarding either Primary Education or Higher Education.
   प्राथमिक शिक्षा या उच्च शिक्षा के विषय में सन् 1882 के "भारतीय शिक्षा-आयोग" की सिफारिशों का वर्णन कीजिए और उनकी विवेचना कीजिए।
3. Mention the chief recommendations of the Hunter Commission of 1882 on Secondary Education and trace their influence on the subsequent development of Secondary Education in India.
   माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में सन् 1882 के हण्टर कमीशन की मुख्य सिफारिशों का उल्लेख कीजिए और भारत में माध्यमिक शिक्षा की भावी उन्नति में उनके प्रभाव का वर्णन कीजिए।

"आयोग" के सुधार-सम्बन्धी सुझावों के कुछ दोषों की चर्चा कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। भारत ऐसे अकिंचन् देश के लिए सावास विश्वविद्यालयों की स्थापना के सुझाव में कोई औचित्य नहीं था। "आयोग" का दूसरा त्रुटिपूर्ण सुझाव यह था कि माध्यमिक शिक्षा के निरीक्षण और नियन्त्रण का भार नव-निर्मित "शिक्षा-बोर्डों" को सौंप दिया जाय। "आयोग" के सदस्य डॉ० जियाउद्दीन अहमद के विचारानुसार इस सुझाव को क्रियान्वित करने का अच्छा परिणाम नहीं हुआ। इण्टरमीडिएट कॉलेजों के परीक्षण में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इस प्रकार, यद्यपि "आयोग" के सुझावों में यत्र-तत्र कुछ दोष विद्यमान थे, तथापि उसने अपने सुझावों के द्वारा विश्वविद्यालय-शिक्षा में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये, वे चिरस्मरणीय रहेंगे। उसके सुझाव इतने बहुमूल्य थे कि आगामी 30 वर्षों में उसके प्रतिवेदन के पन्नों को उलट कर शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों की समय-समय पर सूचना प्राप्त की गई। "आयोग" के प्रतिवेदन के इसी महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए, **अरथर मेह्यू** ने लिखा है—**"कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग का प्रतिवेदन—सुझाव और सूचना का अनन्त स्रोत रहा है। भारतीय शिक्षा के इतिहास में इसका महत्त्व असीम है।"**

"The Report of the Calcutta University Commission has been a constant source of suggestion and information. Its significance in the History of Indian education has been incalculable."

—**Arthur Mayhew:** *The Education of India*, pp. 5-6.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. "In spite of some defects, it is universally admitted that Calcutta University Commission, wielded the greatest influence on university education in this country." Comment.
   "कुछ दोषों के बावजूद यह बात सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है कि 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' ने इस देश की विश्वविद्यालय-शिक्षा पर सबसे अधिक प्रभाव डाला।" समीक्षा कीजिए।
2. Write a critical note on : "Government Resolution on Educational Policy of 1913."
   सन् 1913 के "शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

●●

11

हर्टाग-समिति, 1929

HARTOG COMMITTEE, 1929

"Throughout the whole educational system, there is waste and ineffectiveness."—**Hartog Committee Report.**

विषय-प्रवेश

सन् 1919 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत के शासन-स्वरूप को रूपान्तरित करने के विचार से "भारत-सरकार अधिनियम" (Government of India Act) के अनुसार "द्वैध शासन-पद्धति" (Dyarchy) का सूत्रपात किया। भारतवासियों ने शासन की इस नवीन पद्धति से असन्तुष्ट होकर, इसका घोर विरोध किया। इस विरोध के कारणों की जाँच करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 8 नवम्बर, सन् 1927 को "साइमन कमीशन" (Simon Commission) की नियुक्ति की।

इस कमीशन की नियुक्ति के समय भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन चल रहा था और देश पर अंग्रेजों द्वारा थोपी जाने वाली विदेशी शिक्षा-पद्धति की तीक्ष्ण आलोचना की जा रही थी। इस आलोचना के औचित्य की जाँच करने के लिए "कमीशन" ने सर फिलिप हर्टाग (Sir Philip Hartog) की अध्यक्षता में एक "सहायक समिति" (Auxiliary Committee) की नियुक्ति की। यही "समिति" भारतीय शिक्षा के इतिहास में **"हर्टाग-समिति"** के नाम से प्रसिद्ध है।

समिति के सुझाव व सिफारिशें

(SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS OF COMMITTEE)

"हर्टाग-समिति" ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के लगभग सभी पहलुओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करके, सितम्बर, सन् 1929 में अपने प्रतिवेदन को "कमीशन" के समक्ष प्रस्तुत किया। "समिति" ने अपने प्रतिवेदन में सन् 1917 से 1927 तक की अवधि में शिक्षा के अनेक अंगों के विषय में अपने विचारों को अंकित किया। उसने शिक्षा के प्रति भारतीयों की जागरूकता और उनकी समस्याओं को समझने एव सुलझाने की अभिलाषा पर प्रकाश डाला। उसने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि यद्यपि शिक्षा के सभी अवयवों का विस्तार हुआ है, तथापि उसमें अनेक दोष अवलोकित होते हैं। इन

दोषों के निवारण के लिए, "समिति" ने मोटेतौर पर अग्रांकित सुझाव दिए—"हमें शिक्षा के संगठन के विषय में रिपोर्ट देने के लिए कहा गया था। इस संगठन के प्रत्येक पक्ष पर पुनर्विचार करने एवं उसको शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। शिक्षा के संगठन के लिए जो संस्थाएँ उत्तरदायी हैं, उनके सम्बन्धों को पुनः निर्धारित करना अनिवार्य है।"

"We were asked to report on the organization of education. At almost every point that organization needs reconsideration and strengthening; and the relations of the bodies responsible for the organization of education need re-adjustment." —*Hartog Committee Report*, p. 346.

भारतीय शिक्षा के दोषों का निवारण करने के लिए मुख्य उपचारों का उल्लेख करने के पश्चात् "समिति" ने शिक्षा के विविध अंगों के दोषों और उन दोषों के निराकरण के उपायों के सम्बन्ध में अपने सुझावों और सिफारिशों को अक्षरबद्ध किया है। हम इनमें से महत्त्वपूर्ण का वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं; यथा—

1. प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

"समिति" ने यह स्वीकार किया कि यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा था, तथापि यह सन्तोषप्रद नहीं था। "समिति" ने इनके दो मुख्य कारण बताए—अपव्यय और अवरोधन। उसने पहले इन दोषों के अर्थ का स्पष्टीकरण किया, फिर इनके कारण बताए और अन्त में इन कारणों के निवारण के लिए, प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपने सुझावों और सिफारिशों को लिखित रूप प्रदान किया; यथा—

(1) "अपव्यय" व "अवरोधन" का अर्थ : Meaning of "Wastage" & "Stagnation"—"समिति" के विचारानुसार प्राथमिक शिक्षा में "अपव्यय" और "अवरोधन" की समस्याएँ अत्यन्त विकराल थीं। इन दोनों शब्दों के अर्थ को "समिति" ने निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया—

(i) "अपव्यय से हमारा अभिप्राय है—प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पहले बालकों को विद्यालय की किसी भी कक्षा से हटा लेना।"

"By 'wastage' we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before the completion of the primary course." —*Hartog Committee Report*, p. 47.

(ii) "अवरोधन" से हमारा अभिप्राय है—किसी बालक को किसी निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए रोका जाना।"

"By 'stagnation' we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year." —*Ibid.*

(2) "अपव्यय" व "अवरोधन" के कारण : Causes of "Wastage" & "Stagnation"—"समिति" के विचार से "अपव्यय" और "अवरोधन" के मुख्य कारण अधोलिखित थे—

1. बालक अपने माता-पिता को कार्य में सहायता देते हैं। अतः वे विद्यालय जाने से बहुधा रोक लिए जाते हैं।

2. प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक विद्यालय नहीं है। बालकों को एक ग्राम से दूसरे ग्राम में स्थित विद्यालय को जाने में असुविधा और कठिनाई होती है।

3. प्राथमिक विद्यालयों का वितरण अनियमित है और पिछड़े हुए क्षेत्रों में उनकी उपयुक्त व्यवस्था नहीं की गई है।

4. प्राथमिक विद्यालयों में जो शिक्षक कार्य कर रहे हैं, उनमें प्रशिक्षण और आवश्यक योग्यता का अभाव है।

5. प्राथमिक विद्यालयों में उपयुक्त शिक्षण-सामग्री और पर्याप्त स्थान का अभाव है।

6. प्राथमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम दोषपूर्ण है। अतः वह बालकों का उचित हित नहीं कर पाता है।

7. ग्राम-विद्यालयों के लिए अध्यापक कठिनता से उपलब्ध होते हैं। जहाँ तक अध्यापिकाओं का प्रश्न है, उनकी उपलब्धि और भी अधिक कठिन है।

8. शिक्षकों के अभाव के कारण कुछ विद्यालय नियमित रूप से नहीं चलते हैं और चाहे जब बन्द हो जाते हैं।

9. शिक्षण-पद्धति प्राचीन और अमनोवैज्ञानिक है। अतः न तो वह बालकों को आकर्षित करती है और न वे उससे लाभान्वित ही होते हैं।

10. अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में एक ही शिक्षक है, जिसे सब विषयों की शिक्षा देनी पड़ती है। ऐसी दशा में, वह उचित प्रकार का शिक्षण नहीं दे पाता है।

11. ग्रामीण जनता इतनी निर्धन है कि वह बालकों को अल्प अवस्था में ही कार्य में लगा देती है।

12. ग्रामीण जनता अशिक्षित होने के कारण शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझती है। अतः वह बालकों को विद्यालय भेजना व्यर्थ समझती है।

(3) सुझाव और सिफारिशें : Suggestions & Recommendations—"समिति" ने "अपव्यय" और "अवरोधन" के कारणों को दूर करने और प्राथमिक शिक्षा की उन्नति करने के लिए निम्नलिखित विचार व्यक्त किए—

1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक (Quantitative) वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक (Qualitative) उन्नति पर बल दिया जाना चाहिए।

2. प्राथमिक शिक्षा को ठोस (Consolidation) बनाने की नीति का अनुसरण किया जाना चाहिए।

3. उन विद्यालयों को जो छोटे हैं, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या कम है और जिनमें शिक्षण की उचित व्यवस्था नहीं है, उनको भंग कर दिया जाना चाहिए।

4. प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा की अवधि कम-से-कम 4 वर्ष की होनी चाहिए और उनके शिक्षण-स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए।

5. प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को उदार एवं व्यावहारिक और वातावरण एवं परिस्थिति के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।

6. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण का समय, छुट्टियों और अन्य कार्यक्रमों को स्थानीय ऋतुओं और आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।

7. प्राथमिक विद्यालयों की निम्नतम कक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और उसमें होने वाले "अपव्यय" एवं "अवरोधन" का निराकरण करने के लिए पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए।

8. प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में स्वच्छता, स्वास्थ्य, सहकारिता, आत्म-विश्वास आदि गुणों का विकास किया जाना चाहिए।

9. प्राथमिक विद्यालयों को मनोरंजन, ग्राम-सुधार, वयस्क-शिक्षा और साधारण चिकित्सा के केन्द्र बनाये जाने चाहिए।

10. शिक्षकों के शिक्षण-स्तर का उन्नयन करने के लिए, उनके प्रशिक्षण-काल में वृद्धि की जानी चाहिए।

11. शिक्षकों के वेतन में वृद्धि और उनकी कार्य करने की दशाओं में सुधार करके, योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-कार्य के प्रति आकृष्ट किया जाना चाहिए।

12. प्रशिक्षण-विद्यालयों में सुधार किया जाना चाहिए और उनमें "अभिनवन-पाठ्यक्रमों" (Refresher Courses) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

"हर्टाग-समिति" ने माध्यमिक शिक्षा के दो प्रमुख दोष बताए—(1) मेट्रीकुलेशन परीक्षा की प्रधानता, और (2) अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की विशाल संख्या। माध्यमिक शिक्षा को इन दोषों से मुक्त करने के लिए, "समिति" ने निम्नांकित सुझाव दिए—

1. मिडिल स्कूलों का पाठ्यक्रम इतना संकीर्ण है कि उसका अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी किसी भी जीवनोपयोगी कार्य को नहीं कर सकते हैं। अतः पाठ्यक्रम का विस्तार करके, उनमें इस प्रकार के विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए, जो विद्यार्थियों को धन का उपार्जन करने में सहायता दे।

2. मिडिल स्कूल का पाठ्यक्रम समाप्त करने के उपरान्त विद्यार्थियों की परीक्षा ली जानी चाहिए और उसमें उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को उन उद्योगों एवं व्यवसायों की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिनके लिए उनको उपयुक्त समझा जाय।

3. हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों का समावेश किया जाना चाहिए और विद्यार्थियों को उनका अध्ययन करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए।

4. हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में इस प्रकार के वैकल्पिक विषयों का समावेश किया जाना चाहिए, जिनसे विद्यार्थियों को लाभ हो और जिनका चयन वे अपनी व्यक्तिगत रुचियों के अनुसार कर सकें।

5. शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के लिए अध्यापकों के प्रशिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए। साथ ही, प्रशिक्षण-विद्यालयों की वर्तमान स्थिति में सुधार करने, उनमें शिक्षण की नवीनतम विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

6. प्रशिक्षण-विद्यालयों में स्कूलों के अध्यापकों के लिए "अभिनवन-पाठ्यक्रम" (Refresher Courses) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

7. शिक्षकों के वेतन और सेवा की दशाओं (Conditions of Service) में सुधार करके, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के कार्य को सफल बनाया जाना चाहिए।

8. गैर-सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति 9 माह के लिए की जाती है, ताकि विद्यालयों के प्रबन्धक ग्रीष्मावकाश का वेतन बचा लें। इसके अलावा, शिक्षक और प्रबन्धक के मध्य किसी प्रकार का लिखित संविदा (Agreement) नहीं होता है। अतः शिक्षक को अल्प समय का नोटिस देकर अपने पद से हटा दिया जाता है। इन सब दोषों को दूर करके, शिक्षक के पद को सुरक्षित बनाया जाना चाहिए।

3. विश्वविद्यालय शिक्षा : University Education

"हर्टाग-समिति" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा की जाँच करने के पश्चात् उसमें अग्रांकित दोषों का ज्ञान प्राप्त किया—शिक्षण का निम्न स्तर, छात्रों की संख्या में वृद्धि, "आनर्स कोर्स" की अनुपयुक्त व्यवस्था, अनुत्तीर्ण छात्रों की अत्यधिक संख्या, स्नातकों में बढ़ती हुई बेरोजगारी, उत्तम पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं का अभाव, इत्यादि।

"समिति" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा को उक्त दोषों से रहित करने के विचार से निम्नलिखित सुझाव दिए—

1. उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षण एवं एकात्मक (Teaching & Unitary) विश्वविद्यालय सर्वोत्तम होते हैं। परन्तु, भारत की परिस्थितियों को देखते हुए, अभी सम्बद्धक (Affiliating) विश्वविद्यालयों की पर्याप्त समय तक आवश्यकता रहेगी। अतः देश में दोनों प्रकार के विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

2. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के नियमों को कड़ा बना दिया जाना चाहिए और उनमें केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनमें उच्च शिक्षा ग्रहण करने की योग्यता हो।

4. विश्वविद्यालयों में उत्तम पुस्तकालयों, सुसज्जित प्रयोगशालाओं और श्रेष्ठ अनुसन्धान-कार्यों की अनिवार्य रूप से समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।

5. विश्वविद्यालयों में "आनर्स कोर्स" के शिक्षण का उपयुक्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए और उसे "पास कोर्स" से पृथक् रखा जाना चाहिए। "आनर्स कोर्स" की सफलता के लिए विश्वविद्यालय और उससे सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षकों पर सम्मिलित उत्तरदायित्व रखा जाना चाहिए।

6. स्नातकों की बढ़ती हुई बेरोजगारी का अन्त करने के लिए, विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का प्रचलन किया जाना चाहिए। इस शिक्षा को ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को सरकार द्वारा नौकरियाँ दी जानी चाहिए।

7. स्नातकों को अपनी योग्यताओं के अनुकूल नौकरियाँ प्राप्त करने में सहायता देने के लिए, विश्वविद्यालयों में "रोजगार के कार्यालयों (Employment Bureaus) की सृष्टि की जानी चाहिए।

8. विश्वविद्यालयों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य—जनसाधारण में ज्ञान का विस्तार करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विश्वविद्यालयों में व्याख्यानमालाओं की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

हर्टाग-समिति का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF HARTOG COMMITTEE)

"हर्टाग-समिति" के प्रतिवेदन का भारतीय शिक्षा के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। "समिति" ने शिक्षा के अनेक अवयवों के जिन दोषों की ओर संकेत किया, वे सभी स्पष्ट और सर्वविदित थे। उसने इन दोषों को दूर करने और शिक्षा के पुनर्संगठन के सम्बन्ध में जो भी सुझाव दिए, वे उसके विवेक और दूरदर्शिता के प्रमाण थे। ये सभी सुझाव उसके इस निष्कर्ष पर आश्रित थे कि शिक्षा की गुणात्मक पद्धति का बलिदान करके, उसका संख्यात्मक विस्तार किया गया था। अतः उसने पूर्ण विश्वास से यह विचार व्यक्त किया कि शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार पर स्थायी अंकुश लगाकर, पहले उसकी गुणात्मक उन्नति की जाय।

"समिति" के इस विचार का भारत में मिश्रित स्वागत हुआ। भारतीय जनता ने शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के सुझाव की निन्दा की। उसका कहना था कि यह सुझाव इसलिए दिया गया था, ताकि इस देश में शिक्षा का प्रसार अवरुद्ध हो जाय। इसके विपरीत, भारत सरकार ने इस सुझाव की प्रशंसा की। उसका कहना था कि शिक्षा का संख्यात्मक विस्तार करने से पूर्व उसकी गुणात्मक उन्नति की जानी अत्यन्त आवश्यक है। इस सुझाव ने सरकार की प्रस्तावित शिक्षा-नीति को निश्चित रूप प्रदान किया। उसने इस सुझाव की आड़ में शिक्षा के प्रसार को रोक दिया और वह लगभग 20 वर्ष तक अर्थात् सन् 1947 तक रुका रहा। **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** के अग्रांकित वाक्य से हमारे कथन को बल प्राप्त होता है—**"हर्टाग-समिति के प्रतिवेदन ने इस देश में अपने जीवन के अन्तिम दो दशकों में ब्रिटिश सरकार की शिक्षा-नीति का बहुत-कुछ निर्माण किया।"**

"The Hartog Committee Report more or less shaped the educational policy of British Government during the last two decades of its existence in this country." —**Dr. S. N. Mukerji** : *History of Education in India*, p. 228.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the views of the Hartog Committee on "Wastage" and "Stagnation" in Primary Education ? What measures did it suggest to overcome them ?
   प्राथमिक शिक्षा में "अपव्यय" और "अवरोधन" के विषय में हर्टाग-समिति के क्या विचार थे ? उसने उनके समाधान के लिए क्या उपाय बताए ?
2. Summarize and criticise the main recommendations of the Hartog Committee and say how far they have influenced the modern conception of Secondary Education in India.
   हर्टाग-समिति की मुख्य सिफ़ारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए और उनकी आलोचना कीजिए। बताइए कि उन्होंने भारत में माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान धारणा को कहाँ तक प्रभावित किया है।

12
वुड-एबट रिपोर्ट, 1937
WOOD-ABBOTT REPORT, 1937

> "Vocational education should not be regarded as being on a lower plane than literary education."
> —**Wood-Abbott Report.**

विषय-प्रवेश

हर्टाग-समिति की सिफारिश के फलस्वरूप भारत सरकार ने सन् 1935 में "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) की पुनः स्थापना की। इस "बोर्ड" ने दिसम्बर, सन् 1935 की अपनी पहली बैठक में शिक्षा-सुधार के सम्बन्ध में अनेक प्रस्ताव पारित किये। उनमें से एक प्रस्ताव यह था—"छात्रों के लिए उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्राविधिक विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की जाय।"

"बोर्ड" के उपर्युक्त प्रस्ताव को स्वीकार करके, भारत सरकार ने सन् 1936 में इंगलैण्ड के दो प्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञों को भारत आने के लिए आमन्त्रित किया। ये विशेषज्ञ थे—

1. एस० एच० वुड, इंगलैंड के शिक्षा-बोर्ड का डाइरेक्टर ऑफ इन्टेलिजेन्स (S. H. Wood, Director of Intelligence, Board of Education)।
2. ए० एबट, इंगलैंड के शिक्षा-बोर्ड के प्रौद्योगिक स्कूलों का भूतपूर्व चीफ़-इंसपेक्टर (A. Abbott, Ex-Chief Inspector of Technical Schools Board of Education)।

जाँच के विषय
(TERMS OF REFERENCE)

भारत सरकार ने उपर्युक्त दो विशेषज्ञों की समिति से 4 बातों की जाँच करने के लिए कहा; यथा—

1. क्या वर्तमान औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में सुधार किया जाना चाहिए ?
2. क्या नवीन औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए ?
3. ग्राम के बालकों के लिए किस प्रकार की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए ?

14

सार्जेण्ट-रिपोर्ट, 1944

(शिक्षा-विकास की युद्धोत्तर योजना, 1944)

SARGENT-REPORT, 1944

(Post-war Plan of Educational Development, 1944)

"The function of the *High School* is to cater for those children who are well above the average ability."
—Sargent Report.

विषय-प्रवेश

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के कुछ समय पूर्व अन्य देशों के समान भारत में भी युद्धोत्तर विकास की योजनाओं के निर्माण-कार्य की दिशा में रचनात्मक कदम उठाए गए। इन योजनाओं में शिक्षा का भी स्थान था। अतः "गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी कौंसिल की पुनर्निर्माण समिति" (Reconstruction Committee of Governor-General's Executive Council) ने "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) को भारत में शिक्षा के विकास के लिए एक योजना तैयार करने का निर्देश दिया।

"केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" ने इस निर्देश का पालन करने के लिए भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा-सलाहकार, सर जॉन सार्जेण्ट (Sir John Sargent) से उक्त योजना प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। अतः सार्जेण्ट ने अपनी योजना को एक "स्मृति-पत्र" (Memorandum) में लेखबद्ध करके सन् 1944 में "बोर्ड" के समक्ष प्रस्तुत किया। इस "स्मृति-पत्र" को 4 विभिन्न नामों से पुकारा जाता है; यथा—

1. सार्जेण्ट-रिपोर्ट : Sargent Report.
2. सार्जेण्ट-योजना : Sargent Plan, or Scheme.
3. भारत में युद्धोत्तर शिक्षा-विकास की योजना : Scheme of Post-War Educational Development in India.
4. केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट : Report by the Central Advisory Board of Education.

सार्जेण्ट-योजना के उद्देश्य
(AIMS OF THE SARGENT PLAN)

"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" 12 भागों में विभाजित है। इसमें पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय-शिक्षा तक और शिक्षा के अनेक अन्य अंगों पर भी सविस्तार विचार किया गया है और उनके विकास के लिए अत्युत्तम सुझावों एवं सिफारिशों को अक्षरबद्ध किया गया है। इस "रिपोर्ट" में राष्ट्रीय शिक्षा की योजना प्रस्तुत की गई है। इस 'योजना' के उद्देश्यों के सम्बन्ध में दो लेखकों के विचार द्रष्टव्य हैं—

1. नूरुल्ला व नायक—"योजना का उद्देश्य—कम-से-कम 40 वर्ष की अवधि में भारत में शैक्षिक योग्यताओं के उसी स्तर का निर्माण करना है, जिस पर इंगलैण्ड पहुँच चुका था।"

"The object of the *Plan* is to create in India, in a period of not less than forty years, the same standard of education attainments as had already been attained in England."

—**Nurullah & Naik** : *A History of Education in India*, p. 834.

2. भगवान दयाल—"योजना का उद्देश्य—313 करोड़ रुपए व्यय करके, शिक्षा की सम्पूर्ण पद्धति का पुनर्संगठन करना था। योजना आठ पंचवर्षीय कार्यक्रमों में पूर्ण की जानी थी। प्रथम पंचवर्षीय कार्यक्रमों में केवल शिक्षकों का प्रशिक्षण किया जाना था। शेष सात पंचवर्षीय कार्यक्रमों में योजना का धीरे-धीरे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उस समय तक क्रमशः प्रसार किया जाना था, जब तक कि वह सम्पूर्ण देश में न फैल जाय।"

"The *Plan* aimed at reorganising the entire system of education at a total cost of 313 crores. The *Plan* was to be carried out by means of eight five-year programmes. The first five-year programme was to be entirely devoted to the training of teachers, while the remaining seven five-year programmes were meant for the gradual extension of the scheme from area to area, till it spread over the whole country."

—**Bhagwan Dayal** : *The Development of Modern Indian Education*, p. 160.

सुझाव व सिफारिशें
(SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS)

"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" में शिक्षा के विभिन्न अंगों के विषय में निम्नांकित सुझावों और सिफारिशों को स्थान दिया गया है—

(1) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा : Pre-Primary Education—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विषय में अधोलिखित सिफारिशें की गई हैं—

1. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए, क्योंकि यह शिक्षा—राष्ट्रीय शिक्षा-योजना की अभिन्न अंग है।

2. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा 3 से 6 वय-वर्ग के बालकों एवं बालिकाओं के लिए होनी चाहिए और कम-से-कम 10 लाख बच्चों के लिए शिशुशालाओं (Nursery Schools) की स्थापना की जानी चाहिए।

3. शिशुशालाओं की शिक्षा हर हालत में निःशुल्क होनी चाहिए।

4. शिशुशालाओं में केवल अध्यापिकाओं की ही नियुक्ति की जानी चाहिए और वे विशेष प्रशिक्षण-प्राप्त होनी चाहिए।

5. शिशुशालाओं की स्थापना सब बड़े नगरों में की जानी चाहिए। ग्रामों में इन शालाओं को जूनियर बेसिक स्कूलों के एक भाग में चलाया जाना चाहिए।

6. शिशुशालाओं में शिशुओं की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होनी चाहिए, पर उनके अभिभावकों से उन्हें नियमित रूप से भेजने का आग्रह किया जाना चाहिए।

7. शिशुशालाओं का मुख्य उद्देश्य—शिशुओं को सामाजिक अनुभव और शिष्टाचार की शिक्षा देना होना चाहिए, न कि सामान्य शिक्षा प्रदान करना।

(2) **प्राथमिक या बेसिक शिक्षा : Primary or Basic Education**—प्राथमिक शिक्षा के लिए, "सार्जेण्ट-रिपोर्ट" ने कुछ परिवर्तनों के पश्चात् "बेसिक शिक्षा-योजना" को स्वीकार किया है। उसने बेसिक शिक्षा में प्राथमिक और मिडिल (Primary & Middle) स्तरों की शिक्षा को सम्मिलित किया है और उनके सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिये हैं—

1. 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सब बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

2. शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए "उपस्थिति-निरीक्षक-पदाधिकारियों" (Attendance Officers) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

3. बेसिक शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जानी चाहिए।

4. बेसिक शिक्षा को आत्म-निर्भर नहीं बनाया जाना चाहिए, क्योंकि बच्चों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचना कठिन है।

5. बेसिक शिक्षा को दो भागों में विभक्त किया जाना चाहिए—(1) जूनियर बेसिक शिक्षा, 6 से 11 वर्ष तक के बच्चों के लिए, और (2) सीनियर बेसिक शिक्षा, 11 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए।

6. जूनियर बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। इन स्कूलों में सह-शिक्षा प्रचलित की जा सकती है।

7. सीनियर बेसिक स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा साधारणतया नहीं दी जानी चाहिए। किन्तु, यदि किसी प्रान्त में अंग्रेजी की माँग है, तो "प्रान्तीय शिक्षा-विभाग" उसकी पढाई की आज्ञा दे सकता है।

8. दोनों प्रकार के स्कूलों की शिक्षा का माध्यम—मातृभाषा होनी चाहिए।

9. दोनों प्रकार के स्कूलों में बाह्य परीक्षा के बजाय आन्तरिक परीक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

10. परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को सर्टीफिकेट दिए जाने चाहिए।

3. **हाईस्कूल शिक्षा : High School Education**—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" में हाईस्कूल की शिक्षा के विषय में अधोलिखित विचार व्यक्त किए गए हैं—

1. हाई स्कूल की शिक्षा 6 वर्ष की, अर्थात् 11 से 17 वर्ष तक की आयु के बालकों और बालिकाओं के लिए होनी चाहिए।

2. हाई स्कूलों में केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनकी क्षमताएँ औसत छात्रों से स्पष्टतः ऊँची हों।

3. जूनियर बेसिक स्कूलों की शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों में से लगभग 20 प्रतिशत को हाई स्कूलों में प्रवेश दिया जाना चाहिए।

4. हाई स्कूलों में 11 वर्ष से कम आयु के छात्रों को प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए।

5. हाई स्कूलों में प्रवेश लेने वाले छात्रों को 14 वर्ष आयु की समाप्ति तक अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

6. हाई स्कूलों में अध्ययन करने वाले छात्रों में से केवल 50 प्रतिशत छात्रों से शुल्क लिया जाना चाहिए और 50 प्रतिशत को निःशुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए।

7. हाईस्कूलों में अध्ययन करने वाले निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

8. हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम—मातृभाषा होनी चाहिए और अंग्रेजी की शिक्षा द्वितीय अनिवार्य विषय के रूप में दी जानी चाहिए।

9. हाई स्कूलों का पाठ्यक्रम—विश्वविद्यालय-शिक्षा का आधार-मात्र न होकर, अपने-आप में पूर्ण होना चाहिए, ताकि इस पाठ्यक्रम का पूर्ण अध्ययन करने के उपरान्त छात्रों को किसी व्यवसाय को करने की योग्यता प्राप्त हो जाय।

10. हाई स्कूल दो प्रकार के होने चाहिए—(1) साहित्यिक हाई स्कूल (Academic High Schools), और (2) तकनीकी हाई स्कूल (Technical High Schools)।

11. दोनों प्रकार के हाई स्कूलों में अग्रांकित विषयों की शिक्षा सामान्य रूप से दी जानी चाहिए—(1) मातृभाषा, (2) अंग्रेजी, (3) आधुनिक भाषाएँ, (4) भारत तथा विश्व का इतिहास, (5) भारत तथा विश्व का भूगोल, (6) गणित, (7) विज्ञान, (8) अर्थशास्त्र, (9) कृषि, (10) कला, (11) संगीत, और (12) शारीरिक शिक्षा।

12. उक्त सामान्य विषयों के अलावा साहित्यिक हाई स्कूलों में प्राच्य-भाषाओं (Classical Languages) और नागरिकशास्त्र की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा देने की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।

13. तकनीकी हाई स्कूलों में उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त अग्रलिखित विषयों की भी शिक्षा दी जानी चाहिए—(1) काष्ठ-कला, (2) धातु-कला, (3) साधारण इंजीनियरिंग, (4) ड्राइंग, (5) वाणिज्य सम्बन्धी विषय, (6) बुक कीपिंग, (7) शार्ट-हैण्ड, (8) टाइप-राइटिंग, (9) एकाउण्टेंसी, और (10) व्यापार-पद्धति।

14. हाई स्कूलों में अध्यापकों एवं छात्रों का अनुपात 1 : 20 होना चाहिए।

(4) **विश्वविद्यालय शिक्षा : University Education**—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" की विश्वविद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध में अग्रांकित सिफारिशें हैं—

1. बी० ए०, बी० एस-सी० आदि स्नातक उपाधि प्राप्त करने की न्यूनतम अवधि 3 वर्ष की होनी चाहिए।

2. इण्टरमीडिएट कक्षाओं को भंग कर दिया जाना चाहिए। उनकी 11वीं कक्षा को हाई स्कूल से और 12वीं कक्षा को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों के प्रवेश-नियमों को इतना कठोर बना दिया जाना चाहिए कि माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वाले 15 छात्रों में से केवल 1 छात्र ही विश्वविद्यालय में प्रवेश कर सके।

4. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर का उन्नयन करने के लिए अग्रांकित 3 उपाय अपनाये जाने चाहिए—(1) योग्य शिक्षकों की नियुक्ति, (2) शिक्षकों के वेतन-क्रम में वृद्धि और (3) शिक्षकों की सेवा-दशाओं (Conditions of Service) में सुधार।

5. भारत के सब विश्वविद्यालयों में एकरूपता स्थापित करने के लिए "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" (University Grants Commission) का संगठन किया जाना चाहिए।

6. विश्वविद्यालयों में छात्रों और शिक्षकों के पारस्परिक सम्बन्धों में घनिष्ठता उत्पन्न करने के लिए "उपकक्षा-प्रणाली" (Tutorial System) का प्रचलन प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

(5) तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा : Technical & Vocational Education—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" ने इस बात पर बल दिया है कि तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के लिए "पूर्णकालीन" (Full Time) और "अल्पकालीन" (Part-Time) शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए। इन संस्थाओं में भारतीय उद्योगों के लिए निम्नांकित 4 प्रकार के कार्यकर्त्ताओं को तैयार किया जाना चाहिए—

1. मुख्य अधिकारी व अनुसन्धानकर्त्ता : Chief Executive & Research Worker—इनकी शिक्षा—प्रौद्योगिकी (Technological) या इसी प्रकार की किसी अन्य उच्च शिक्षा-संस्था में होनी चाहिए।

2. साधारण अधिकारी, फोरमैन आदि : Minor Executives, Formen etc.—इनकी शिक्षा तकनीकी हाई स्कूलों में होनी चाहिए।

3. कुशल शिल्पकार : Skilled Craftsmen—इनकी शिक्षा, व्यापार या उद्योगों के स्कूलों (Trade or Industrial Schools) में होनी चाहिए।

4. अर्द्ध-कुशल व अकुशल श्रमिक : Semi Skilled & Unskilled Labour—इनकी शिक्षा सीनियर बेसिक या मिडिल स्कूलों (Senior Basic or Middle Schools) में होनी चाहिए।

(6) वयस्क शिक्षा : Adult Education—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" में प्रजातन्त्र के आदर्श को सफल बनाने के लिए वयस्क-शिक्षा को परम आवश्यक बताया है और इसके सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं—

1. 10 से 40 वर्ष तक की अवस्था के वयस्कों के लिए वयस्क शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिए।

2. वयस्क-शिक्षा की अवधि कम-से-कम एक वर्ष की होनी चाहिए।

3. वयस्क शिक्षा के पाठ्यक्रम में पढ़ने, लिखने और अंकगणित (3 R's) के अलावा भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र आदि विषयों को भी स्थान दिया जाना चाहिए।

4. वयस्क-शिक्षा को रोचक और हितप्रद बनाने के लिए सिनेमा, रेडियो, नृत्य, चलचित्र, ग्रामोफोन, मैजिक लैण्टर्न, अभिनय आदि के कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए।

5. पुरुषों, स्त्रियों, बालकों और युवतियों के लिए पृथक् विद्यालयों की सृष्टि की जानी चाहिए।

6. वयस्कों के लिए सम्पूर्ण देश में जगह-जगह पर 20 वर्ष की अवधि में पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना की जानी चाहिए।

(7) अध्यापकों का प्रशिक्षण : Training of Teachers—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शिक्षा की योजना को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की विशाल संख्या की आवश्यकता है। "रिपोर्ट" ने इस संख्या का अनुमान विभिन्न प्रकार के स्कूलों में शिक्षक और छात्रों का निम्नांकित अनुपात निर्धारित करके लगाया है—

	शिक्षक	छात्र
1. पूर्व-प्राथमिक व जूनियर बेसिक स्कूल	1	30
2. सीनियर बेसिक स्कूल	1	25
3. हाई स्कूल	1	20

इस अनुपात के अनुसार "रिपोर्ट" ने शिक्षकों की संख्या का अनुमान इस प्रकार लगाया है—

1. प्रशिक्षित उप-स्नातक
   Trained Under-Graduates — लगभग 20 लाख
2. प्रशिक्षित स्नातक
   Trained Graduates — " 2 लाख

इतनी विशाल संख्या में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए "रिपोर्ट" ने यह सिफारिश की है कि अग्रांकित तीन प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ समुचित संख्या में स्थापित की जानी चाहिए—

1. पूर्व-प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए।
2. जूनियर और सीनियर बेसिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए।
3. हाई स्कूलों के शिक्षकों के लिए।

अन्त में, "रिपोर्ट" ने शिक्षक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में 4 महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं; यथा—

1. प्रशिक्षण-संस्थाएँ यथासम्भव सावास (Residential) होनी चाहिए।
2. प्रशिक्षण-संस्थाओं के छात्राध्यापकों से शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए।

3. सब प्रकार के शिक्षकों के लिए "अभिनवन पाठ्यक्रम" (Refresher Course) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-व्यवसाय के प्रति आकृष्ट करने के लिए अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए।

(8) अन्य सिफारिशें : Other Recommendations—"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" में उपर्युक्त के अतिरिक्त और भी अनेक विषयों के सम्बन्ध में सिफारिश की गई हैं। इन विषयों में अग्रांकित महत्त्वपूर्ण हैं—(1) छात्रों के स्वास्थ्य की देखभाल की उचित व्यवस्था, (2) विकलांगों (Handicapped) के लिए विशिष्ट विद्यालयों का आयोजन, (3) छात्रों के लिए मनोरंजनात्मक और सामाजिक कार्यों का संयोजन, (4) छात्रों को व्यवसाय का चयन करने में परामर्श देने के लिए स्थान-स्थान पर "सेवा-योजनालयों" (Employment Bureaus) की स्थापना, और (5) राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की स्थापना के लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों में निकट सहयोग।

सार्जेण्ट-रिपोर्ट का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF SARGENT-REPORT)

भारतीय शिक्षा के इतिहास में "सार्जेण्ट-रिपोर्ट" का अपना विशेष स्थान है। इससे पूर्व भारत में आयोगों की नियुक्तियाँ हुई थीं, समितियों का संगठन हुआ था, सरकारी प्रस्तावों की उद्घोषणा हुई थी। किन्तु इनमें से एक को भी "सार्जेण्ट-रिपोर्ट" के समकक्ष होने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इस "रिपोर्ट" में व्यापकता थी, भारतीय शिक्षा का सम्पूर्ण चित्र था और उसके दोषों का निर्भीक वर्णन था।

इन सब गुणों की उपस्थिति में भी कुछ नुकताचीनी करने वालों ने इसमें कुछ त्रुटियाँ खोज ली हैं। उनका आग्रह है कि इस "रिपोर्ट" में प्रस्तुत की जाने वाली शिक्षा-योजना में मौलिकता का पूर्ण अभाव है। यह योजना—शिक्षा का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है, जो अप्राप्य है। योजना अपूर्ण है, क्योंकि यह ग्रामीण शिक्षा के बारे में बिल्कुल मौन है। यह इतनी खर्चीली, काल्पनिक और विलम्बकारी है कि यह भारत जैसे दरिद्र देश के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

"सार्जेण्ट-रिपोर्ट" के उपरिवर्णित दोषों और गुणों का सूक्ष्म विश्लेषण करके और उसे उपयोगिता एवं अनुपयोगिता की कसौटियों पर करके, भारत के माने हुए शिक्षाशास्त्रियों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इन शिक्षाशास्त्रियों में सर्वमान्य के० जी० सैयदैन ने अपने अग्रांकित विचार लेखबद्ध किए हैं—**"सार्जेण्ट-रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा की प्रथम व्यापक योजना है। यह इस धारणा को स्वीकार नहीं करती है कि भारत—शिक्षा के क्षेत्र में अन्य राष्ट्रों से सदैव निम्नतर स्तर पर रहेगा। यह इस विश्वास पर आधारित है कि अन्य देशों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो सफलता प्राप्त की है, उसे प्राप्त करने की इस देश में भी पर्याप्त क्षमता है।"**

"The Sargent Report is the first comprehensive scheme of national education. It does not start with the assumption that India was destined to occupy a position of educational inferiority in the community of nations. It

is based on the conviction that what other countries have achieved in the field of education is well within the competence of this country."

—**K. G. Saiydain** : *Education, Culture & Social Order*, p. 507.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Explain the importance of "Sargent-Report" and summarise its main recommendations.
   "सार्जेण्ट-रिपोर्ट" का महत्त्व बताइए और उसकी मुख्य सिफारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. Write a reasoned criticism of the "Sargent-Plan" as a scheme of National Education.
   राष्ट्रीय शिक्षा की योजना के रूप में "सार्जेण्ट-योजना" की यथोचित समीक्षा कीजिए।

16

माध्यमिक शिक्षा आयोग

(मुदालियर कमीशन)

SECONDARY EDUCATION COMMISSION
(Mudaliar Commission)

(1952—1953)

"Our secondary schools should no longer be single track institutions, but should offer a diversity of educational programmes."
—**Secondary Education Commission Report.**

विषय-प्रवेश

स्वतन्त्र भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में अत्यन्त द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे थे। इन परिस्थितियों में समन्वय की स्थापना करने के लिए माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। अतः सन् 1948 में "केन्द्रीय-शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) ने भारत सरकार को एक आयोग नियुक्त करने का सुझाव दिया। सन् 1951 में उसने अपने सुझाव की यह कहकर पुनरावृत्ति की कि माध्यमिक शिक्षा—एकमार्गीय (Unilateral) है, और उसे ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों के समक्ष उच्च शिक्षा प्राप्त करने या नौकरी खोजने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। अतः माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी अपनी अभिरुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार माध्यमिक शिक्षा से लाभान्वित हो सकें।

"बोर्ड" के सुझाव से सन्तुष्ट होकर, भारत सरकार ने 23 सितम्बर, सन् 1952 को मद्रास-विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में **"माध्यमिक-शिक्षा-आयोग"** की नियुक्ति की घोषणा की। अध्यक्ष के नाम पर इस "आयोग" को **"मुदालियर कमीशन"** भी कहा जाता है।

आयोग के जाँच के विषय
(TERMS OF REFERENCE OF THE COMMISSION)

"आयोग" के शब्दों में आयोग के जाँच के विषय थे—"भारत की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा के सब पक्षों की जाँच करना एवं उनके विषय में रिपोर्ट देना और उसके पुनर्गठन एवं सुधार के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करना।"

"To enquire into and report on the present position of Seconday Education all his aspects and suggest measures for its reorganization and improvement."
—*Secondary Education Commission Report*, p. 2.

"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के सब पहलुओं और उससे सम्बन्धित सब समस्याओं का गहन अध्ययन करने के पश्चात् अपना प्रतिवेदन तैयार किया। यह प्रतिवेदन 244 पृष्ठों का है और 15 अध्यायों में विभाजित है। "आयोग" ने अपने इस प्रतिवेदन को जून सन् 1953 में भारत सरकार की सेवा में प्रस्तुत किया।

आयोग के सुझाव व सिफ़ारिशें
(SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS OF THE COMMISSION)

हम "आयोग" के प्रतिवेदन में निहित माध्यमिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण अंगों के विषय में उसके विचारों, सुझावों और सिफ़ारिशों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा—

(1) माध्यमिक शिक्षा के दोष : Defects of Secondary Education—"आयोग" के अनुसार, माध्यमिक शिक्षा के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

1. माध्यमिक शिक्षा—एकपक्षीय है। अतः यह छात्रों को केवल उच्च शिक्षा के लिए तैयार करती है।

2. माध्यमिक शिक्षा—नीरस, पुस्तकीय, सकुचित एवं रूढ़िबद्ध है। अतः यह छात्रों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं करती है।

3. माध्यमिक शिक्षा—छात्रों के चरित्र-निर्माण के प्रति रंचमात्र भी ध्यान नहीं देती है। अतः यह उनमें अनुशासनहीनता की भावना उत्पन्न करती है।

4. माध्यमिक शिक्षा—छात्रों में नैतिकता, सहयोग, अनुशासन एवं नेतृत्व के गुणों का विकास नहीं करती है। अतः यह उनको उत्तम नागरिक नहीं बनाती है।

5. माध्यमिक शिक्षा का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः यह छात्रों को व्यावहारिक जीवन का ज्ञान नहीं देती है।

6. माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम संकीर्ण है। अतः यह छात्रों को अपनी रुचियों और मनोवृत्तियों के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर नहीं देती है।

7. शिक्षण-विधियाँ परम्परागत होने के कारण छात्रों को प्रभावित नहीं करती हैं और परीक्षा-प्रणाली उनके ज्ञान की वास्तविक परीक्षा नहीं लेती है।

8. अंग्रेज़ी—शिक्षा का माध्यम एवं अध्ययन का अनिवार्य विषय है। अतः जिन छात्रों को अंग्रेज़ी का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है, वे इसके अध्ययन में अपनी शक्ति एवं समय को नष्ट करते हैं।

(2) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य : Aims of Secondary Education—"आयोग" ने भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, माध्यमिक शिक्षा के अग्रलिखित उद्देश्य निर्धारित किये हैं –

1. जनतन्त्रीय नागरिकता का विकास : Development of Democratic Citizenship—माध्यमिक शिक्षा का पहला उद्देश्य—छात्रों में जनतन्त्रीय नागरिकता का विकास करना होना चाहिये। अतः माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिये, जिससे छात्रों में अनुशासन, देश-प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, स्पष्ट विचार आदि गुणों का विकास हो। इन गुणों से सम्पन्न होकर, छात्र इस देश के योग्य नागरिक बनेंगे और भारत में धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्र की स्थापना में योग देंगे। इसी गणतन्त्र की स्थापना करना भारत का उद्देश्य है।

2. व्यावसायिक कुशलता में उन्नति : Improvement of Vocational Efficiency—माध्यमिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—छात्रों में व्यावसायिक कुशलता की उन्नति करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षा में औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया जाना चाहिये। इन विषयों की शिक्षा से छात्रों और देश—दोनों का हित होगा। छात्र अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् किसी व्यवसाय को स्वतन्त्र रूप से ग्रहण कर सकेंगे। अतः उनको नौकरी खोजने के लिए इधर-उधर नहीं भटकना पड़ेगा। देश का हित यह होगा कि उसे अपने विभिन्न उद्योगों एवं व्यवसायों के लिये प्रशिक्षित व्यक्ति सरलता से मिल जायेंगे।

3. व्यक्तित्व का विकास : Development of Personality—माध्यमिक शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना होना चाहिये। अतः माध्यमिक शिक्षा का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिये, जिससे छात्रों का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास हो। इस विकास के फलस्वरूप छात्र अपनी सांस्कृतिक विरासत के महत्त्व को समझ सकेंगे और उसकी वृद्धि में योग दे सकेंगे।

4. नेतृत्व का विकास : Development of Leadership—माध्यमिक शिक्षा का चौथा और अन्तिम उद्देश्य—छात्रों में नेतृत्व ग्रहण करने की क्षमता का विकास करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षा का आयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे छात्र—सामाजिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक, व्यावसायिक और राजनीतिक क्षेत्रों में नेतृत्व का दायित्व ग्रहण कर सकें। प्रजातन्त्र तभी सफल हो सकता है, जब इन क्षेत्रों में नेतृत्व का दायित्व ग्रहण करने वाले व्यक्ति उपलब्ध हों।

(3) माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठित स्वरूप : New Organizational Pattern of Secondary Education—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के संगठन को देश की नवीन परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त बताकर, उसके पुनर्संगठन पर बल दिया है। इस सम्बन्ध में उसने निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

1. माध्यमिक शिक्षा की अवधि 7 वर्ष की होनी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा 11 से 17 वर्ष तक की अवस्था के बालकों एवं बालिकाओं के लिए होनी चाहिए।

3. माध्यमिक शिक्षा की अवधि अग्राकित दो स्तरों में विभक्त की जानी चाहिए :

(i) 3 वर्ष का मिडिल या जूनियर माध्यमिक या सीनियर बेसिक स्तर (Middle or Junior Secondary or Senior Basic Stage)।

(ii) 4 वर्ष का उच्चतर-माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Stage)।

4. वर्तमान इण्टरमीडिएट कक्षाओं को भंग कर दिया जाना चाहिए। उनकी 11वीं कक्षा को हाईस्कूलों से और 12वीं कक्षा को कॉलेजों से सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए।

5. डिग्री कोर्स की अवधि 3 वर्ष की कर दी जानी चाहिए।

6. बहुउद्देश्यीय स्कूलों (Multi-purpose Schools) की स्थापना की जानी चाहिए। इन स्कूलों में पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण (Diversification of Course) किया जाना चाहिए, ताकि छात्र अपने विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों और योग्यताओं के अनुसार पाठ्यक्रम का चयन कर सकें।

7. ग्रामीण स्कूलों में कृषि-शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए। अतः इन स्कूलों में उद्यान-विज्ञान (Horticulture), पशु-पालन (Animal Husbandry) एवं कुटीर उद्योग-धन्धों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. औद्योगिक क्षेत्रों में टेकनिकल स्कूलों की बहुत बड़ी संख्या में स्थापना की जानी चाहिए।

9. बड़े नगरों में प्रौद्योगिक संस्थानों (Technological Institutes) का निर्माण किया जाना चाहिए।

10. सब बालिका-विद्यालयों में बालिकाओं को गृह-विज्ञान (Domestic Science) के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

(4) भाषाओं का अध्ययन : Study of Language—"आयोग" ने मुख्यतः तीन भाषाओं के स्थान एवं अध्ययन के सम्बन्ध में अपने सुझाव दिए हैं; यथा—

(अ) हिन्दी का स्थान—"आयोग" ने इस बात पर बल दिया है कि हिन्दी को विद्यालय-स्तर पर अध्ययन का अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए। इस पक्ष में "आयोग" के तर्क निम्नलिखित हैं—

1. भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा का स्थान प्रदान किया गया है।

2. कुछ समय के पश्चात् हिन्दी—केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों के मध्य विचारों के आदान-प्रदान की भाषा बन जायगी।

3. कुछ समय के उपरान्त हिन्दी—भारत के अधिकांश व्यक्तियों के विचारों के विनिमय की भाषा बन जायगी।

4. राजभाषा के रूप में हिन्दी इस देश की राष्ट्रीय एकता एवं सुदृढता के विकास में योग देगी।

5. जो व्यक्ति हिन्दी का अध्ययन नहीं करेंगे, उनको सरकारी नौकरियाँ नहीं मिलेंगी और न वे हिन्दी जानने वाले व्यक्तियों के विचारों को समझ पायेंगे।

(ब) अंग्रेज़ी का स्थान—"आयोग" का कथन है कि अंग्रेजी लगभग सभी राज्यों में माध्यमिक स्तर पर अध्ययन का अनिवार्य विषय है। "आयोग" का मत है कि भविष्य में

भी अंग्रेजी को इसी स्थान पर रखा जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में "आयोग" ने अधोलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं—

1. अंग्रेज़ी—भारत के शिक्षित वर्गों की अत्यन्त लोकप्रिय भाषा है।

2. अंग्रेजी के अध्ययन ने भारत में राजनीतिक एव अन्य क्षेत्रों में एकता स्थापित करने में पर्याप्त योग दिया है।

3. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो स्थिति है, वह अंग्रेजी के अध्ययन का परिणाम है।

4. यदि हम राष्ट्रीय भावना से निर्देशित होकर, अंग्रेज़ी को माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम से हटा देंगे तो इसके परिणाम भारत के हित के प्रतिकूल सिद्ध होंगे।

(स) संस्कृत का स्थान—"आयोग" ने माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत को स्थान दिए जाने के पक्ष में अनेक अकाट्य तर्क दिए हैं; यथा—

1. संस्कृत—भारत की अधिकांश भाषाओं की जननी है। अतः इसका ज्ञान अनिवार्य है।

2. संस्कृत ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से व्यक्तियों को सदैव अपनी ओर आकृष्ट किया है। अतः इसकी उपेक्षा करना विवेक का प्रमाण नहीं है।

3. संस्कृत का अध्ययन करके ही भारत के प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान ज्ञान की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अतः इसके अध्ययन को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

(5) पाठ्यक्रम : Curriculum—"आयोग" ने पाठ्यक्रम के दोषों का निराकरण करने के विचार से निम्नलिखित सुझाव दिए हैं—

1. पाठ्यक्रम में पर्याप्त विविधता एवं लचीलापन होना चाहिए, ताकि यह छात्रों की विभिन्न रुचियों एवं आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके।

2. पाठ्यक्रम का निर्माण स्थानीय आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए और छात्रों को इस जीवन की महत्त्वपूर्ण क्रियाओं के सम्पर्क में लाया जाना चाहिए।

4. पाठ्यक्रम के विषयों का एक-दूसरे से एवं जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिए।

(6) पाठ्यक्रम के विषय : Subjects of the Curriculum—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा की अवधि को जिन दो स्तरों में विभाजित किया है, उनके पाठ्यक्रमों में निम्नांकित विषयों को स्थान दिया है—

(अ) मिडिल या जूनियर माध्यमिक या सीनियर बेसिक स्कूल—इन तीनों प्रकार के स्कूलों के पाठ्यक्रमों में निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए—

(i) भाषाएँ (Languages), (ii) सामाजिक अध्ययन (Social Studies), (iii) सामान्य विज्ञान (General Science), (iv) गणित (Mathematics), (v) कला तथा संगीत (Art & Music), (vi) शिल्प (Craft), और (vii) शारीरिक शिक्षा (Physical Education)।

(ब) हाई व हायर सेकण्डरी स्कूल—"आयोग" ने इस बात की सिफ़ारिश की है कि माध्यमिक शिक्षा के उच्चतर स्तर पर पाठ्यक्रम के विषयों का विभिन्नीकरण (Diversification) किया जाना चाहिए, ताकि वे छात्रों की अभिरुचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इस उद्देश्य से "आयोग" ने पाठ्यक्रम के विषयों का दो भागों में विभाजन किया है—(क) आन्तरक विषय (Core Subjects), और (ख) वैकल्पिक विषय (Optional Subjects)। "आन्तरक विषयों" का अध्ययन सब छात्रों के लिए अनिवार्य होगा। "वैकल्पिक विषयों" के 7 समूह होंगे, जिनमें से छात्रों को किसी एक समूह के विषयों का अध्ययन करना होगा। इन्हीं विषयों में पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण किया गया है। "आयोग" के अनुसार, "आन्तरक" एवं "वैकल्पिक" विषय इस प्रकार हैं—

(क) आन्तरक विषय : Core Subjects

आन्तरक विषय सभी बालकों एवं बालिकाओं के लिए अनिवार्य हैं और इस प्रकार हैं—

(अ) (1) मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा या मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा (Mother Tongue or Regional Language or Mother Tongue & Classical Language)।

(2) निम्नलिखित में से चुनी जाने वाली कोई एक और भाषा—

(i) हिन्दी (उन छात्रों के लिए, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है)।

(ii) प्रारम्भिक अंग्रेजी (उन छात्रों के लिए, जिन्होंने जूनियर माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन नहीं किया है)।

(iii) उच्च अंग्रेजी (उन छात्रों के लिए, जिन्होंने जूनियर माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी का अध्ययन किया है)।

(iv) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

(v) अंग्रेजी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक विदेशी भाषा।

(vi) एक शास्त्रीय भाषा।

टिप्पणी—(1) में मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा का मिश्रित पाठ्यक्रम होगा। (vi) में शास्त्रीय भाषा का पृथक् पाठ्यक्रम होगा।

(ब) (1) सामाजिक अध्ययन—अध्ययन के इन विषयों की शिक्षा केवल प्रथम दो वर्षों में दी जायगी।

(2) गणित और सामान्य विज्ञान—इन विषयों की शिक्षा केवल प्रथम दो वर्षों में दी जायगी।

(स) निम्नलिखित में से चुना जाने वाला कोई एक शिल्प (Craft)—

(1) कताई और बुनाई, (2) धातु का काम, (3) दर्जी का काम, (4) लकड़ी का काम, (5) मुद्रण का काम (Typography), (6) वर्कशॉप-अभ्यास (Workshop Practice), (7) मॉडल बनाना, (8) उद्यान-विज्ञान, और (9) कसीदा एवं क्रोशिया का काम।

(ख) वैकल्पिक विषय : Optional Subjects

पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण वैकल्पिक विषयों में होगा। वैकल्पिक विषयों के निम्नलिखित 7 समूह होंगे। छात्रों को किसी एक समूह के 3 विषयों का अध्ययन करना होगा।

समूह 1—मानव-विज्ञान : Humanities—(1) एक शास्त्रीय भाषा या 'अ 2' में से न ली गई एक भाषा, (2) इतिहास, (3) भूगोल, (4) अर्थशास्त्र और नागरिकशास्त्र, (5) मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र, (6) गणित, (7) संगीत, (8) गृह-विज्ञान।

समूह 2—विज्ञान : Science—(1) भौतिकशास्त्र, (2) रसायनशास्त्र, (3) जीवशास्त्र, (4) भूगोल, (5) गणित, (6) शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-विज्ञान।

समूह 3—प्राविधिक : Technical—(1) व्यावहारिक गणित (Applied Mathematics) और रैखिकीय डाइंग (Geometrical Drawing), (2) व्यावहारिक विज्ञान, (3) मैकेनिकल इंजीनियरिंग, (4) विद्युत इंजीनियरिंग।

समूह 4—वाणिज्य : Commercial—(1) वाणिज्यिक प्रयोग (Commercial Practice), (2) बहीखाता, (3) वाणिज्य-भूगोल या अर्थशास्त्र और नागरिकशास्त्र, (4) शार्टहैंड, और टाइपराइटिंग।

समूह 5—कृषि : Agriculture—(1) सामान्य कृषि, (2) पशु-पालन, (3) औद्योगिक (Horticulture) और बागवानी, (4) कृषि-रसायन (Agriculturul Chemistry) और वनस्पति-विज्ञान।

समूह 6—ललित कलायें : Fine Arts—(1) कला का इतिहास, (2) ड्राइंग और डिजाइन बनाना, (3) चित्रकला, (4) मॉडल बनाना, (5) संगीत, (6) नृत्य।

समूह 7—गृह-विज्ञान : Domestic Science—(1) गृह-अर्थशास्त्र, (2) पोषण और पाक-कला (Nutrition & Cookery), (3) मातृकला और शिशु-पालन, (4) गृह-प्रबन्ध और गृह-उपचारण (Home Nursing)।

(7) पाठ्य-पुस्तकें : Text-Books—"आयोग" ने पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करने के लिए अधोलिखित सुझाव अंकित किये हैं—

1. पाठ्य-पुस्तकों के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रत्येक राज्य में एक "उच्चस्तरीय पाठ्य-पुस्तक-समिति" (High Power Text-Book Committee) का संगठन किया जाना चाहिए।

2. पुस्तकों में चित्र बनाने की कला में प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा एक संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए।

3. एक विषय में एक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित करने के बजाय पाठ्य-पुस्तकों की पर्याप्त संख्या निश्चित की जानी चाहिए। विद्यालयों को इन पाठ्य-पुस्तकों में से किसी एक को चुनने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

4. पाठ्य-पुस्तकों एवं अध्ययन की अन्य पुस्तकों में शीघ्र परिवर्तन करने की प्रचलित प्रथा का अन्त किया जाना चाहिए।

(8) शिक्षण की प्रावैगिक विधियाँ : Dynamic Methods of Teaching—"आयोग" के विचारानुसार, माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण-विधियाँ—नीरस एवं निर्जीव हैं। अतः उनके स्थान पर प्रावैगिक अथवा सक्रिय एवं स्फूर्तिपूर्ण शिक्षण-विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। "आयोग" ने इन विधियों का अग्रलिखित प्रकार से स्पष्टीकरण किया है—

1. शिक्षण-विधियों का उद्देश्य—छात्रों को केवल कुशलतापूर्वक ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होना चाहिये, वरन् उनमें उचित मूल्यों, उचित दृष्टिकोणों एवं कार्य करने की उचित आदतों का निर्माण करना भी होना चाहिये।

2. शिक्षण में मौलिक बातों और कंठस्थ करने के कार्य का कोई स्थान नहीं होना चाहिये। अतः इन पर बल न देकर, शिक्षण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि वह उद्देश्यपूर्ण, वास्तविक और साभिप्रायिक हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये शिक्षण-विधियों में "क्रिया-विधि" (Activity Method) एवं "योजना-विधि" (Project Method) को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

3. छात्रों में सामाजिक जीवन एवं सहयोगी कार्य के गुणों का विकास करने के उद्देश्य से, उनको समूहों में कार्य करने के लिए अधिक-से-अधिक अवसर दिये जाने चाहिए।

4. प्रावैगिक शिक्षण-विधियों को लोकप्रिय बनाने के लिए "प्रयोगात्मक" एवं "प्रदर्शनात्मक" (Experimental & Demonstration) विद्यालयों की विभिन्न स्थानों पर स्थापना की जानी चाहिए।

(9) धार्मिक शिक्षा : Religious Instruction—"आयोग" का विचार है कि चरित्र के निर्माण में धार्मिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः उसने धार्मिक शिक्षा के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं—

1. धार्मिक शिक्षा—विद्यालयों में दी जा सकती है।

2. धार्मिक शिक्षा—विद्यालय के शिक्षण के समय से पहले या बाद में दी जानी चाहिए।

3. धार्मिक शिक्षा—छात्रों के अभिभावकों की अनुमति प्राप्त करने के बाद दी जानी चाहिए।

4. धार्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए किसी छात्र को विवश नहीं किया जाना चाहिए।

(10) चरित्र-निर्माण की शिक्षा : Education of Character—"आयोग" ने चरित्र-निर्माण की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है और इसके विषय में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं—

1. छात्रों के चरित्र का निर्माण करना—सब शिक्षकों का अनिवार्य उत्तरदायित्व होना चाहिए।

2. प्रत्येक विद्यालय के प्रत्येक कार्यक्रम का उद्देश्य—चरित्र-निर्माण की शिक्षा देना होना चाहिए।

3. विद्यालय—विस्तृत समाज के अन्दर लघु समाज है। अतः जिन मूल्यों और दृष्टिकोणों का राष्ट्रीय जीवन के लिए महत्त्व है, उनको विद्यालय-जीवन में प्रतिबिम्बित किया जाना चाहिए।

4. छात्रों में उत्तम अनुशासन की भावना का विकास करने के लिए, उनमें और शिक्षकों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए।

5. विद्यालयों में स्वशासन-प्रणाली (System of Self-Government) को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

6. विद्यालयों में "अतिरिक्त पाठ्यक्रम-क्रियाओं" (Extra-Curricular Activities) एवं "पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं" (Co-Curricular Activities) को स्थान दिया जाना चाहिए।

7. 17 वर्ष से कम आयु के छात्रों को राजनीतिक कार्यों से पृथक् रखने के लिए, सरकार द्वारा कानून बना दिया जाना चाहिए।

8. सब विद्यालयों में एन० सी० सी०, फर्स्ट-एड, स्काउटिंग, सेण्ट जॉन्स एम्बुलैंस एवं जूनियर रेड-क्रास की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(11) निर्देशन व परामर्श : Guidance & Counselling—"आयोग" ने उच्चतम माध्यमिक स्तर पर "पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण" किया है, ताकि छात्रों को अपनी रुचियों के अनुसार विषयों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो। किन्तु, अनुभवहीन बालक—विधियों का चयन करने में गलती कर सकते हैं। अतः उनको निर्देशन और परामर्श दिए जाने की आवश्यकता है। अपनी इस धारणा के आधार पर "आयोग" ने निर्देशन और परामर्श के सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. शिक्षा के अधिकारियों को छात्रों के शैक्षिक निर्देशन के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए।

2. छात्रों के विभिन्न उद्योगों के कारखानों में ले जाया जाना चाहिए और उनको इन उद्योगों के फिल्म दिखाये जाने चाहिए, ताकि उनको विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित विभिन्न व्यवसायों की जानकारी प्राप्त हो जाय।

3. छात्रों को व्यवसायों के विषय में सूचना देने के लिए, विद्यालय में समय-समय पर "जीविकोपार्जन सम्मेलनों" (Career Conferences) का आयोजन किया जाना चाहिए।

4. विद्यालयों में "निर्देशन-अधिकारियों" (Guidance Officers) और "जीविकोपार्जन शिक्षकों" (Career Masters) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

(12) छात्रों का शारीरिक कल्याण : Physical Welfare of Students—"आयोग" का मत है कि छात्रों के शारीरिक कल्याण के प्रति विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि वे भावी नागरिक हैं। स्वस्थ नागरिक ही अपने देश का कल्याण कर सकते हैं। इस विचार से प्रेरित होकर, "आयोग" ने छात्रों के शारीरिक कल्याण के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिए हैं—

1. सब राज्यों में "स्कूल-स्वास्थ्य-सेवा" (School Medical Service) की सुसंगठित योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए।

2. सब विद्यालयों के सब छात्रों की एक वर्ष में कम-से-कम एक बार स्वास्थ्य परीक्षा अवश्य की जानी चाहिए।

3. कठिन रोगों से ग्रस्त छात्रों की स्वास्थ्य-परीक्षा बार-बार की जानी चाहिए।

4. रोगी छात्रों एवं छात्राओं का "विद्यालय-स्वास्थ्य-अधिकारी" (School Health Officer) द्वारा मुफ्त उपचार किया जाना चाहिए।

5. छात्रावासों एवं सावास विद्यालयों (Residential Schools) में विद्यार्थियों के लिए पौष्टिक तथा सन्तुलन भोजन का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

13. परीक्षा व मूल्यांकन : Examination & Evaluation—"आयोग" की धारणा है कि प्रचलित परीक्षा-प्रणाली—छात्रों के वास्तविक ज्ञान का मूल्यांकन करने में असमर्थ है। अतः "आयोग" ने अधोलिखित सुझावों द्वारा एक नवीन परीक्षा-प्रणाली की रूपरेखा प्रदर्शित की है—

1. बाह्य परीक्षाओं (External Examinations) की संख्या में कमी की जानी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम समाप्त करने के पश्चात् केवल एक "सार्वजनिक परीक्षा" (Public Examination) होनी चाहिए।

3. परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्न—निबन्धात्मक ढंग (Essay Type) से न होकर वस्तुनिष्ठ प्रकार (Objective Type) के होने चाहिए, ताकि परीक्षाओं के "आत्मगत-तत्त्वों" (Subjective Elements) का अन्त किया जा सके।

4. छात्रों के कार्य का अन्तिम मूल्यांकन करते समय अग्रलिखित का उचित महत्त्व दिया जाना चाहिए—आन्तरिक परीक्षाएँ (Internal Examinations), नियतकालिक परीक्षाएँ (Periodical Tests) एवं विद्यालय-अभिलेख (School Records)।

5. बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं का मूल्यांकन अंकों में न किया जाकर प्रतीकों (Symbols) में किया जाना चाहिए।

(14) अध्यापकों की स्थिति में सुधार : Improvement of Teacher's Status—"आयोग" का कथन है—अध्यापकों की स्थिति, वेतन एवं कार्य करने की दशाएँ बहुत ही असन्तोषजनक हैं।" इस बात को ध्यान में रखकर, "आयोग" ने उनकी स्थिति में सुधार करने के लिए अनेक मूल्यांकन सुझाव दिए हैं; यथा—

1. देश के माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापकों के चुनाव एवं नियुक्ति की विधि समान होनी चाहिए।

2. अध्यापकों को उचित वेतन नहीं मिलता है। अतः विशिष्ट समितियों की नियुक्ति करके, उनसे यह सुझाव माँगा जाना चाहिए कि वर्तमान स्थिति में उनका वेतन कितना होना चाहिए।

3. सब अध्यापकों के लिए "त्रिमुखी लाभ-योजना" (Triple Benefit Scheme) आरम्भ की जानी चाहिए। इस योजना के अन्तर्गत उनको पेन्शन, जीवन-बीमा एवं प्रॉविडेण्ट फण्ड की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

4. अध्यापकों की विशेष कठिनाइयों का समाधान करने और उनकी शिकायतों को सुनने के लिए, "निर्णायक मण्डल" (Arbitration Board) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

5. अध्यापकों को अग्रांकित सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए—उनके बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, उनके लिए विद्यार्थियों के समीप निवास-स्थान, उनको स्वास्थ्यवर्द्धक स्थानों व शिक्षा के सम्मेलनों में जाने के लिए अवकाश एवं यात्रा के किराये में कमी और चिकित्सालयों में मुफ्त चिकित्सा।

(15) अध्यापक-प्रशिक्षण : Teacher Training—"आयोग" का विश्वास है कि माध्यमिक शिक्षा की जिस नवीन संरचना को वह भारत में देखने का अभिलाषी है, उसके

लिए विशेष प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों को आवश्यकता है। भारत की तत्कालीन प्रशिक्षण-संस्थाएँ अपने सीमित दृष्टिकोण के कारण इस प्रकार के शिक्षकों का निर्माण करने में सफल नहीं हो सकती हैं। अतः "आयोग" ने अध्यापक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में निम्नांकित विचार व्यक्त किए हैं—

1. प्रशिक्षण-संस्थाएँ दो प्रकार की होनी चाहिए—

(i) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के लिए। इनके प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की होनी चाहिए।

(ii) स्नातकों के लिए। इनके प्रशिक्षण की अवधि अभी एक वर्ष की होनी चाहिए, पर कुछ समय के पश्चात् दो वर्ष की कर दी जानी चाहिए।

2. प्रथम प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ एक बोर्ड के अधीन होनी चाहिए, जिसका निर्माण इसी उद्देश्य से किया जाना चाहिए। स्नातकों की प्रशिक्षण-संस्थाएँ—विश्वविद्यालयों के अधीन और उन्हीं से सम्बद्ध होनी चाहिए।

3. छात्राध्यापकों को एक या एक से अधिक "अतिरिक्त पाठ्यक्रम क्रियाओं" (Extra Curricular Activities) में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

4. प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों से शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको राज्य द्वारा शिष्यवृत्तियों (Stipends) के रूप में पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। जो अप्रशिक्षित शिक्षक—विद्यालयों में काम कर रहे हैं, उन्हें प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए पूर्ण वेतन पर अवकाश दिया जाना चाहिए।

5. प्रशिक्षण-काल में छात्राध्यापकों का प्रशिक्षण-संस्थाओं से सम्बद्ध छात्रावासों में रहना अनिवार्य होना चाहिए और उनके लिए सामाजिक जीवन से सम्बन्धित क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

6. ट्रेनिंग कॉलेजों अर्थात् स्नातकों की प्रशिक्षण-संस्थाओं में निम्नलिखित की व्यवस्था की जानी चाहिए—"अभिनवन पाठ्यक्रम" (Refresher Courses), "लघु-गहन-पाठ्यक्रम" (Short Intensive Courses) एवं "कार्यशाला में व्यावहारिक प्रशिक्षण" (Practical Training in Workshops)।

7. ट्रेनिंग कॉलेजों में शिक्षण-शास्त्र के महत्त्वपूर्ण अंगों के सम्बन्ध में अनुसन्धान किया जाना चाहिए। इस कार्य को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेजों के अधीन एक "प्रदर्शनात्मक विद्यालय" (Demonstration School) होना चाहिए।

8. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों, माध्यमिक स्कूलों के कुछ विशेष प्रधानाध्यापकों एवं विद्यालय-निरीक्षकों में समय-समय पर प्रशिक्षण के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होना चाहिए।

9. एम० एड० कक्षाओं में उन्हीं व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जो प्रशिक्षित स्नातक हों और किसी विद्यालय में कम-से-कम तीन वर्ष तक शिक्षण का कार्य कर चुके हों।

10. अध्यापिकाओं के अभाव को दूर करने के लिए विशिष्ट अल्पकालीन प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम (Special Part-Time Training Courses) की योजना कार्यान्वित की जानी चाहिए।

आयोग का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF THE COMMISSION)

यह कहना असंगत प्रतीत नहीं होता है कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में "मुदालियर कमीशन" का स्थान बेजोड़ है। उसने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में अनेक सुन्दर एवं सुदूरगामी सुझाव दिए हैं; यथा—स्वतन्त्र भारत की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए शिक्षा के नवीन उद्देश्यों का निर्धारण, छात्रों की व्यक्तिगत अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण, छात्रों की अपनी वैयक्तिक क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुकूल विभिन्न विषयों का अध्ययन सुलभ बनाने के लिए बहु-उद्देश्यीय विद्यालयों की योजना, छात्रों को अपने भावी व्यवसायों का चयन करने में सहायता देने के लिए निर्देशन एवं परामर्श की उपलब्धि, कृषि-प्रधान देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए कृषि-शिक्षा की अनिवार्यता का समर्थन, देश के उद्योगों एवं व्यवसायों के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों को तैयार करने के लिये तकनीकी स्कूलों एवं प्राविधिक संस्थानों की व्यवस्था और परीक्षा-प्रणाली, अध्यापक-प्रशिक्षण एवं शिक्षकों की स्थिति में सुधार किये जाने पर बल।

यदि हम उसके सुझावों पर समग्र रूप से विचार करें तो हम संशयरहित होकर कह सकते हैं कि उसके सुझावों को क्रियान्वित करने से माध्यमिक शिक्षा का कलेवर बदल जाता, उसका स्वरूप नवीन एवं आकर्षक हो जाता। इस नवीन माध्यमिक शिक्षा को ग्रहण करके, भारत के भावी नागरिक बनने वाले छात्र अपनी मातृभूमि की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में उन्नति करके, उसकी बहुमुखी प्रगति में योग देते। हम अपने इस कथन के समर्थन में "आयोग" के सुझावों को क्रियान्वित किये जाने से पूर्व **भगवान दयाल** द्वारा व्यक्त किया जाने वाला विचार अंकित कर रहे हैं—**"यदि आयोग के अधिकांश सुझावों को क्रियान्वित कर दिया जायगा, तो माध्यमिक शिक्षा इस देश में निश्चित रूप से एक स्वस्थ आधार पर प्रतिष्ठित हो जायगी, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण देश के हित में सुनियोजित प्रगति सम्भव हो जायगी।"**

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the recommendations of the Secondary Education Commission regarding the new organizational pattern of Secondary Education.

   माध्यमिक शिक्षा के नवीन संगठन के विषय में माध्यमिक शिक्षा-आयोग की सिफारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2. Elucidate the main recommendations of the Mudaliar Commission regarding the National Pattern of Secondary Education as suggested by it.

   मुदालियर आयोग द्वारा प्रस्तावित माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में उसकी मुख्य सिफारिशों पर प्रकाश डालिए।

3. Critically examine the recommendations of the Mudaliar Commission for the reorganization of Secondary Education in India.

   भारत में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के बारे में मुदालियर आयोग की सिफारिशों का आलोचनात्मक निरीक्षण कीजिए।

●●

17

शिक्षा आयोग

(कोठारी-कमीशन)

EDUCATION COMMISSION

(Kothari Commission)

(1964—1966)

"Secondary education should be increasingly and largely vocationalized, and in higher education a greater emphasis should be placed on agricultural and technical education." —**Education Commission Report.**

विषय-प्रवेश

सन् 1882 से 1952 तक भारत के पाँच आयोगों की नियुक्ति हो चुकी थी। इनमें अन्तिम दो, अर्थात्, "राधाकृष्णन् कमीशन" (1948-49) एवं "मुदालियर कमीशन" (1952-53) की नियुक्ति स्वतन्त्र भारत में हुई थी। इन दोनों कमीशनों ने शिक्षा के लगभग सभी अवयवों को दोषमुक्त करने एवं सुदृढ बनाने के लिए अनेक बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये थे। भारत सरकार ने बहुत समय तक सोच-विचार करने के बाद, उनमें से कुछ सुझावों को क्रियान्वित किये जाने का आदेश दिया।

सुझावों को क्रियान्वित किए कुछ ही वर्ष बीते थे कि सरकार ने सन् 1964 में "शिक्षा-आयोग" नामक एक नवीन आयोग की नियुक्ति कर दी और उस पर 15 लाख रुपये से अधिक धनराशि व्यय कर दी।[1] सरकार ने "राधाकृष्णन्" एवं "मुदालियर आयोग" के सुझावों के क्रियान्वित किये जाने के परिणामों को देखने की प्रतीक्षा किए बिना किन कारणों से विवश होकर यह कदम उठाया ? हम पहले इस प्रश्न का उत्तर देकर आपकी जिज्ञासा को शान्त कर रहे हैं।

1. "आयोग" पर कुल 15,09,175 रुपये व्यय हुए। देखिए, "आयोग" की रिपोर्ट, पृष्ठ 612।

आयोग की नियुक्ति के कारण व प्रयोजन

(REASONS & PURPOSES FOR SETTING-UP THE COMMISSION)

भारत सरकार ने अपने 14 जुलाई, सन् 1964 के "प्रस्ताव" (Resolution) में आयोग की नियुक्ति के कारणों एवं प्रयोजनों को निम्नांकित शब्दों में प्रकाशित किया[1]—

1. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय में ही भारत सरकार ने अपने देश की लोकप्रिय परम्पराओं एवं आधारभूत मान्यताओं और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया है। इस दिशा में कुछ कार्य भी किया गया है, पर सामान्यतः समय की माँगों के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास नहीं हुआ है। शिक्षा के अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अब भी "विचार एवं कार्य" (Thought & Action) में महान् अन्तर विद्यमान है।

2. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही देश की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण स्थान को स्वीकार किया गया है। शिक्षा ही सच्चे लोकतन्त्रीय समाज का निर्माण कर सकती है। शिक्षा ही राष्ट्रीय एकता को सम्भव बना सकती है। शिक्षा ही व्यक्ति को श्रेष्ठता एवं पूर्णता की अनन्त खोज के लिए प्रेरणा दे सकती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर अब यह अनिवार्य समझा जाने लगा है कि शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जाय, जिसके फलस्वरूप कम-से-कम सम्भव समय में एक ऐसी सुसन्तुलित एवं सुसंगठित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास किया जा सके, जो राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रों को महत्त्वपूर्ण योगदान दे।

3. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत ने राष्ट्रीय विकास के नव-युग में प्रवेश किया है। इस युग में भारत के लक्ष्य है—न केवल शासन, वरन् जीवन के ढंग में भी धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र (Secular Democracy) की स्थापना; जनता की निर्धनता की समाप्ति; कृषि का आधुनिकीकरण एव उद्योगों का शीघ्र विकास करके, सब व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर का उन्नयन, आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (Technology) का प्रयोग और परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यों से उनका समन्वय; समाजवादी ढंग से समाज की स्थापना करने, धन का उचित वितरण; और सब व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए अवसरों की समानता।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा को सबसे अधिक शक्तिशाली साधन माना जाने लगा है। किन्तु शिक्षा इन लक्ष्यों की प्राप्ति में तभी सहायता दे सकती है, जब उसके परम्परागत स्वरूप में आमूल परिवर्तन कर दिया जाय और उसमें आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाय।

4. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही सब स्तरों पर शिक्षा का असाधारण विस्तार हुआ है। किन्तु, इस विस्तार के बावजूद शिक्षा के अनेक अंगों के सम्बन्ध में व्यापक असन्तोष है। उदाहरणार्थ—14 वर्ष की अवस्था तक के सब बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है। जनसाधारण की निरक्षरता का समाधान

1. *Resolution of the Government of India, Setting-up the Educating Commission*, dated the 14th of July, 1964.

नहीं किया गया है। माध्यमिक स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तरों का पर्याप्त उन्नयन नहीं किया गया है। माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रमों का विभिन्नीकरण (Diversification of Courses) की योजना को पूर्ण नहीं किया गया है, जिसके फलस्वरूप एक ओर शिक्षित व्यक्तियों की बेरोज़गारी पहले से अधिक हो गई है और दूसरी ओर अनेक उद्योगों एवं व्यवसायों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों का अत्यधिक अभाव है। शिक्षकों के वेतनों एवं कार्य की दशाओं (Service Conditions) में वांछनीय परिवर्तन नहीं किए गए हैं। शिक्षा की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर अब भी तीव्र विवाद चल रहा है।

संक्षेप में, जिस गति से शिक्षा की संख्यात्मक (Quantitative) उन्नति हुई है, उस गति से गुणात्मक (Qualitative) उन्नति नहीं हुई है। इसके अलावा, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए निर्धारित की जाने वाली नीतियों और निश्चित किए जाने वाले कार्यक्रमों को सन्तोषजनक ढंग से क्रियान्वित नहीं किया गया है।

5. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत सरकार का दृढ़ विश्वास है कि **शिक्षा—राष्ट्रीय प्रगति एवं कल्याण का आधार है।** सरकार का यह भी दृढ़ विश्वास है कि देश एवं जनता का जितना हित शिक्षा से हो सकता है, उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं हो सकता है। सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सब साधनों का प्रयोग करने का और इन पर अधिक-से-अधिक धन व्यय करने का निश्चय कर लिया है। पर यह तभी किया जा सकता है, जब शिक्षा का आधार उत्तम एवं प्रगतिशील हो। सरकार ने शिक्षा को इस आधार पर प्रतिष्ठित करने का दृढ़ संकल्प किया है।

6. भारत में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करने के लिए, शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जानी आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा-प्रणाली के सब अंग एक-दूसरे पर शक्तिशाली प्रतिक्रिया करते हैं और प्रभाव भी डालते हैं। उत्तम माध्यमिक विद्यालयों के बिना शक्तिशाली एवं प्रगतिशील विश्वविद्यालय नहीं हो सकते हैं और माध्यमिक विद्यालय तभी उत्तम हो सकते हैं, जब प्राथमिक विद्यालय कुशलतापूर्वक कार्य करें।

अतः आवश्यक है कि शिक्षा के विभिन्न अंगों एवं स्तरों की अलग-अलग जाँच न करके, शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जाय। उक्त "प्रस्ताव" के अन्त में लिखा गया है—**"पिछले समय में अनेक आयोगों एवं समितियों ने शिक्षा के सीमित क्षेत्रों एवं विशिष्ट अंगों का सर्वेक्षण किया है। इसके विपरीत, अब सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली का सूक्ष्म सर्वेक्षण किया जायेगा।"**

आयोग की नियुक्ति
(APPOINTMENT OF THE COMMISSION)

भारत सरकार ने 14 जुलाई, सन् 1964 के अपने "प्रस्ताव" में नवीन शिक्षा-आयोग की नियुक्ति के कारणों एवं प्रयोजनों का स्पष्टीकरण करके, उसी "प्रस्ताव" के द्वारा "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" (University Grants Commission) के अध्यक्ष—प्रोफ़ेसर डी० एस० कोठारी (D. S. Kothari) की अध्यक्षता में **"शिक्षा-आयोग"** की नियुक्ति की घोषणा की। प्रोफ़ेसर कोठारी के नाम से इस "आयोग" को **"कोठारी कमीशन"** भी कहा जाता है। "आयोग" में कुल 17 सदस्य थे, जिनमें से 6 अन्य देशों के शिक्षा-विशेषज्ञ थे।

आयोग के जाँच के विषय
(TERMS OF REFERENCE OF THE COMMISSION)

14 जुलाई, सन् 1964 के "प्रस्ताव" में "शिक्षा-आयोग" की जाँच के विषयों को अग्रांकित शब्दों में लेखबद्ध किया गया—**"आयोग—भारत सरकार को शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप और उनके सब स्तरों एवं पक्षों पर शिक्षा के विकास के लिए सामान्य सिद्धान्तों एवं नीतियों के विषय से परामर्श देगा। आयोग को चिकित्सा या क़ानून की शिक्षा की समस्याओं की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है, पर वह इन समस्याओं के उन पक्षों की जाँच कर सकता है, जो व्यापक जाँच की दृष्टि से आवश्यक हों।"**

"The Commission will advise the Government of India on the national pattern of education and on general principles and policies for the development of education at all stages and in all its aspects. It need not, however, examine the problems of medical or legal education, but such aspects of these problems as are necessary for its comprehensive enquiry may be looked into."—*Resolution of the Government of India Setting-up Education Commission*, dated the 14th of July, 1964.

"शिक्षा-आयोग" को अपना प्रतिवेदन 31 मार्च, सन् 1966 तक प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया था। किन्तु, कुछ कठिनाइयों के कारण, उसने अपने प्रतिवेदन को निर्धारित तिथि से लगभग 3 माह पश्चात् अर्थात् 29 जून, सन् 1966 को भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षामन्त्री श्री एम० सी० छागला (M. C. Chagla) के समक्ष प्रस्तुत किया। लगभग 700 पृष्ठों का यह प्रतिवेदन तीन भागों में विभाजित है और इसका नाम है—**"शिक्षा एवं राष्ट्रीय प्रगति"** (Education & National Development)।

आयोग के सुझाव व सिफ़ारिशें
(SUGGESTIONS & RECOMMENDATIONS OF THE COMMISSION)

"आयोग" ने शिक्षा के सभी अंगों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनमें से महत्त्वपूर्ण अंग निम्नलिखित हैं—

1. शिक्षा एवं राष्ट्रीय लक्ष्य : Education & National Objectives.
2. शिक्षा की संरचना एवं स्तर : Educational Structure & Standards.
3. अध्यापक की स्थिति : Teacher Status.
4. अध्यापक शिक्षा : Teacher Education.
5. छात्र संख्या एवं जनबल : Enrolment & Manpower.
6. शैक्षिक अवसरों की समानता : Equalization of Educational Opportunities.
7. विद्यालय-शिक्षा का विस्तार : Expansion of School Education.
8. विद्यालय-पाठ्यक्रम : School Curriculum.
9. शिक्षण-विधियाँ, निर्देशन एवं मूल्यांकन : Teaching Methods, Guidance & Evaluation.
10. उच्च-शिक्षा : Higher Education.
11. स्त्री-शिक्षा : Women's Education.

12. वयस्क-शिक्षा : Adult Education.

13. विज्ञान की शिक्षा : Science Education.

14. कृषि की शिक्षा : Agricultural Education.

15. व्यावसायिक, प्राविधिक एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा : Vocational, Technical & Engineering Education.

उपर्युक्त अंगों के सम्बन्ध में 'आयोग' ने जिन विचारों, सुझावों एवं सिफ़ारिशों को अपने प्रतिवेदन में अंकित किया है, उनका वर्णन क्रमबद्ध शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है; यथा—

1. शिक्षा व राष्ट्रीय लक्ष्य
(EDUCATION & NATIONAL OBJECTIVES)

"आयोग" का मत है—**"शिक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक सुधार यह है कि इसको इस प्रकार परिवर्तित करने का प्रयास किया जाय कि इसका व्यक्तियों के जीवन, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बन्ध स्थापित हो जाय। इस प्रकार, शिक्षा को उस सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का शक्तिशाली साधन बनाया जाय, जो राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।"**

"The most important and urgent reform needed in education is to transform it, to endeavour to relate it to the life, needs and aspirations of the people; and thereby make it a powerful instrument of social, economic and cultural transformation, necessary for the realization of the national goals." —*Education Commission Report*, p. 612.

शिक्षा द्वारा उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, 'आयोग' ने निम्नांकित 'पंचमुखी कार्यक्रम' का विचार प्रकट किया है—

1. शिक्षा द्वारा उत्पादन में वृद्धि।
2. शिक्षा द्वारा सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास।
3. शिक्षा द्वारा प्रजातन्त्र की सुदृढता।
4. शिक्षा द्वारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता।
5. शिक्षा द्वारा सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करके चरित्र का निर्माण।

हम इसी क्रम में इनका विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

(1) शिक्षा व उत्पादन : Education & Productivity—'आयोग' ने शिक्षा द्वारा उत्पादन में वृद्धि करने के लिए निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

1. विज्ञान की शिक्षा को विद्यालय-शिक्षा एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा में सब पाठ्यक्रमों का विभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।
2. विज्ञान को कृषि एवं उत्पादन के कार्यों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. कार्य-अनुभव (Work-Experience) को सम्पूर्ण शिक्षा का विशिष्ट अंग बनाया जाना चाहिए।

4. माध्यमिक शिक्षा को अधिक-से-अधिक व्यावसायिक रूप प्रदान किया जाना चाहिए।
5. उच्च शिक्षा में कृषि-शिक्षा एवं प्राविधिक शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए।

(2) सामाजिक व राष्ट्रीय एकता : Social & National Integration—'आयोग' ने शिक्षा द्वारा सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास करने के विचार से अधोलिखित सुझाव दिए हैं—

1. सार्वजनिक शिक्षा के लिए 'सामान्य विद्यालय-प्रणाली' (Common School System) को राष्ट्रीय लक्ष्य माना जाना चाहिए और इस प्रणाली को 2 वर्ष की अवधि में पूर्ण कर दिया जाना चाहिए।
2. शिक्षा के सब स्तरों पर सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवा (Social & National Service) को सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए।
3. सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवा के कार्यक्रमों का आयोजन, अध्ययन के विषयों के साथ ही किया जाना चाहिए।
4. प्रत्येक शिक्षा-संस्था में सामाजिक एवं सामुदायिक सेवा के कार्यक्रमों को आरम्भ किया जाना चाहिए और प्रत्येक छात्र द्वारा इन कार्यक्रमों में उचित ढंग से भाग लिया जाना चाहिए।
5. प्रत्येक जिले में 'श्रम एवं सामाजिक सेवा शिविरों' (Labour & Social Service Camps) की नियमित रूप से व्यवस्था की जानी चाहिए और इनमें प्रत्येक छात्र की उपस्थिति अनिवार्य होनी चाहिए।
6. सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता देने के लिए सरकार द्वारा उपयुक्त 'भाषा-नीति' (Language Policy) का निर्माण किया जाना चाहिए।
7. मातृभाषा अर्थात् प्रादेशिक भाषा को सब स्तरों पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए और इस कार्यक्रम को 10 वर्ष से पूर्ण कर दिया जाना चाहिए।
8. अखिल भारतीय शिक्षा-संस्थाओं में अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखना चाहिए। किन्तु, कुछ समय के पश्चात् अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने के प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए।
9. जिन क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाएँ प्रयोग की जाती हैं, उन क्षेत्रों में इन भाषाओं को यथाशीघ्र प्रशासन की भाषाओं के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।
10. अंग्रेजी के शिक्षण एवं अध्ययन को विद्यालय-स्तर से ही प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
11. रूसी भाषा एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की अन्य भाषाओं के अध्ययन के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
12. विश्व की कुछ महत्त्वपूर्ण भाषाओं की शिक्षा देने के लिए कुछ स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।
13. बी० ए० एवं एम० ए० के स्तरों पर छात्रों की दो भारतीय भाषाओं के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

14. सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास को विद्यालय-शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाना चाहिए।

15. सभी पाठ्यक्रमों में नागरिकता, संविधान से सिद्धान्तों एवं लोकतन्त्रीय समाजवादी समाज के स्वरूप को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए।

(3) शिक्षा व प्रजातन्त्र की सुदृढ़ता : Education & Consolidation of Democracy—"आयोग" ने शिक्षा द्वारा प्रजातन्त्र को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. 14 वर्ष की आयु तक के बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

2. वयस्क-शिक्षा के कार्यक्रमों को दो उद्देश्यों को सामने रखकर आयोजित किया जाना चाहिए—(i) निरक्षरता का उन्मूलन, एवं (ii) व्यक्ति की नागरिक एवं राष्ट्रीय कुशलता और सामान्य सांस्कृतिक स्तर का उन्नयन।

3. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए और छात्रों को इन दोनों स्तरों पर कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

4. धर्म, वर्ण, लिंग, जाति एवं स्थिति का भेदभाव किये बिना सब बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षा के समान अवसर दिये जाने चाहिए।

5. सब व्यक्तियों में वैज्ञानिक विचार एवं दृष्टिकोण का और सहिष्णुता, पहलकदमी, जन-हित, समाज-सेवा, आत्म-निर्भरता एवं आत्म-अनुशासन के गुणों का विकास किया जाना चाहिये।

(4) शिक्षा व आधुनिकीकरण : Education & Modernization—"आयोग" ने शिक्षा द्वारा भारत का आधुनिकीकरण करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

1. आधुनिकीकरण करने के लिए विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकी (Technology) का प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. आधुनिकीकरण करने के लिए शिक्षा को महत्त्वपूर्ण साधन बनाया जाना चाहिए और आधुनिकीकरण की प्रगति एवं शैक्षिक प्रसार की गतियों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

3. शिक्षा द्वारा छात्रों में उचित मूल्यों एवं दृष्टिकोणों का विकास किया जाना चाहिए।

4. शिक्षा द्वारा छात्रों में स्वतन्त्र विचार, स्वतन्त्र निर्णय एवं स्वतन्त्र अध्ययन की आदतों का निर्माण किया जाना चाहिए।

5. सामान्य व्यक्ति के शैक्षिक स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए।

(5) सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास : Development of Social, Moral & Spiritual Values—"आयोग" ने यह विचार प्रकट किया है कि शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करके, उनके चरित्र का निर्माण किया जाना चाहिए। इन कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए, "आयोग" ने अग्रलिखित सुझाव दिये हैं—

1. सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। यह शिक्षा—"विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार प्रदान की जानी चाहिए।

2. प्राथमिक विद्यालयों में इन मूल्यों की शिक्षा रोचक कहानियों द्वारा दी जानी चाहिए।

3. माध्यमिक विद्यालयों में इन मूल्यों के सम्बन्ध में अध्यापकों एवं विद्यार्थियों में विचार-विनिमय होना चाहिए।

4. उपर्युक्त दोनों प्रकार के विद्यालयों के वातावरण को सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से निमज्जित किया जाना चाहिए। इस कार्य का दायित्व सब शिक्षकों एवं अधिकारियों पर रखा जाना चाहिए।

5. प्रत्येक विश्वविद्यालय में "तुलनात्मक धर्म" (Comparative Religion) नामक विभाग की सृष्टि की जानी चाहिए। इस विभाग द्वारा यह खोज की जानी चाहिए कि इन मूल्यों की प्रभावशाली ढंग से किस प्रकार शिक्षा दी जा सकती है।

2. शिक्षा की संरचना व स्तर
(EDUCATIONAL STRUCTURE & STANDARDS)

"आयोग" ने शिक्षा की नवीन संरचना अर्थात् ढाँचे और शिक्षा-स्तरों के उन्नयन के सम्बन्ध में जो विचार अभिव्यक्त किये हैं, हम उनका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं—

(1) विद्यालय-शिक्षा की नवीन संरचना : New Structure of School Education—"आयोग" ने विद्यालय-शिक्षा के प्रचलित स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, इस शिक्षा की नवीन संरचना को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

10 वर्ष की सामान्य शिक्षा

- 2 या 3 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा
- 2 या 3 वर्ष की निम्न माध्यमिक शिक्षा
- 3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा
- 4 या 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा
- 1 से 3 वर्ष की पूर्व-विद्यालय शिक्षा

(2) संरचना-सम्बन्धी सुझाव : Suggestions Regarding Structure—"आयोग" ने विद्यालय-शिक्षा की नवीन संरचना के विषय में अधोअंकित सुझाव दिए हैं—

1. सामान्य शिक्षा (General Education) की अवधि 10 वर्ष की होनी चाहिए और इसमें प्राथमिक एवं निम्न माध्यमिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

2. सामान्य शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व छात्रों को 1 से 3 वर्ष तक की पूर्व-विद्यालय (Pre-School) या पूर्व-प्राथमिक (Pre-Primary) शिक्षा दी जानी चाहिए।

3. प्राथमिक शिक्षा की अवधि 7 से 8 वर्ष की होनी चाहिए और इसको अग्रलिखित दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए —(i) 4 या 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा (Lower Primary Education), और (ii) 3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा (Higher Primary Education)।

4. निम्न माध्यमिक (Lower Secondary) शिक्षा की अवधि 2 या 3 वर्ष की होनी चाहिए।

5. निम्न माध्यमिक स्तर पर छात्रों को अग्रांकित दो प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए—(i) 2 या 3 वर्ष की सामान्य शिक्षा, और (ii) 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)।

6. उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary) शिक्षा की अवधि 2 या 3 वर्ष की होनी चाहिए।

7. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रों को अग्रांकित दो प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए—(i) 2 वर्ष की सामान्य शिक्षा, और (ii) 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा।

8. प्रथम सार्वजनिक बाह्य परीक्षा (First Public External Examination) 10 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा के पश्चात् होनी चाहिए।

9. कक्षा 1 में प्रवेश करने की आयु साधारणतः 6 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

10. 9वीं कक्षा से पृथक् विद्यालय स्थापित किये जाने की प्रचलित विधि का अन्त कर देना चाहिए।

11. 10वीं कक्षा तक छात्रों को किसी विषय में विशिष्टीकरण (Specialization) की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

12. माध्यमिक विद्यालय केवल अग्रांकित दो प्रकार के होने चाहिए—(i) हाईस्कूल और (ii) हायर सेकेण्डरी स्कूल। हाईस्कूलों में शिक्षा की अवधि 10 वर्ष की और हायर सेकेण्डरी स्कूलों में यह अवधि 12 वर्ष की होनी चाहिए।

(3) उच्च शिक्षा की नवीन संरचना : New Structure of Higher Education—"आयोग" ने उच्च शिक्षा की नवीन संरचना इस प्रकार प्रस्तुत की है—

2 या 3 वर्ष का अनुसन्धान
2 या 3 वर्ष का द्वितीय डिग्री-कोर्स
3 वर्ष का प्रथम डिग्री-कोर्स

(4) संरचना-सम्बन्धी सुझाव : Suggestions Regarding Structure—"आयोग" ने उच्च शिक्षा की नवीन संरचना के विषय में अग्रांकित सुझाव दिए हैं—

1. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् प्रथम डिग्री-कोर्स की अवधि कम-से-कम 3 वर्ष की होनी चाहिए।

2. द्वितीय डिग्री-कोर्स की अवधि 2 या 3 वर्ष की होनी चाहिए।

3. कुछ विश्वविद्यालयों में "ग्रेजुएट स्कूलों" (Graduate Schools) की सृष्टि की जानी चाहिए, जिनमें कुछ विशेष विषयों में 3 वर्ष के स्नातकोत्तर (Post-Graduate) कोर्स की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. उत्तर-प्रदेश में त्रिवर्षीय डिग्री-कोर्स (Three Year Degree Course) को कुछ विशिष्ट विषयों और विशिष्ट विश्वविद्यालयों में आरम्भ किया जाना चाहिए। अन्य विश्वविद्यालयों में यह कोर्स 15 से 20 वर्ष की अवधि में आरम्भ कर दिया जाना चाहिए।

(5) स्तरों का उन्नयन : Raising of Standards—"आयोग" ने शिक्षा के सब स्तरों का उन्नयन करने के लिए अधोलिखित सुझाव दिए हैं—

1. 10 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा में गुणात्मक उन्नति की जानी चाहिए, ताकि इस स्तर पर होने वाले अपव्यय (Wastage) में कमी की जा सके।

2. 10 वर्ष की अवधि में कक्षा 10 के स्तर का इतना उन्नयन कर दिया जाना चाहिए कि वह वर्तमान हायर सेकेण्डरी के स्तर पर पहुँच जाय।

3. विश्वविद्यालयों की उपाधियों के स्तरों का उन्नयन करने के लिए, इन उपाधियों के पाठ्यक्रमों में अधिक उन्नत विषय-वस्तु को स्थान दिया जाना चाहिए।

4. शिक्षा-स्तरों का उन्नयन करने के लिए, शिक्षा के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

5. "विद्यालय-संकुलों" (School Complexes) का यथाशीघ्र निर्माण किया जाना चाहिए। एक संकुल में एक माध्यमिक स्कूल और उसके निकटवर्ती सब प्राथमिक स्कूल होने चाहिए। प्रत्येक संकुल के सब स्कूलों द्वारा सामूहिक रूप से स्तरों के उन्नयन के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिये।

3. अध्यापक की स्थिति
(STATUS OF TEACHER)

अध्यापक की वर्तमान करुणाजनक स्थिति का "आयोग" के लगभग सभी सदस्यों को व्यक्तिगत अनुभव था। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि जब तक शिक्षक की स्थिति में समुन्नति नहीं की जायगी, तब तक सुयोग्य व्यक्ति—शिक्षण-व्यवसाय का आलिंगन नहीं करेंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर **"आयोग"** ने यह विचार लिपिबद्ध किया है—**"शिक्षकों की आर्थिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक स्थिति को समुन्नत बनाने और प्रतिभाशाली तरुण व्यक्तियों को शिक्षण-व्यवसाय के प्रति पुनः आकर्षित करने के लिए सघन एवं सतत प्रयासों की आवश्यकता है।"**

"Intensive and continuous efforts are necessary to raise the economic, social and professional status of teachers and to feed back talented young persons into the profession." —*Education Commission Report*, p. 617.

"आयोग" ने शिक्षक की स्थिति में सुधार करने के लिए जो विचार व्यक्त किए हैं, हम उनका क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा—

(1) वेतन : **Remuneration**—"आयोग" ने शिक्षकों के वेतन के विषय में अधोलिखित विचार प्रकट किए हैं—

1. भारत सरकार द्वारा विद्यालयों के शिक्षकों के न्यूनतम वेतनक्रम (Minimum Scales of Pay) निश्चित किए जाने चाहिए।

2. सरकारी और गैर-सरकारी—दोनों प्रकार के विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन-क्रमों में समानता के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों के अध्यापकों के वेतन-क्रमों में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए।

(2) **शिक्षकों के वेतन-क्रम : Scales of Pay of Teachers**—"आयोग" ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों और विभिन्न शैक्षिक योग्यताओं वाले शिक्षकों के लिए निम्नांकित वेतन-क्रमों की सिफारिश की है—

शिक्षक	वेतन व वेतन-क्रम
1. माध्यमिक कोर्स पास प्राथमिक विद्यालयों के अप्रशिक्षित शिक्षक	न्यूनतम वेतन 100 रु०
2. उक्त शिक्षकों का 5 वर्ष की सेवा के बाद	न्यूनतम वेतन 125 रु०
3. माध्यमिक कोर्स व 2 वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक	न्यूनतम वेतन 125 रु०
4. उक्त शिक्षकों का 5 वर्ष की सेवा के बाद	न्यूनतम वेतन 150 रु०
5. सेकेण्डरी कोर्स व 2 वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक	न्यूनतम वेतन 150 रु०
6. उक्त शिक्षकों का 20 वर्ष बाद	अधिकतम वेतन 250 रु०
7. श्रेणी (6) में से 15% चुने जाने वाले शिक्षक	230-300 रु०
8. 1 वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त ग्रेजुएट	न्यूनतम वेतन 220 रु०
9. उक्त शिक्षकों का 20 वर्ष बाद	400 रु०
10. श्रेणी (9) में से 15% चुने जाने वाले शिक्षक	400-500 रु०
11. अप्रशिक्षित ग्रेजुएट	न्यूनतम वेतन 220 रु०
12. अप्रशिक्षित स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त	300-600 रु०
13. प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद श्रेणी 11 व 12 के शिक्षक	जितना वेतन पा रहे हैं, उसमें एक वर्ष की वेतन-वृद्धि।
14. माध्यमिक स्कूलों के प्रधानाचार्य	इनका वेतन उनकी योग्यताओं एवं विद्यालय के आकार पर निर्भर होगा।
15. सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षक	इनको सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षकों के लिये निर्धारित कोई भी वेतन-क्रम दिया जा सकता है।
16. विश्वविद्यालय के शिक्षक	(i) लेक्चरार, जूनियर स्केल 300-25-600 रु० (ii) लेक्चरार, सीनियर स्केल 400-30-640-40-800 रु० (iii) सीनियर लेक्चरार या रीडर 700-40-1100 रु० (iv) प्रिंसीपल I 700-40-1100 रु० II 800-50-1500 रु० III 1000-50-1500 रु०
	(i) लेक्चरार 500-40-800-50-950 रु० (ii) रीडर 700-50-1200 रु० (iii) प्रोफेसर 1100-50-1300-60-1600 रु०

(3) **वेतन-क्रम-सम्बन्धी सुझाव : Suggestions Regarding Pay-Scales**—"आयोग" ने शिक्षकों के वेतन-क्रम के विषय में अधोलिखित सुझाव दिए हैं—

1. शिक्षकों को सरकारी कर्मचारियों के बराबर महँगाई-भत्ता दिया जाना चाहिए।

2. शिक्षकों के वेतन-क्रम प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् दोहराये जाने चाहिए।

3. शिक्षकों के वेतन-क्रमों के विषय में जो सुझाव दिए गये हैं, उन्हें तत्काल क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

4. वेतन-क्रमों को क्रियान्वित करने के साथ-साथ शिक्षकों की योग्यताओं एवं नियुक्ति की विधियों में सुधार किया जाना चाहिए।

(4) **कार्य व सेवा की दशाएँ : Conditions of Work & Service**—"आयोग" ने शिक्षकों के कार्य एवं सेवा की दशाओं में सुधार करने के लिए अधोलिखित सुझाव दिए हैं—

1. शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षकों को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए न्यूनतम सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

2. शिक्षक को अपनी व्यावसायिक उन्नति करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

3. शिक्षकों के अध्यापन-कार्य के घण्टों को निश्चित करते समय, उसके द्वारा किए जाने वाले अन्य कार्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

4. शिक्षकों को 5 वर्ष में कम-से-कम एक बार, देश के किसी स्थान में भ्रमण करने के लिए, उनके वेतन के अनुसार रियायती दर पर रेल के टिकट दिए जाने चाहिए।

5. सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की सेवा-दशाओं में समानता स्थापित की जानी चाहिए।

6. ग्रामों में कार्य करने वाले शिक्षकों को निवास-स्थान प्रदान किये जाने के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए।

7. शिक्षकों को बड़े नगरों के मकान के किराए के लिए भत्ता देने की प्रथा आरम्भ की जानी चाहिए।

8. शिक्षकों के लिए सरकारी गृह-निर्माण-योजनाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

9. शिक्षकों को सभी नागरिक अधिकारों का उपयोग करने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।

10. शिक्षकों में प्रचलित व्यक्तिगत ट्यूशनों की प्रथा को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

11. शिक्षकों पर किसी प्रकार के निर्वाचनों में भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

12. शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापिकाओं की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

13. अध्यापिकाओं के लिए "पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा" (Correspondence Courses) की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए।

14. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली अध्यापिकाओं को विशेष भत्ते दिये जाने चाहिए।

4. अध्यापक-शिक्षा
(TEACHER EDUCATION)

"आयोग" ने अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है—**"शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा का ठोस कार्यक्रम अनिवार्य है।"**

"A sound programme of professional education of teachers is essential for the qualitative improvement of education."

—*Education Commission Report*, p. 67.

अध्यापक-शिक्षा के उपर्युक्त महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, "आयोग" ने पहले अध्यापक-शिक्षा के दोषों का उल्लेख किया है और उसके बाद इस शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में अपने विचारों को लेखबद्ध किया है; यथा—

(1) अध्यापक-शिक्षा के दोष : Defects of Teacher Education—"आयोग" के मतानुसार, अध्यापक-शिक्षा के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं—

1. प्रशिक्षण-संस्थाओं का कार्य—निम्न या साधारण कोटि का है।

2. प्रशिक्षण-संस्थाओं में योग्य अध्यापकों का अभाव है।

3. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में नवीनता, सजीवता एवं वास्तविकता का प्रभाव है।

4. प्रशिक्षण-संस्थाओं द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण अधिकांश रूप में परम्परागत है।

5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में सिखाई जाने वाली शिक्षण-विधियाँ घिसी-पिटी हैं और शिक्षा के वर्तमान उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता नहीं देती हैं।

6. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं है।

7. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं और विश्वविद्यालय के साहित्यिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अध्यापक-शिक्षा के उपरिवर्णित दोषों का निराकरण करने के लिए, "आयोग" ने जो सुझाव दिये हैं, उनमें से निम्नांकित महत्त्वपूर्ण हैं—

(2) अध्यापक-शिक्षा की पृथकता का अन्त : Removal of Isolation of Teacher Education—"आयोग" का कथन है—**"अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, उसे एक ओर विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से और दूसरी ओर विद्यालय-जीवन एवं शिक्षा-सम्बन्धी नवीनतम विचारों के सम्पर्क में लाया जाना परम आवश्यक है।"** इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, "आयोग" ने अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं—

1. "शिक्षा" विषय को विश्वविद्यालयों के बी० ए० एवं एम० ए० के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

2. कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों में अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रमों के विकास, अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए "शिक्षा-विभागों" (School of Education) की सृष्टि की जानी चाहिए।

3. सब प्रशिक्षण-संस्थाओं में "प्रसार-सेवा-विभाग" (Extension Service Department) का निर्माण किया जाना चाहिए।

4. प्रशिक्षण-काल में अध्यापकों के शिक्षण-अभ्यास के लिए केवल मान्यता प्राप्त स्कूलों का ही चयन किया जाना चाहिए।

5. प्रशिक्षण-संस्थाओं एवं उनसे सम्बद्ध शिक्षण अभ्यास (Teaching Practice) के स्कूलों के अध्यापकों को समय-समय पर एक-दूसरे के स्थान पर कार्य करना चाहिए।

6. विभिन्न प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं की पृथकता का अन्त करने के लिए, सबको "ट्रेनिंग कॉलेजों" की संज्ञा दी जानी चाहिए और उनको अपने क्षेत्रों के विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

7. सब राज्यों में "कॉम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों" (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जानी चाहिए और उनमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

8. प्रत्येक राज्य में "अध्यापक-शिक्षा की राज्य-परिषद्" (State Board of Teacher Education) का निर्माण किया जाना चाहिये, जिस पर सब क्षेत्रों एवं स्तरों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

(3) **व्यावसायिक शिक्षा की उन्नति** : Improvement in Professional Education—"आयोग" ने अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने के लिए निम्नांकित सिफारिशें की हैं—

1. शिक्षण के अभ्यास में गुणात्मक उन्नति करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

2. छात्राध्यापकों के लिए विशिष्ट कार्यक्रमों एवं पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाना चाहिए।

3. अध्यापक-शिक्षा के सब स्तरों पर कार्यक्रमों एवं पाठ्यक्रमों को उन आधारभूत उद्देश्यों को ध्यान में रखकर दोहराया जाना चाहिए जिनके लिए छात्राध्यापकों को तैयार किया जा रहा है।

4. सब प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों की शिक्षा एवं विषय-सामग्री में इस प्रकार रूपान्तर किया जाना चाहिए जिससे छात्राध्यापकों को विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों के उद्देश्यों, प्रयोजन एवं जटिलताओं का समुचित ज्ञान प्राप्त हो जाय।

5. विश्वविद्यालयों में सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा के एकीकृत (Integrated) पाठ्यक्रम प्रचलित किए जाने चाहिए।

(4) **प्रशिक्षण की अवधि : Period of Training**—"आयोग" के विभिन्न प्रशिक्षण-स्तरों की अवधि के विषय में अधोलिखित विचार अंकित किए हैं—

1. प्राथमिक विद्यालयों के उन अध्यापकों के लिए, जिन्होंने सेकेण्डरी स्कूल कोर्स पास किया है, प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की होनी चाहिए।

2. माध्यमिक विद्यालयों के उन अध्यापकों के लिए, जो स्नातक हैं, प्रशिक्षण की अवधि अभी तो 1 वर्ष की होनी चाहिए, पर कुछ समय के पश्चात् 2 वर्ष की कर दी जानी चाहिए।

3. शिक्षा में स्नातकोत्तर (M. Ed.) पाठ्यक्रम की अवधि 1½ वर्ष की होनी चाहिए।

(5) **प्रशिक्षण-संस्थाओं की उन्नति : Improvement in Training Institutions**—"आयोग" ने प्रशिक्षण-संस्थाओं की गुणात्मक उन्नति करने के लिए अग्रांकित सिफारिशें की हैं—

1. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों के पास शिक्षा की उपाधि (Degree in Education) के अतिरिक्त दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ (Post Graduate Degrees) होनी चाहिए।

2. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों में "डाक्टर" (Doctorate) की उपाधियों वाले शिक्षकों की संख्या उचित अनुपात में होनी चाहिए।

3. गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र ऐसे विषयों को शिक्षा देने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए, चाहे उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त न किया हो।

4. प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से एक प्रयोगात्मक (Experimental) विद्यालय संलग्न होना चाहिए।

5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको ऋण एवं छात्रवृत्तियों के रूप में आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

6. वर्तमान प्रशिक्षण-संस्थाओं के पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि में सुधार किया जाना चाहिए, क्योंकि उनकी दशा अत्यधिक असन्तोषजनक है।

7. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिये केन्द्रीय स्थानों पर "ग्रीष्मकालीन संस्थाओं" (Summer Institutes) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

8. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं के अध्यापकों के पास या तो "शिक्षा" में एम० ए० (M. A. in Education) की उपाधि होनी चाहिए, या बी० एड० (B. Ed.) की उपाधि के साथ-साथ कोई स्नातकोत्तर (M. A., M. Sc.) उपाधि होनी चाहिए।

(6) **प्रशिक्षण-सुविधाओं का विस्तार : Expansion of Training Facilities**—"आयोग" ने प्रशिक्षण-सुविधाओं का विस्तार करने के उद्देश्य से निम्नांकित विचार व्यक्त किये हैं—

1. प्रशिक्षण-संस्थाओं के आकार में एक निश्चित योजना के अनुसार पर्याप्त विस्तार किया जाना चाहिए।

2. पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा एवं अल्पकालीन प्रशिक्षण की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए।

3. शिक्षकों की माँग की पूर्ति करने और शिक्षण-कार्य में संलग्न अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रत्येक राज्य को प्रशिक्षण की सुविधाओं में विस्तार करने के लिए योजना तैयार करनी चाहिए।

4. विद्यालय-शिक्षकों को अध्यापन-कार्य करते हुए शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधायें प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालयों तथा प्रशिक्षण-संस्थाओं को विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

5. छात्र-संख्या व जनबल
(ENROLMENT & MANPOWER)

"आयोग" ने "छात्र-संख्या एवं जनबल" के अन्तर्गत 2 मुख्य विषयों पर विचार किया है—छात्र-संख्या की राष्ट्रीय नीति और माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की छात्र-संख्या-सम्बन्धी नीतियाँ। हम निम्नांकित पंक्तियों में इनका वर्णन कर रहे हैं; यथा—

(1) **छात्र-संख्या की राष्ट्रीय नीति : National Enrolment Policy**—**"आयोग" का कथन है—आगामी बीस वर्षों में छात्र-संख्या से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति से सामान्य रूप से निम्नलिखित लक्ष्य होने चाहिए—**

1. प्रत्येक बालक एवं बालिका को कम-से-कम 7 वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देना।

2. निम्न माध्यमिक शिक्षा का अधिक-से-अधिक सम्भव विस्तार करना।

3. इच्छुक एवं योग्य व्यक्तियों के लिए उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रबन्ध करना।

4. उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा को प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग के अनुरूप बनाना।

5. उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा के आवश्यक स्तरों को यथावत् बनाए रखना।

6. उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने के लिए निर्धन छात्रों को पर्याप्त आर्थिक सहायता देना।

7. व्यावसायिक, प्राविधिक एवं जीविका-सम्बन्धी शिक्षा (Professional, Technical & Vocational Education) के विस्तार पर बल देना।

8. कृषि एवं उद्योगों की उन्नति के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों को तैयार करना।

9. प्रतिभाशाली छात्रों का चयन करके, उनको अपनी सब शक्तियों का पूर्ण विकास करने में सहायता देना।

10. जनसाधारण की निरक्षरता का उन्मूलन करना।

11. वयस्क-शिक्षा एवं अनवरत शिक्षा (Continuation Education) के उपयुक्त कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।

12. शैक्षिक अवसरों में समानता स्थापित करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना।

(2) माध्यमिक व उच्च शिक्षा में छात्र-सम्बन्धी नीतियाँ : Enrolment Policies in Secondary & Higher Education—इन नीतियों का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि "आयोग" के निम्नांकित विचारों से विदित हो जायगा, छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ को रोकना है—

1. उत्तर-प्राथमिक शिक्षा (Post-Primary Education) में छात्र-संख्या-सम्बन्धी नीति को अग्रांकित 3 तथ्यों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए—(i) माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के लिए जनता की माँग, (ii) छात्रों की सब जन्मजात योग्यताओं का पूर्ण विकास; (iii) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उत्तम शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था करने की समाज की क्षमता, और (iv) जनबल की आवश्यकताएँ।

2. प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में मानसिक एवं उच्च शिक्षा के लिए जनता की माँग में अत्यधिक वृद्धि हुई है और भविष्य में होती रहेगी। शिक्षा की इस बढ़ती हुई माँग को पूर्ण करने के लिए शिक्षकों, धन या शिक्षण-सामग्री को जुटाना देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए असम्भव है। अतः हायर सेकेण्डरी स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक छात्रों के सम्बन्ध में "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" (Policy of Selective Admissions) की नीति का अनुसरण किया जाना आवश्यक है।

3. समस्त योग्य छात्रों को माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में धनी समाज भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। कम-से-कम निकट भविष्य में भारत द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। हमें इस लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए। पर जब तक हम ऐसा न कर सकें, तब तक हमारी छात्र-संख्या-सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य यह होना चाहिए—माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वाले प्रतिभाशाली छात्रों में से 5 से 15 प्रतिशत को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दी जानी चाहिए और इन छात्रों को आर्थिक कठिनाइयों का समाधान करने के लिए इनको उदारतापूर्वक छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

4. पिछले समय में धन, योग्य शिक्षकों, शिक्षण-सामग्री आदि के अभाव के प्रति ध्यान न देकर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से किया गया है। परिणामस्वरूप, शिक्षा का स्तर गिर गया है। अतः देश के हित को ध्यान में रखकर भविष्य में इस नीति का अनुसरण नहीं किया जाना चाहिए।

5. भविष्य में शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार—शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार मिलने के अवसरों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

6. शैक्षिक अवसरों की समानता
(EQUALIZAITON OF EDUCATIONAL OPPORTUNITIES)

"आयोग" के शब्दों में—"शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य—शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों में समानता स्थापित करना है, ताकि पिछड़े हुए या कम अधिकारों वाले वर्ग एवं व्यक्ति अपनी दशा में सुधार करने के लिए शिक्षा को साधन के रूप में प्रयोग कर सकें।"

"One of the important social objectives of education is to equalize opportunity enabling the backward or underprivileged classes and individuals to use education as a lever for the improvement of their condition."

—*Education Commission Report*, p. 108.

"आयोग" ने शिक्षा के क्षेत्र में दो मुख्य प्रकार की व्यापक असमानताएँ बताई हैं—(i) शिक्षा के सब पक्षों एवं स्तरों पर बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में व्यापक असमानता, और (ii) उन्नत वर्गों, पिछड़े वर्गों, अछूत जातियों, पहाड़ी जातियों एवं आदिवासियों की शिक्षा मे व्यापक असमानता। इन दोनों प्रकार की असमानताओं को दूर करने के लिए, "आयोग" ने 4 सुझाव दिये हैं—(1) निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, (2) शिक्षा के खर्चों में कमी, (3) छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, और (4) छात्रवृत्तियों की योजना। हम इन चारों सुझावों से सम्बन्धित "आयोग" के विचारों को लिपिबद्ध कर रहे हैं, यथा—

(1) निःशुल्क शिक्षा : Free Education—"आयोग" ने निःशुल्क शिक्षा के सम्बन्ध में अधोलिखित विचार व्यक्त किये हैं—

1. चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त से प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क कर दिया जाना चाहिए।

2. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक या उससे पूर्व निम्न माध्यमिक शिक्षा को निःशुल्क कर दिया जाना चाहिए।

3. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त से 10 वर्ष की अवधि में उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय शिक्षा को योग्य एवं निर्धन छात्रों के लिए निःशुल्क कर दिया जाना चाहिए।

(2) शिक्षा के खर्चों में कमी : Reduction in Costs of Education—"आयोग" ने शिक्षा के खर्चों में कमी करने के लिये निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

1. प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें एवं लेखन-सामग्री मुफ्त दी जानी चाहिए।

2. माध्यमिक विद्यालयों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में "पुस्तक-गृहों" (Book-Banks) की व्यवस्था की जानी चाहिए, जहाँ से छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें दी जानी चाहिए।

3. माध्यमिक विद्यालयों एवं उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पुस्तकालयों में पाठ्य-पुस्तकें पर्याप्त संख्या में होनी चाहिए, ताकि छात्र उनका प्रयोग कर सकें।

4. योग्य छात्रों को पाठ्य-पुस्तकों एवं अन्य आवश्यक पुस्तकों को खरीदने के लिए आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

(3) छात्रवृत्तियों की व्यवस्था : Provision for Scholarships—"आयोग" ने छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में निम्नांकित विचार लिपिबद्ध किए हैं—

1. निम्न प्राथमिक स्तर के उपरान्त शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम को संगठित किया जाना चाहिए।

2. जब छात्र—शिक्षा के एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुँचे, तब इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई निर्धन पर योग्य विद्यार्थी—छात्रवृत्ति न मिल सकने के कारण अपनी भावी शिक्षा से वंचित न रह जाय।

3. उच्चतर प्राथमिक स्तर पर सन् 1975-76 तक 2·5 प्रतिशत प्रतिभाशाली छात्रों को और सन् 1985-86 तक 5 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

4. माध्यमिक स्तर पर 15 प्रतिशत प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

5. पूर्व-स्नातक-स्तर पर सन् 1975-76 तक 15 प्रतिशत योग्य छात्रों को और सन् 1985-86 तक 25 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

6. स्नातकोत्तर-स्तर पर सन् 1975-76 तक 25 प्रतिशत छात्रों को और सन् 1985-86 तक 50 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

7. विश्वविद्यालय-स्तर पर दो प्रकार की छात्रवृत्तियों की व्यवस्थाा की जानी चाहिए—(i) छात्रावासों में रहकर कॉलेज या विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए। इन छात्रों को छात्रवृत्तियों के रूप में इतना धन दिया जाना चाहिए, जिससे शिक्षा से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यय की पूर्ति हो जाय। (ii) अपने घरों पर रहकर अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए। इन छात्रों को केवल इतनी आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, जिससे अधिकांश प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यय की पूर्ति हो जाय।

(4) छात्रवृत्तियों की योजनाएँ : Schemes of Scholarships—"आयोग" ने छात्रवृत्तियों की अनेक प्रकार की योजनाओं के बारे में अपने विचार अंकित किए हैं; यथा—

1. राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों (National Scholarships) की योजना का विस्तार एवं विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।

2. राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों की योजना की पूर्ति करने के लिए "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" द्वारा "विश्वविद्यालय-छात्रवृत्तियों" (University Scholarships) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

3. व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों से विद्यालय-स्तर पर 30 प्रतिशत को एवं कॉलेज-स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

4. ऋण-छात्रवृत्तियों (Loan Scholarships) की योजना को कुछ सीमा तक सामान्य शिक्षा प्राप्त करने वाले योग्य छात्रों के लिए क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

5. उक्त योजना को विज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने वाले सब छात्रों के लिए अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए।

6. असाधारण प्रतिभा के विद्यार्थियों को विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रतिवर्ष 500 छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

7. छात्रवृत्तियों पर किये जाने वाले व्यय को कम करने के लिए विद्यार्थियों को आवागमन एवं अध्ययन-काल में धनोपार्जन की सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

7. विद्यालय-शिक्षा का विस्तार
(EXPANSION OF SCHOOL EDUCATION)

"आयोग" की धारणा है कि यद्यपि पिछले समय में विद्यालय-शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हुआ है, तथापि देश की आवश्यकताओं को पूर्ण न कर सकने के कारण, उसको सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है। अपनी इस धारणा के फलस्वरूप "आयोग" ने विद्यालय-शिक्षा के विभिन्न अंगों के विस्तार के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं और सुझाव भी दिए हैं। हम इनका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत उपस्थित कर रहे हैं; यथा—

(1) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Pre-Primary Education—"आयोग" ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. प्रत्येक राज्य के "राज्य-शिक्षा-संस्थान" (State Institute of Education) में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए राज्य-स्तर पर केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए।

2. प्रत्येक जिले में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए एक केन्द्र की सृष्टि की जानी चाहिए। इस केन्द्र के मुख्य कार्य अग्रांकित होने चाहिए—(i) पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, (ii) इन विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों के अध्यापक का निरीक्षण करना और इन शिक्षकों के लिए "अभिनव-पाठ्यक्रमों" (Refresher Courses) का संचालन करना।

3. व्यक्तिगत प्रबन्धकों को उदार आर्थिक सहायता देकर, पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन करने के लिए प्रेरणा दी जानी चाहिए।

4. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में परीक्षण-कार्य (Experimentation) को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, ताकि इस शिक्षा के विस्तार के लिए कम खर्चीले उपायों की खोज की जा सके।

5. पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के कार्यक्रमों में ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा (Sensorial Education) के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए।

6. शिशुओं के "खेल-केन्द्रों" (Play Centres) को प्राथमिक विद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

(2) प्राथमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Primary Education—"आयोग" ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए अग्रांकित सुझाव दिए हैं—

1. सन् 1975-76 तक देश के सब बच्चों के लिए 5 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. सन् 1985-86 तक देश के सब बच्चों के लिए 7 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की योजना पूर्ण कर दी जानी चाहिए और भारतीय संविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य की प्राप्ति हो जानी चाहिए।

3. अपव्यय व अवरोधन (Wastage & Stagnation) को अधिक-से-अधिक कम करने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।

4. जो बालक कक्षा 7 पास करने के समय 14 वर्ष के न हों और अपनी सामान्य शिक्षा के क्रम को जारी न रखना चाहते हों, उनको इस आयु तक उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

5. प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना इस प्रकार की जानी चाहिए कि लोअर प्राइमरी स्कूल और अपर प्राइमरी स्कूल किसी बालक के घर से क्रमशः 1 और 3 मील से अधिक दूर न हों।

6. जो बालक निम्न प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आगे अध्ययन न करना चाहते हों, उनके लिए अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(3) माध्यमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Secondary Education—"आयोग" का मत है कि धनाभाव के कारण कुछ वर्षों तक माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमिक बनाया जाना सम्भव नहीं है। अतः माध्यमिक शिक्षा का विस्तार निम्नांकित उपायों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए—

1. माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या को शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण (Vocationalization) इस प्रकार किया जाना चाहिए कि निम्न माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत छात्रों को एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जा सके।

3. माध्यमिक शिक्षा के अवसरों की समानता स्थापित की जानी चाहिए।

4. बालिकाओं, जनजातियों एवं अछूत जातियों में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।

5. प्रत्येक जिले में माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के लिए योजनाएँ तैयार की जानी चाहिए और उनको 10 वर्ष की अवधि में पूर्णरूप से क्रियान्वित कर दिया जाना चाहिए।

6. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययन करने के लिए केवल योग्य छात्रों का ही चयन किया जाना चाहिए।

7. निम्न एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर छात्रों की पूर्णकालीन एवं अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

8. बालिकाओं की शिक्षा का विस्तार करने के लिए आगामी 20 वर्षों में ठोस कदम उठाए जाने चाहिए।

(4) माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण : Vocationalization Secondary Education—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण पर विशेष बल दिया है और इसका कारण बताते हुए लिखा है—**"माध्यमिक स्कूल के स्तर पर शिक्षा का व्यवसायीकरण करके, शिक्षा और उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।"**

"The link between education and productivity can be forged through vocationalization of education at the secondary school level."

—*Education Commission Report*, p. 6.

"आयोग" ने अपने विचार को ध्यान में रखते हुए, पहले व्यावसायिक शिक्षा के विषय में सामान्य सुझाव दिए हैं, और उसके बाद निम्न एवं उच्च माध्यमिक स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं; यथा—

(i) सामान्य सुझाव : General Suggestions—"आयोग" ने व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. माध्यमिक शिक्षा का विशेष रूप से अधिक-से-अधिक व्यवसायीकरण किया जाना चाहिए।

2. उद्योगों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग की पूर्ति करने के लिए माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाना चाहिए।

3. निम्न एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर पूर्णकालीन एवं अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. माध्यमिक विद्यालयों को व्यावसायिक बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य-सरकारों को विशेष अनुदान दिए जाने चाहिए।

5. बालिकाओं को व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त की जानी चाहिए।

(ii) निम्न माध्यमिक स्तर : Lower Secondary Stage—"आयोग" ने निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित सिफारिशें की हैं—

1. निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् 1986 तक इस स्तर की सम्पूर्ण छात्र-संख्या की लगभग 20 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए।

2. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं (Industrial Training Institutes) में प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्र प्रवेश कर सकते हैं। इस समय इन संस्थाओं में प्रवेश करने की आयु 15 वर्ष है। इस प्रवेश-आयु को कम करके 14 वर्ष कर दिया जाना चाहिए, ताकि प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को इन संस्थाओं में प्रवेश करने के लिए 1 वर्ष तक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

3. टेकनिकल स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले "अन्तिम पाठ्यक्रमों" (Terminal Courses) में विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि छात्रों को विभिन्न उद्योगों के लिए प्रशिक्षण प्राप्त हो सके।

4. कुछ छात्र 7वीं या 8वीं कक्षा के बाद अपने पारिवारिक व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए या कोई छोटा-मोटा निजी-कारोबार करने के लिए विद्यालयों को छोड़ देते हैं। ऐसे छात्रों के लिए विविध प्रकार की अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक बालक अपने परिवारों के कृषि-सम्बन्धी कार्यों में सहयोग देने के लिए प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसे बालकों के लिए कृषि-सम्बन्धी पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

2. सन् 1985-86 तक देश के सब बच्चों के लिए 7 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की योजना पूर्ण कर दी जानी चाहिए और भारतीय संविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य की प्राप्ति हो जानी चाहिए।

3. अपव्यय व अवरोधन (Wastage & Stagnation) को अधिक-से-अधिक कम करने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।

4. जो बालक कक्षा 7 पास करने के समय 14 वर्ष के न हों और अपनी सामान्य शिक्षा के क्रम को जारी न रखना चाहते हों, उनको इस आयु तक उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

5. प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना इस प्रकार की जानी चाहिए कि लोअर प्राइमरी स्कूल और अपर प्राइमरी स्कूल किसी बालक के घर से क्रमशः 1 और 3 मील से अधिक दूर न हों।

6. जो बालक निम्न प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आगे अध्ययन न करना चाहते हों, उनके लिए अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(3) माध्यमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Secondary Education—"आयोग" का मत है कि धनाभाव के कारण कुछ वर्षों तक माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमिक बनाया जाना सम्भव नहीं है। अतः माध्यमिक शिक्षा का विस्तार निम्नांकित उपायों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए—

1. माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या को शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण (Vocationalization) इस प्रकार किया जाना चाहिए कि निम्न माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत छात्रों को एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जा सके।

3. माध्यमिक शिक्षा के अवसरों की समानता स्थापित की जानी चाहिए।

4. बालिकाओं, जनजातियों एवं अछूत जातियों में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।

5. प्रत्येक जिले में माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के लिए योजनाएँ तैयार की जानी चाहिए और उनको 10 वर्ष की अवधि में पूर्णरूप से क्रियान्वित कर दिया जाना चाहिए।

6. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययन करने के लिए केवल योग्य छात्रों का ही चयन किया जाना चाहिए।

7. निम्न एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर छात्रों की पूर्णकालीन एवं अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

8. बालिकाओं की शिक्षा का विस्तार करने के लिए आगामी 20 वर्षों में ठोस कदम उठाए जाने चाहिए।

(4) माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण : Vocationalization Secondary Education—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण पर विशेष बल दिया है और इसका कारण बताते हुए लिखा है—**"माध्यमिक स्कूल के स्तर पर शिक्षा का व्यवसायीकरण करके, शिक्षा और उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।"**

"The link between education and productivity can be forged through vocationalization of education at the secondary school level."

—*Education Commission Report*, p. 6.

"आयोग" ने अपने विचार को ध्यान में रखते हुए, पहले व्यावसायिक शिक्षा के विषय में सामान्य सुझाव दिए हैं, और उसके बाद निम्न एवं उच्च माध्यमिक स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं; यथा—

(i) सामान्य सुझाव : General Suggestions—"आयोग" ने व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. माध्यमिक शिक्षा का विशेष रूप से अधिक-से-अधिक व्यवसायीकरण किया जाना चाहिए।

2. उद्योगों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग की पूर्ति करने के लिए माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाना चाहिए।

3. निम्न एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर पूर्णकालीन एवं अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. माध्यमिक विद्यालयों को व्यावसायिक बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य-सरकारों को विशेष अनुदान दिए जाने चाहिए।

5. बालिकाओं को व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त की जानी चाहिए।

(ii) निम्न माध्यमिक स्तर : Lower Secondary Stage—"आयोग" ने निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित सिफारिशें की हैं—

1. निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् 1986 तक इस स्तर की सम्पूर्ण छात्र-संख्या की लगभग 20 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए।

2. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं (Industrial Training Institutes) में प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्र प्रवेश कर सकते हैं। इस समय इन संस्थाओं में प्रवेश करने की आयु 15 वर्ष है। इस प्रवेश-आयु को कम करके 14 वर्ष कर दिया जाना चाहिए, ताकि प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को इन संस्थाओं में प्रवेश करने के लिए 1 वर्ष तक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

3. टेकनिकल स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले "अन्तिम पाठ्यक्रमों" (Terminal Courses) में विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि छात्रों को विभिन्न उद्योगों के लिए प्रशिक्षण प्राप्त हो सके।

4. कुछ छात्र 7वीं या 8वीं कक्षा के बाद अपने पारिवारिक व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए या कोई छोटा-मोटा निजी-कारोबार करने के लिए विद्यालयों को छोड़ देते हैं। ऐसे छात्रों के लिए विविध प्रकार की अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक बालक अपने परिवारों के कृषि-सम्बन्धी कार्यों में सहयोग देने के लिए प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसे बालकों के लिए कृषि-सम्बन्धी पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

6. प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व या कुछ समय पश्चात् अनेक बालिकाओं में विवाह हो जाते हैं। ऐसी बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान एवं सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(iii) उच्चतर माध्यमिक स्तर : Higher Secondary Stage—"आयोग" ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के विषय में नीचे लिखी सिफारिशें की हैं—

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् 1986 तक इस स्तर की सम्पूर्ण छात्र-संख्या की लगभग 50 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए।

2. पॉलिटेकनीकों (Polytechnics) में विभिन्न विषयों के पूर्णकालीन पाठ्यक्रमों की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए।

3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित पूर्णकालीन और अल्पकालीन शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिए।

4. विभिन्न उद्योगों में कार्य करने वाले जो व्यक्ति व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, उन्हें अवकाश दिया जाना चाहिए और उनके लिए "पत्राचार पाठ्यक्रमों" (Correspondence Courses) का कार्यक्रम आरम्भ किया जाना चाहिए।

5. कृषि एवं इञ्जीनियरिंग के कार्यों में संलग्न उन व्यक्तियों के लिए जो अपने ज्ञान का नवीनीकरण करना चाहते हैं, कृषि और इञ्जीनियरिंग के पॉलिटेकनीकों में 'संक्षिप्त सघन-पाठ्यक्रमों' (Short Condensed Courses) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

6. कुछ औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाएँ ऐसी हैं, जिनमें 10वीं कक्षा पास करने के बाद ही बालकों का प्रवेश होता है। इन संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में अति तीव्र गति से विस्तार किया जाना चाहिए।

7. स्वास्थ्य, वाणिज्य, प्रशासन, लघु-उद्योगों आदि से सम्बन्धित 6 माह से 3 वर्ष तक के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. विद्यालय-पाठ्यक्रम
(SCHOOL CURRICULUM)

"आयोग" का मत है कि विद्यालय-पाठ्यक्रम में अनेक दोषों का समावेश हो गया है। इन दोषों को दूर करने और पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए, "आयोग" ने विभिन्न कक्षाओं के लिए जो पाठ्यक्रम निर्धारित किए हैं, उनका वर्णन द्रष्टव्य है—

1. निम्न प्राथमिक स्तर : Lower Primary Stage : Classes I to IV

1. एक भाषा—मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा (Mother Tongue or Regional Language), 2. गणित (Mathematics), 3. वातावरण का अध्ययन (Study of Environment)—कक्षा 3 और 4 में विज्ञान एवं सामाजिक अध्ययन की शिक्षा, 4. सृजनात्मक क्रियाएँ (Creative Activities), 5. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा (Work Experience & Social Service), 6. स्वास्थ्य-शिक्षा (Health Education)।

2. उच्चतर प्राथमिक स्तर : Higher Primary Stage : Classes V to VII

1. दो भाषाएँ—(अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ब) हिन्दी या अंग्रेज़ी, 2. गणित, 3. विज्ञान, 4. सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल एवं नागरिकशास्त्र), 5. कला (Art), 6. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा, 7. शारीरिक शिक्षा (Physical Education), 8. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा (Education in Moral & Spiritual Values)।

3. निम्न माध्यमिक स्तर : Lower Secondary Stage : Classes VIII to X

1. तीन भाषाएँ—अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में सामान्य रूप से निम्नांकित भाषाएँ होनी चाहिए : (अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ब) उच्च या निम्न स्तर की हिन्दी, (स) उच्च या निम्न स्तर की अंग्रेजी। हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में सामान्य रूप से निम्नांकित भाषाएँ होनी चाहिए : (अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ब) अंग्रेजी (या हिन्दी, यदि अंग्रेजी मातृभाषा के रूप में ली गई है), (स) हिंन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा, 2. गणित, 3. विज्ञान, 4. इतिहास, भूगोल तथा नागरिकशास्त्र, 5. कला, 6. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा, 7. शारीरिक शिक्षा, 8. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

4. उच्चतर माध्यमिक स्तर : Higher Secondary Stage : Classes XI & XII

1. कोई दो भाषाएँ—जिसमें कोई आधुनिक भारतीय भाषा, कोई आधुनिक विदेशी भाषा एवं कोई शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हों, 2. निम्नलिखित में से कोई तीन विषय : (i) एक अतिरिक्त भाषा, (ii) इतिहास, (iii) भूगोल, (iv) अर्थशास्त्र, (v) तर्कशास्त्र (Logic), (vi) मनोविज्ञान, (vii) समाजशास्त्र, (viii) कला, (ix) भौतिकशास्त्र, (x) रसायनशास्त्र, (xi) गणित, (xii) जीव-विज्ञान, (xiii) भूगर्भशास्त्र (Geology), (xiv) गृह-विज्ञान (Home Science), 3. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा, 4. शारीरिक शिक्षा, 5. कला या शिल्प (Art or Craft), 6. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

5. त्रिभाषा-सूत्र में संशोधन : Amendment in the Three-Language Formula

त्रिभाषा-सूत्र के सम्बन्ध में "आयोग" ने लिखा है—यह फार्मूला सन् 1956 में "केन्द्रीय-शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) के द्वारा प्रतिपादित किया गया था और सन् 1961 में मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन में स्वीकार किया गया था। किन्तु व्यावहारिक रूप में इस फार्मूले को सफलता प्राप्त नहीं हुई है और इसका यह कहकर घोर विरोध किया जा रहा है कि इसने पाठ्यक्रम को भाषाओं की दृष्टि से बहुत बोझिल बना दिया है। अतः इस सूत्र में संशोधन किया जाना अनिवार्य है। यह संशोधन अधोलिखित सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए—

1. संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी—मातृभाषा के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे।

2. छात्रों के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान उपयोगी है।

3. तीन भाषाओं की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त स्तर—निम्नतर माध्यमिक है।

4. हिन्दी या अंग्रेजी की शिक्षा उस समय आरम्भ की जाय, जब इनके लिए प्रेरणा या आवश्यकता का अनुभव किया जाय।

5. किसी भी स्तर पर चार भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य न बनाया जाय।

"आयोग" ने उपरिअंकित सिद्धान्तों के आधार पर त्रिभाषा-सूत्र का संशोधित रूप इस प्रकार प्रस्तावित किया है—

(i) मातृभाषा या क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषा।

(ii) संघ की राजभाषा या सह-राजभाषा (जिस समय तक वह है)।

(iii) एक आधुनिक भारतीय भाषा या यूरोपीय भाषा, छात्र ने पाठ्यक्रम में से चुनी न हो और जो शिक्षा का माध्यम न हो।

6. भाषाओं का अध्ययन : Study of Languages

"आयोग" ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर भाषाओं के अध्ययन के विषय में निम्नांकित विचार लिपिबद्ध किए हैं—

1. निम्न प्राथमिक स्तर पर छात्रों को साधारणतः एक भाषा का अध्ययन करना चाहिए। यह भाषा—मातृभाषा या क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषा होनी चाहिए।

2. उच्चतर प्राथमिक स्तर पर छात्रों को दो भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए। ये भाषाएँ—मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा और उनके राज्य की राजभाषा यह सह-राजभाषा होनी चाहिए।

3. निम्न माध्यमिक स्तर पर छात्रों की तीन भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए। वे भाषाएँ—मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, राजभाषा या सह-राजभाषा और एक आधुनिक भारतीय भाषा होनी चाहिए।

4. प्रत्येक राज्य के कुछ चुने हुए विद्यालयों में अंग्रेज़ी के अलावा अन्य विदेशी भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए और छात्रों को उन्हें अंग्रेजी या हिन्दी के बजाय अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

5. अहिन्दी क्षेत्रों के कुछ चुने हुए विद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए और छात्रों को उन्हें अंग्रेजी या हिन्दी के बजाय अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

6. उच्च शिक्षा की संस्थाओं में छात्रों के लिए किसी भी भाषा का अध्ययन अनिवार्य नहीं होना चाहिए।

7. हिन्दी के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए सम्पूर्ण देश के विभिन्न स्थानों में कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए, पर किसी को हिन्दी का अध्ययन करने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए।

8. अंग्रेजी की शिक्षा 5वीं कक्षा से पहले आरम्भ नहीं होनी चाहिए।

9. संस्कृत या अरबी के समान शास्त्रीय भाषाओं की शिक्षा 8वीं कक्षा से आरम्भ होनी चाहिए, पर इन भाषाओं को वैकल्पिक विषयों में स्थान दिया जाना चाहिए।

10. शास्त्रीय भाषाओं के अध्ययन के लिए उच्च शिक्षा के केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।

9. शिक्षण-विधियाँ, निर्देशन व मूल्यांकन
(TEACHING METHODS, GUIDANCE & EVALUATION)

"आयोग" ने विद्यालयों में शिक्षण-विधियों, पाठ्य-पुस्तकों, निर्देशन एवं मूल्यांकन के विषय में अत्यन्त सारगर्भित विचार वाक्यबद्ध किए हैं। हम आपके समक्ष इनका वर्णन उपस्थित कर रहे हैं, यथा—

(1) शिक्षण-विधियों में सुधार : Improvement in Teaching Methods—"आयोग" के मतानुसार, हमारे विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण-विधियाँ अब भी प्राचीन तथा परम्परागत हैं। अतः वे छात्रों की दृष्टि से तनिक भी लाभप्रद नहीं हैं। उनमें सुधार करने के लिए, "आयोग" ने अनेक उपयोगी सुझाव दिए हैं; यथा—

1. शिक्षण-विधियों में लचीलेपन एवं गतिशीलता के गुणों का समावेश किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए स्वयं शिक्षकों को व्यक्तिगत रूप से कदम उठाने चाहिए।

2. शिक्षा-संस्थाओं के प्रधानाचार्यों एवं शिक्षा के अधिकारियों को शिक्षण-विधियों में सुधार करने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

3. शिक्षण-विधियों में गतिशीलता का समावेश करने के लिए अध्यापकों में परीक्षण, पहलकदमी एवं सृजनात्मकता के गुणों का विकास किया जाना चाहिए।

4. नवीन शिक्षण-विधियों का प्रसार करने के लिए प्रदर्शनों, वर्कशॉपों, परीक्षणों, सेमीनारों एवं अभिनवन-पाठ्यक्रमों के कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए।

5. शिक्षण-विधियों में अनुसन्धान-कार्य की उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

(2) पाठ्य-पुस्तकों में सुधार : Improvements in Text-Books—**"आयोग" का कथन है—"उत्तम पाठ्य-पुस्तकें—शिक्षण-स्तर के उन्नयन में अतिशय योग देती हैं।"**

"आयोग" ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि हमारे देश के विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य-पुस्तकें अत्यन्त निम्न कोटि की हैं। अतः "आयोग" ने उनमें सुधार करने के लिए निम्नांकित विचारों की अभिव्यक्ति की है—

1. पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक योजना का निर्माण किया जाना चाहिए।

2. पाठ्य-पुस्तकों को "राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण-परिषद्" (NCERT) के द्वारा निर्धारित किए गए सिद्धान्तों के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए।

3. पाठ्य-पुस्तकों को लिखने के लिए देश के प्रतिभाशाली व्यक्तियों को पर्याप्त पारिश्रमिक देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

4. पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करवाने एवं उनका मूल्यांकन करने का उत्तरदायित्व राज्य के शिक्षा-विभाग पर होना चाहिए।

5. पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण-कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर करने के लिए शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा एक "स्वायत्त संगठन" (Autonomous Organization) की स्थापना की जानी चाहिए।

6. प्रत्येक राज्य में पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के लिए एक विशेष समिति का गठन किया जाना चाहिए।

7. शिक्षा-विभाग को स्वयं पाठ्य-पुस्तकों की बिक्री न करके, इस कार्य को विद्यालयों के सहकारी भण्डारों को सौंप देना चाहिए।

8. शिक्षा-विभाग को आकाशवाणी से सम्पर्क स्थापित करके रेडियो द्वारा विभिन्न पाठों के शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।

(3) प्राथमिक स्तर पर निर्देशन : Guidance at Primary Stage—"आयोग" का मत है कि निर्देशन का कार्य, प्राथमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में "आयोग" ने नीचे लिखे सुझाव प्रस्तुत किये हैं—

1. प्राथमिक विद्यालयों में निम्नतम कक्षा से निर्देशन दिए जाने का कार्य आरम्भ किया जाना चाहिए।

2. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षण-काल में निर्देशन-सम्बन्धी सब बातों का ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।

3. अध्यापकों को निर्देशन-कार्य में सहायता देने के लिए व्यावसायिक साहित्य का निर्माण किया जाना चाहिए।

4. आगे की शिक्षा के विषयों का चयन करने के लिए विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों की सहायता की जानी चाहिए।

(4) माध्यमिक स्तर पर निर्देशन : Guidance at the Secondary Stage—"आयोग" ने माध्यमिक स्तर पर छात्रों को निर्देशन प्रदान करने के लिए निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. माध्यमिक विद्यालयों के सब शिक्षकों को सेवा-काल या प्रशिक्षण-काल में निर्देशन-सम्बन्धी जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।

2. सब माध्यमिक विद्यालयों के लिए न्यूनतम निर्देशन का कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए।

3. 10 माध्यमिक विद्यालयों के लिए एक परामर्शदाता (Counsellor) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

4. प्रत्येक ज़िले में कम-से-कम एक माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन का सघन कार्यक्रम संचालित किया जाना चाहिए।

(5) मूल्यांकन : Evaluation—"आयोग" के अनुसार, मूल्यांकन—शिक्षा का अभिन्न अंग है और इसका शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः मूल्यांकन की विधियाँ—वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय एवं व्यावहारिक होनी चाहिए। किन्तु, भारत में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली में इन गुणों का सर्वथा अभाव है। इस प्रणाली में सुधार करने और इसे उपयोगी बनाने के लिए, "आयोग" ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

1. मूल्यांकन की नवीन धारणा के अनुसार लिखित परीक्षाओं में सुधार करने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए, ताकि वे छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों का विश्वसनीय ढंग से माप कर सकें।

2. छात्रों की जिन उपलब्धियों का माप, लिखित परीक्षाओं द्वारा किया जाना असम्भव है, उनका माप करने के लिए अन्य विधियों का विकास किया जाना चाहिए।

3. निम्न-प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य—छात्रों की मूलभूत कुशलताओं में सुधार करना और उनमें अच्छी आदतों एवं अभिवृत्तियों का विकास करना होना चाहिए।

4. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के लिए लिखित परीक्षाओं के अलावा मौखिक एवं निदानात्मक (Diagnostic) परीक्षाओं का प्रयोग

किया जाना चाहिए। छात्रों के संचित अभिलेख-पत्रों (Cumulative Record Cards) पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

5. प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने पर ज़िले के शिक्षा-अधिकारी द्वारा छात्रों की बाह्य परीक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को सर्टिफ़िकेट दिए जाने चाहिए।

6. बाह्य परीक्षाओं के प्रश्न-पत्रों में वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रश्न देने की प्रथा प्रचलित की जानी चाहिए।

7. आन्तरिक जाँचों (Internal Assessment) को इतना व्यापक बना दिया जाना चाहिए कि उनकी सहायता से छात्रों के सभी पक्षों का मूल्यांकन किया जा सके। बाह्य परीक्षाओं के साथ-साथ इन जाँचों को भी प्रमाणपत्र प्रदान करने का आधार बनाया जाना चाहिए।

8. मूल्यांकन की नवीन विधियों को क्रियान्वित करने के लिए कुछ प्रयोगात्मक विद्यालयों (Experimental Schools) की स्थापना की जानी चाहिए। इन विद्यालयों को कक्षा 10 के अपने छात्रों की स्वयं परीक्षा लेनें का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

10. उच्च शिक्षा
(HIGHER EDUCATION)

"आयोग" ने उच्च शिक्षा के लगभग सभी अंगों के विषय में महत्त्वपूर्ण विचार अंकित किए हैं। हम इनका वर्णन अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत उपस्थित कर रहे हैं; यथा—

(1) विश्वविद्यालयों के लक्ष्य : Objectives of Universities—"आयोग" के मतानुसार, आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयों के मुख्य लक्ष्य अधोलिखित होने चाहिए—

1. नवीन ज्ञान की खोज एवं उसका विकास करना।
2. सत्य की खोज के लिए साहस एवं निर्भरता से कार्य करना।
3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं को कम करना।
4. समानता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना।
5. राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने के लिए कार्य करना।
6. नवीन खोजों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्राचीन ज्ञान का विश्लेषण करना।
7. जीवन के सब क्षेत्रों में उचित प्रकार का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को सहायता प्रदान करना।
8. प्रतिभाशाली नवयुवकों की खोज करना और उनको अपनी शक्तियों एवं प्रतिभाओं का विकास करने में सहायता देना।
9. देश के कला, कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी एवं अन्य व्यवसायों के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण करना।
10. छात्रों एवं शिक्षकों में और उनके द्वारा समाज के व्यक्तियों में उचित मान्यताओं और दृष्टिकोणों का विकास करना।

(2) नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना : Establishment of New Universities—"आयोग" का मत है कि नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना करने के समय निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए—

1. कोई नवीन विश्वविद्यालय—"विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" की सहमति के बिना स्थापित नहीं किया जाना चाहिए।

2. नवीन विश्वविद्यालय सामान्य रूप से उस स्थान पर स्थापित नहीं किए जाने चाहिए, जहाँ कुछ समय से कोई विश्वविद्यालय कार्य कर रहा है।

3. नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना तभी की जानी चाहिए जब इस बात का पूरा भरोसा हो कि उससे शिक्षा के स्तर में उन्नति होगी, उसके लिए योग्य शिक्षक उपलब्ध होंगे और उसमें स्तर का शिक्षण एवं अनुसन्धान-कार्य किया जायगा।

4. जिन स्थानों पर अनेक स्नातकोत्तर कॉलेज कार्य कर रहे हैं, उनको संगठित करके विश्वविद्यालयों का रूप प्रदान किया जाना चाहिए।

(3) वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास : Development of Major Universities—वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के विषय में "आयोग" ने अपने विचार इस प्रकार उपस्थित किए हैं—"उच्च शिक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार—कुछ वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास करना है, जिनमें सर्वोत्तम प्रकार का स्नातकोत्तर-कार्य एवं अनुसन्धान सम्भव होगा और जिनके स्तर की संसार के किसी भाग में इस प्रकार की सर्वोत्तम संस्थाओं के स्तर से तुलना की जा सकेगी। "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को जल्दी-से-जल्दी वर्तमान विश्वविद्यालयों में से लगभग 6 विश्वविद्यालयों को वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित करने के लिए चुन लेना चाहिए। इनमें से 1 प्रौद्योगिकी का और 1 कृषि का होना चाहिए। यह कार्यक्रम सन् 1966-67 में आरम्भ हो जाना चाहिए। वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में असाधारण क्षमता एवं अध्यवसाय के छात्र एवं अध्यापक होने चाहिए।"

"आयोग" के अनुसार, वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास करने में निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए—

1. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के व्यय का भार "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को वहन करना चाहिए।

2. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में "उच्च अध्ययन-केन्द्रों के समूहों" (Clusters of Advanced Centres) की स्थापना की जानी चाहिए।

3. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में पूर्व-स्नातक स्तर के लिए कुछ छात्रवृत्तियाँ होनी चाहिए, ताकि उनको स्नातकोत्तर-कक्षाओं के लिए प्रतिभाशाली छात्र पर्याप्त सख्या में उपलब्ध हो सकें।

4. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की नियुक्ति—राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधारों पर की जानी चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो चुने जाने वाले अध्यापकों को अग्रिम वेतन-वृद्धि या विशेष वेतन-क्रम दिये जाने चाहिए। इन अध्यापकों को अनुसन्धान करने के लिए सभी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

(4) कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में सुधार : Improvement in Colleges & Universities—"आयोग" ने वर्तमान कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में सुधार के लिए अग्रांकित सुझाव दिये हैं—

1. विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कॉलेजों का उनके कार्य के आधार पर वर्गीकरण किया जाना चाहिए।

2. यदि किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कोई असाधारण कॉलेज है, तो उसे "स्वायत्त कॉलेज" (Autonomous College) बना दिया जाना चाहिए।

3. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों को दूसरे विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों के सुयोग्य अध्यापक प्रदान करने चाहिए।

4. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों को पहली बार नियुक्त किए जाने वाले अपने अध्यापकों को कुछ समय के लिए वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में भेजना चाहिए, ताकि वे वहाँ अपने विषयों से सम्बन्धित नवीनतम तथ्यों एवं विचारों का ज्ञान प्राप्त कर लें।

5. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों को समय-समय पर विभिन्न विषयों के सुप्रसिद्ध विद्वानों एवं वैज्ञानिकों को आमन्त्रित करके, सेमिनारों एवं अनुसन्धान-कार्यों का आयोजन करना चाहिए।

6. "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को विश्वविद्यालयों में "उच्च-अध्ययन केन्द्रों" की स्थापना करने के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

(5) शिक्षण में सुधार : Improvement in Teaching—"आयोग" ने विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों में शिक्षण में सुधार करने के विचार से अधोलिखित सुझाव दिए हैं—

1. कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में उत्तम पुस्तकालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. छात्रों में प्रचलित निष्क्रिय रटने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जाना चाहिए और उनमें मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

3. व्याख्यान के बाद उसकी सामग्री को याद करने के लिए छात्रों को 45 मिनट का समय दिया जाना चाहिए।

4. औपचारिक कक्षा-कार्य और प्रयोगशाला-कार्य के घण्टों में कमी की जानी चाहिए। छात्रों द्वारा इस प्रकार बचने वाले समय का प्रयोग एक निर्देशक (Instructor) के मार्गदर्शन में स्वाध्याय, लेखन-कार्य, समस्या-समाधान, अनुसन्धान-कार्य आदि के लिए किया जाना चाहिए।

5. नये अध्यापकों की नियुक्तियाँ गर्मी की छुट्टियों में कर दी जानी चाहिए, ताकि नियुक्त किया जाने वाला प्रत्येक अध्यापक सत्र के आरम्भ से ही शिक्षण-कार्य करने लगे।

6. सत्र (Term) के मध्य में किसी अध्यापक को एक संस्था को छोड़कर दूसरी संस्था में जाने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए।

7. किसी भी शिक्षक को एक सत्र में 7 दिन से अधिक का अवकाश नहीं दिया जाना चाहिए।

8. शिक्षण-विधियों में सुधार करने के लिए, "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" द्वारा एक विशेष समिति की नियुक्ति की जानी चाहिए।

(6) मूल्यांकन में सुधार : Improvement in Evaluation—"आयोग" ने मूल्यांकन में सुधार करने के लिए अग्रलिखित विचार व्यक्त किए हैं—

1. "विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग" को विश्वविद्यालयों की सहायता से "केन्द्रीय-परीक्षा-सुधार-यूनिट" (Central Examination Reform Unit) का निर्माण करना चाहिए।

2. शिक्षण विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं की प्रणाली को समाप्त करके, स्वयं अध्यापकों द्वारा "आन्तरिक तथा क्रमिक मूल्यांकन" (Internal & Continuous Evaluation) की प्रणाली का प्रचलन किया जाना चाहिए।

3. सम्बद्धीकरण विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं के साथ-साथ आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

4. विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को सेमिनारों, वर्कशॉपों एवं विचार-सम्मेलनों का आयोजन करके, मूल्यांकन की नवीन एवं उन्नत विधियों की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।

5. परीक्षकों को उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच करने के लिये किसी प्रकार का पारिश्रमिक नहीं दिया जाना चाहिए।

6. एक परीक्षक को 1 वर्ष में 500 से अधिक उत्तर-पुस्तिकायें जाँचने के लिये नहीं दी जानी चाहिए।

(7) शिक्षा का माध्यम : Medium of Education—"आयोग" ने कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के बारे में निम्नांकित सुझाव अंकित किये हैं—

1. पूर्व-स्नातक स्तर पर शिक्षा का माध्यम यथासम्भव क्षेत्रीय भाषाएँ और स्नातकोत्तर-स्तर पर शिक्षा का माध्यम—अंग्रेज़ी होना चाहिए।

2. क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषाओं (Regional Languages) को 10 वर्ष की अवधि में विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाना चाहिए।

3. उच्च शिक्षा की संस्थाओं में कार्य करने वाले सब शिक्षकों को यथासम्भव दो भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए।

4. आधुनिक भारतीय भाषाओं (जिनमें उर्दू भी है) के विकास के लिए उच्च अध्ययन-केन्द्रों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. शास्त्रीय एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालयों में अनिवार्य विषयों का स्थान न देकर, वैकल्पिक विषयों का स्थान दिया जाना चाहिए।

6. विश्वविद्यालयों एवं सम्बद्ध कॉलेजों में छात्रों की अंग्रेज़ी का अध्ययन करने के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

7. उक्त शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों को रूसी भाषा का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

(8) चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली : System of Selective Admission—"आयोग" का मत है कि भविष्य में जिस अनुपात में उच्च शिक्षा की माँग में वृद्धि होगी, उस अनुपात में उच्च शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करना सम्भव नहीं होगा। अतः जनबल (Manpower) की आवश्यकता को ध्यान में रखकर "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" का प्रयोग किया जाना अनिवार्य है। इस प्रणाली की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए, "आयोग" ने लिखा है—"सामान्य रूप में यह होता है कि श्रेष्ठ क्षमताओं वाले थोड़े-से छात्रों को उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश नहीं मिल पाता है और उनमें छात्रों की उस विशाल संख्या का प्रवेश हो जाता है, जो उच्च शिक्षा के लिये पूरी तरह से तैयार नहीं रहते हैं।" इस दोष का निवारण करने के लिये, आयोग ने चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली के प्रयोग पर बल दिया है और उसके सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

1. विश्वविद्यालयों द्वारा प्रवेश-योग्यता के नियमों का निर्माण किया जाना चाहिये।

2. विश्वविद्यालयों में प्रवेश चाहने वाले छात्रों में से योग्यतम छात्रों का ही चुनाव किया जाना चाहिये।

3. उच्च शिक्षा की संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या का निश्चय इन संस्थाओं में उपलब्ध शिक्षक-संख्या और शिक्षण-सुविधाओं के आधार पर किया जाना चाहिए।

4. जब तक प्रवेश-सम्बन्धी नवीन विधियों की खोज न हो जाय, तब तक परीक्षाओं में प्राप्त होने वाले अंकों को प्रवेश का आधार बनाया जाना चाहिए।

(9) विश्वविद्यालय-स्वाधीनता : University Autonomy—विश्वविद्यालय-स्वाधीनता की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए, **"आयोग"** ने लिखा है—**"यह स्वीकार किया जाना आवश्यक है कि स्वाधीनता के अभाव में विश्वविद्यालय अपने शिक्षण, अनुसन्धान एवं समाज-सेवा के मुख्य कार्यों को कुशलतापूर्वक नहीं कर सकते हैं।"**

"It is important to recognise that without autonomy universities cannot discharge effectively their principal function of teaching, research and service of the community." —*Education Commission Report*, p. 326.

"आयोग" ने निम्नांकित क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता का समर्थन किया है—छात्रों का चुनाव, शिक्षकों की नियुक्ति एवं पदोन्नति और पाठ्य-विषयों, शिक्षण-विधियों एवं अनुसन्धान-कार्य के क्षेत्रों एवं समस्याओं का निर्धारण। इन क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता को ध्यान में रखते हुए, "आयोग" ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं—

1. विश्वविद्यालयों को अपने विभागों को कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता देनी चाहिए।

2. प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष की अधीनता में एक प्रबन्ध समिति का निर्माण किया जाना चाहिए। इस समिति को व्यापक आर्थिक एवं प्रशासकीय शक्तियों से सम्पन्न किया जाना चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों को अपने प्रशासन में इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिए कि श्रेष्ठ विचारों का जन्म साधारणतः निम्न स्तरों में होता है।

4. विश्वविद्यालयों को कॉलेजों की स्वतन्त्रता का उतना ही आदर करना चाहिए, जितना वे अपनी स्वतन्त्रता से करते हैं।

5. विश्वविद्यालयों की "साहित्यिक परिषदों" (Academic Councils) एवं सभाओं (Courts) में छात्र-प्रतिनिधियों की उपयुक्त संख्या को स्थान दिया जाना चाहिए।

6. विश्वविद्यालयों को अपनी स्वाधीनता को बनाये रखने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए, उनको अपने बौद्धिक एवं सार्वजनिक कार्यों को सदैव तत्परता से करना चाहिए।

7. प्रत्येक कॉलेज के प्रत्येक विभाग में छात्रों एवं अध्यापकों की संयुक्त समितियों (Joint Committees) का निर्माण किया जाना चाहिए।

8. प्रत्येक कॉलेज में प्रधानाचार्य की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय समिति का संगठन किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा कॉलेज की सामान्य समस्याओं एवं कठिनाइयों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

9. "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग", "अन्तर-विश्वविद्यालय-परिषद्" (Inter-University Board) एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा विश्वविद्यालय-स्वाधीनता के पक्ष में जनमत का निर्माण किया जाना चाहिए।

10. सरकार, विश्वविद्यालयों, "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" एवं "अंतर-विश्वविद्यालय-परिषद्" को संयुक्त रूप से अग्रांकित कार्य करने चाहिए—विभिन्न प्रश्नों पर विचार-विमर्श करना, प्रवेश दिये जाने वाले छात्रों की संख्या निश्चित करना एवं प्रयोगात्मक अनुसन्धान की समस्याओं का समाधान करने के लिए उपाय खोजना।

11. स्त्री-शिक्षा
(WOMEN'S EDUCATION)

स्त्री-शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए, "आयोग" ने लिखा है—"**हमारे मानव-साधनों के पूर्ण विकास, परिवारों की उन्नति एवं शैशवावस्था के वर्षों में अत्यधिक सरलता से प्रभावित होने वाले बच्चों के चरित्र का निर्माण करने के लिए, स्त्रियों की शिक्षा का महत्त्व पुरुषों की शिक्षा से भी अधिक है।**"

"For full development of our human resources, the improvement of homes, and for moulding the character of children during the most impressionable years of infancy, the education of women is of even greater importance than that of men." **—Education Commission Report**, p. 135.

"आयोग" ने स्त्री-शिक्षा के लगभग सभी अंगों के विषय में अपने विचारों को लेखबद्ध किया है। हम प्रमुख अंगों से सम्बन्धित उसके विचारों का वर्णन कर रहे हैं; यथा—

1. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा : Primary & Secondary Education—"आयोग" ने बालिकाओं की प्राथमिक एवं माध्यनिक शिक्षा के विषय में निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

1. भारतीय संविधान में अंकित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा का अधिक-से-अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।

2. माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार की गति इतनी तीव्र कर दी जानी चाहिए, जिससे 20 वर्ष के अन्त में निम्न माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं और बालकों की संख्या का अनुपात संख्या 1 : 3 और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 1 : 2 हो जाय।

3. बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालयों एवं छात्रावासों और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. उच्च शिक्षा : Higher Education—"आयोग" ने बालिकाओं एवं स्त्रियों की उच्च शिक्षा के विषय में अग्रांकित सिफारिशें की हैं—

1. स्त्रियों के लिए पर्याप्त छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. स्त्रियों के लिए उचित प्रकार के और मितव्ययी छात्रावासों की स्थापना की जानी चाहिए।

3. शिक्षा, गृह-विज्ञान एवं सामाजिक कार्य (Social Work) के पाठ्य-विषयों का विस्तार करके, उनको समुन्नत बनाया जाना चाहिए।

4. एक या दो विश्वविद्यालयों में स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित "अनुसन्धान यूनिटों" (Research Units) की सृष्टि की जानी चाहिए।

5. स्त्रियों की कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानव-शास्त्र आदि विषयों में से अपने अध्ययन के विषयों का चुनाव करने की आज्ञा दी जानी चाहिए।

6. जिन स्थानों में माँग है, वहाँ स्त्रियों के लिए पृथक् पूर्व-स्नातक कॉलेजों का निर्माण किया जाना चाहिए।

7. स्त्रियों के लिए पृथक् स्नातकोत्तर-कॉलेजों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए।

3. पाठ्यक्रम : Curriculum—"स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति" (National Council of Women's Education) द्वारा श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में नियुक्त की जाने वाली समिति के विचारानुसार बालकों और बालिकाओं के पाठ्यक्रम में अन्तर नहीं होना चाहिए। "शिक्षा-आयोग"—"हंसा मेहता समिति (Hansa Mehta Committee) के विचारों से सहमत हैं। फिर भी, "आयोग" ने बालिकाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम के विषय में निम्नांकित विचार व्यक्त किए हैं—

1. कक्षा 10 के अन्त तक सब बालकों एवं बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम होना चाहिए और उनको केवल कार्य-अनुभव (Work Experience) या भाषा में पृथक् चुनाव करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिए, पर उनके लिए यह विषय अनिवार्य नहीं बनाया जाना चाहिए।

3. बालिकाओं को संगीत एवं कलाओं की शिक्षा देने के लिए अधिक उत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं को विज्ञान या गणित का अध्ययन करने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

4. स्त्री-शिक्षा का विस्तार : Expansion of Women's Education—**"आयोग"** ने स्त्री-शिक्षा के विस्तार के लिए निम्नांकित सुझाव दिए हैं—

1. स्त्री-शिक्षा के विस्तार के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

2. स्त्री-शिक्षा का प्रसार करने के लिए कुछ वर्षों तक इसे शिक्षा के सम्पूर्ण कार्यक्रम का अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए।

3. स्त्री-शिक्षा के मार्ग से समस्त बाधाओं को हटाने के लिए ठोस एवं निश्चित कदम उठाये जाने चाहिए।

4. स्त्रियों और पुरुषों की शिक्षा के मध्य जो विशाल अन्तर उत्पन्न हो गया है, उसे समाप्त करने के लिए विशेष योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।

5. स्त्री-शिक्षा का सतर्कतापूर्वक निरीक्षण करने के लिए केन्द्र और राज्य—दोनों स्तरों पर शक्तिशाली प्रशासकीय संगठनों का निर्माण किया जाना चाहिए।

6. विवाहित स्त्रियों के लिए अल्पकालीन और अविवाहित स्त्रियों के लिए पूर्णकालीन रोजगारों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

7. बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिए अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

12. वयस्क-शिक्षा
(ADULT EDUCATION)

"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा के विषय में जो विचार अंकित किए हैं, हम उनका वर्णन क्रमबद्ध शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा—

1. वयस्क-शिक्षा की आवश्यकता : Need of Adult Education—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा का पर्याप्त विस्तार में वर्णन किया है। हम इस वर्णन को **"आयोग"** के **निम्नांकित शब्दों से** आरम्भ कर रहे हैं—"विद्यालय-शिक्षा के बाद शिक्षा का अंत नहीं **होता है**, क्योंकि शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। आज के वयस्क को तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले संसार की और समाज की बढ़ती हुई जटिलताओं की जानकारी होना आवश्यक है। जिन व्यक्तियों ने सर्वोत्तम प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है, उनके लिए भी जीवन में शिक्षा की आवश्यकता है।" अतः वयस्क-शिक्षा का संगठन अनिवार्य है।

"आयोग" ने अपने वर्णन में आगे लिखा है—"जो देश आर्थिक उन्नति, सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्रीय सुरक्षा चाहता है, उसे अपने वयस्क नागरिकों को विकास कार्यक्रमों में कुशलता एवं बुद्धिमत्ता से भाग लेने की शिक्षा देनी चाहिए। यह बात भारत के लिए विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि यहाँ के विशाल जनसमूहों को विद्यालयों में किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है और जिनको शिक्षा प्राप्त भी हुई है, वह विकास-कार्यक्रमों के लिए व्यर्थ है। जो कृषक, भूमि को जोतता है, उसे भूमि की बनावट का ज्ञान होना चाहिए। जो श्रमिक, मशीन को चलाता है, उसे मशीन के अंगों का ज्ञान होना चाहिए। कृषकों, श्रमिकों आदि को अपने कार्यों का ज्ञान नहीं है।" अतः उनको ज्ञान प्रदान करने के लिए वयस्क-शिक्षा की व्यवस्था की जानी आवश्यक है।

"आयोग" ने अपने वर्णन को जारी करते हुए लिखा है—"कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के भार को केवल पुलिस एवं सेना को नहीं सौंप सकता है। वस्तुतः राष्ट्रीय सुरक्षा बहुत बडी सीमा तक नागरिकों की शिक्षा, विभिन्न कार्यक्रमों के उनके ज्ञान, कुशलतापूर्वक भाग लेने की क्षमता पर आधारित रहती है।" अतः नागरिकों में इन गुणों का विकास करने के लिए वयस्क-शिक्षा का कार्यक्रम आवश्यक है।

"आयोग" ने भारत में वयस्क-शिक्षा की आवश्यकता के दो मूलभूत कारण बताये हैं—**पहला**, भारत के 70 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं, जिनको साक्षर बनाया जाना आवश्यक है; **दूसरा**, भारत—जनतंन्त्रीय गणतन्त्र है। अतः उसका कर्त्तव्य प्रत्येक वयस्क-नागरिक को ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना है, जो वह प्राप्त करना चाहता है और जो उसे अपनी व्यक्तिगत उन्नति, व्यावसायिक प्रगति और सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्राप्त करनी चाहिए।

2. वयस्क-शिक्षा का कार्यक्रम : Programme of Adult Education—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रमों को स्थान दिया है—

(i) निरक्षरता का उन्मूलन : Liquidation of Illliteracy.
(ii) अनवरत शिक्षा : Continuation Education.
(iii) पत्राचार-पाठ्यक्रम : Correspondance Courses
(iv) पुस्तकालय : Libraries.
(v) विश्वविद्यालयों के कार्य : Role of Universities.
(vi) संगठन व प्रशासन : Organization & Administration.

इन कार्यक्रमों का संक्षिप्त वर्णन द्रष्टव्य है—

(i) निरक्षरता का उन्मूलन : Liquidation of Illiteracy—"आयोग" ने निरक्षरता का उन्मूलन करने के लिए अधोलिखित सुझाव दिये हैं—

1. सभी सम्भव विधियों का प्रयोग करके 20 वर्ष की अवधि में निरक्षरता का पूर्ण उन्मूलन कर दिया जाना चाहिए।

2. साक्षरता को 1971 में 60 प्रतिशत पर और 1967 में 80 प्रतिशत पर पहुँचा दिया जाना चाहिए।

3. निरक्षरता का उन्मूलन करने के लिए विद्यालयों को सामुदायिक जीवन के केन्द्रों का रूप प्रदान किया जाना चाहिए।

4. ग्रामों में निवास करने वाली स्त्रियों को साक्षर बनाने के लिए "ग्राम-सेविकाएँ" (Village-Sisters) नियुक्त की जानी चाहिए।

5. सामान्य स्त्रियों को साक्षर बनाने के लिए "केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद् (Central Social Welfare Board) द्वारा "संक्षिप्त पाठ्यक्रमों" (Condensed Courses) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

6. साक्षरता को कायम रखने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना की जानी चाहिए, पठन-सामग्री का निर्माण किया जाना चाहिए एवं "अनुसरण कार्यक्रम" (Follow-up Programme) क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

7. निरक्षरता की वृद्धि को रोकने के लिए निम्नांकित उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिए—

(i) 6-11 वय-वर्ग के सब बच्चों के लिए 5 वर्ष की सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था।

(ii) 11-14 वय-वर्ग के उन बच्चों के लिए अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था, जिन्होंने बीच में विद्यालय जाना बन्द कर दिया हो या जिन्होंने विद्यालय जाने की सुविधा से लाभ उठाया हो।

(iii) 15-30 वय-वर्ग के पुरुषों एवं स्त्रियों के अल्पकालीन एवं व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था।

(ii) अनवरत शिक्षा : Continuation Education—"आयोग" ने साक्षर वयस्कों की साक्षरता को बनाये रखने के लिए अधोलिखित सुझाव उपस्थित किए हैं—

1. सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं को अपने शिक्षण-समय में पहले या बाद में उन व्यक्तियों को ऐसे पाठ्य-विषयों की शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिनकी शिक्षा वे प्राप्त करना चाहते हैं।

2. उक्त शिक्षा-संस्थाओं को उक्त समय में इस प्रकार के पाठ्यक्रमों का आयोजन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, जिससे वयस्कों को अपनी समस्याओं का समाधान करने और अधिक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने में सहायता मिले।

3. साक्षर वयस्कों को स्कूलों एवं कॉलेजों के छात्रों के समान डिप्लोमा एवं डिग्री प्राप्त करने का अवसर देने के लिए अल्पकालीन शिक्षा की प्रणाली प्रचलित की जानी चाहिए।

4. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के ज्ञान एवं कुशलता में उन्नति करने, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का विस्तार करने और उनमें अपने व्यवसायों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए विशेष प्रकार की अनवरत शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(iii) पत्राचार-पाठ्यक्रम : Correspondence Courses—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा का विस्तार करने के उद्देश्य से पत्राचार-पाठ्यक्रमों का सुझाव दिया है और इनके सम्बन्ध में अधोलिखित विचार प्रकट किए हैं—

1. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए की जानी चाहिए, जो अल्पकालीन शिक्षा से लाभ उठाने में असमर्थ हैं।

2. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए भी की जानी चाहिए, जो सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यात्मक विषयों का ज्ञान प्राप्त करके, अपने जीवन को समृद्ध बनाना चाहते हैं।

3. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए भी की जानी चाहिए, जो देश के "माध्यमिक शिक्षा-बोर्डों" एवं विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ पास करना चाहते हैं।

4. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था--कृषि, विभिन्न उद्योगों और अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए भी की जानी चाहिए।

5. पत्राचार-पाठ्यक्रमों द्वारा शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को कभी-कभी अपने शिक्षकों से भेंट करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

6. पत्राचार-पाठ्यक्रमों का रेडियो एवं टेलीविजन के कार्यक्रमों से निकट सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।

(iv) पुस्तकालय : Libraries—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा से सम्बन्धित पुस्तकालयों के विषय में नीचे लिखे विचार प्रस्तुत किये हैं—

1. वयस्कों के पुस्तकालय प्रगतिशील होने चाहिए।

2. उक्त पुस्तकालयों को वयस्कों को शिक्षित एवं आकर्षित करना चाहिए।

3. विद्यालयों के पुस्तकालयों को सार्वजनिक पुस्तकालयों का रूप दिया जाना चाहिए और उनमें बच्चों एवं नव-साक्षरों (Neo-Literates) की रुचियों को ध्यान में रखकर पुस्तकों का संग्रह किया जाना चाहिए।

4. "पुस्तकालय-सलाहकार-समिति" (Advisory Committee on Libraries) द्वारा प्रस्तावित सम्पूर्ण देश में पुस्तकालयों की स्थापना की योजना को क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

(v) वयस्क-शिक्षा में विश्वविद्यालयों के कार्य : Role of Universities in Adult Education—"आयोग" के मतानुसार, विश्वविद्यालयों को वयस्क-शिक्षा के प्रसार के लिए अग्रांकित कार्य करने चाहिए—

1. विश्वविद्यालयों को वयस्कों को शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए।

2. विश्वविद्यालयों को विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करके, वयस्कों के आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में योग देना चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों को दिल्ली-विश्वविद्यालय के समान पत्राचार पाठ्यक्रमों की योजना आरम्भ करनी चाहिए।

4. विश्वविद्यालयों को राजस्थान-विश्वविद्यालय के समान वयस्क शिक्षा के विभाग की स्थापना करनी चाहिए।

5. विश्वविद्यालयों को अपने वयस्क-शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए सरकार से उदार आर्थिक सहायता प्राप्त होनी चाहिए।

(vi) वयस्क-शिक्षा का संगठन व प्रशासन : Organization & Administration of Adult Education—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा के संगठन एवं प्रशासन के विषय में निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

1. वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाली व्यक्तिगत संस्थाओं को सरकार द्वारा आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता दी जानी चाहिए।

2. शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा "राष्ट्रीय वयस्क-शिक्षा-परिषद्" (National Board of Adult Education) की स्थापना की जानी चाहिए।

3. उक्त "परिषद्" पर निम्नलिखित कार्यों को सम्पादित करने का उत्तरदायित्व रखा जाना चाहिए—

(i) केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अनौपचारिक वयस्क शिक्षा एवं प्रशिक्षण के बारे में परामर्श देना और इनसे सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण करना।

(ii) वयस्कों की शिक्षा के लिये उपयुक्त साहित्य, पाठन-सामग्री एवं प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के उत्पादन को प्रोत्साहन देना।

(iii) विभिन्न मन्त्रालयों और सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करना।

(iv) समय-समय पर वयस्क-शिक्षा के प्रसार की जाँच करना और उसमें सुधार एवं परिवर्तन करने के लिए सुझाव देना।

(v) वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में अन्वेषण, अनुसन्धान एवं मूल्यांकन करना।

4. उक्त "परिषद्" के समान राज्य-स्तर पर परिषदों का और जिला-स्तर पर समितियों का निर्माण किया जाना चाहिए। ग्राम-स्तर पर "परिषद्" के कार्यों को विद्यालयों को सौंपा जाना चाहिए।

13. विज्ञान की शिक्षा

(SCIENCE EDUCATION)

"आयोग" का मत है कि विज्ञान की शिक्षा—भारत की प्रगति, सुरक्षा एवं कल्याण के लिए परम आवश्यक है। अतः उसने विज्ञान की शिक्षा (जिसमें उसने गणित एवं प्रौद्योगिकी को भी सम्मिलित किया है) के प्रसार के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं; यथा—

1. आधुनिक युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के महत्त्व को स्वीकार करके, इनको शिक्षा-प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

2. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा को देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास से सम्बन्धित किया जाना चाहिए।

3. विज्ञान एवं गणित के पूर्व-स्नातक एवं स्नातकोत्तर-स्तरों के पाठ्यक्रमों में आमूल संशोधन करके, उनको उच्च बनाया जाना चाहिए।

4. विज्ञान एवं गणित की शिक्षा के लिये उच्च अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये और उनमें योग्य एवं अनुभवी अध्यापकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

5. विज्ञान की शिक्षा में सुधार करने के लिए, विद्यालयों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के लिये, "ग्रीष्मकालीन संस्थानों" (Summer Institutes) की योजना संचालित की जानी चाहिए।

6. विज्ञान के सम्बन्धित विषयों के सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक पक्षों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

7. देश की औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विज्ञान के छात्रों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

8. प्रत्येक कॉलेज एवं विश्वविद्यालय में विज्ञान की पूर्णतया सुसज्जित प्रयोगशालायें एवं वर्कशॉप होने चाहिये, जिनमें छात्रों को विभिन्न यन्त्रों का प्रयोग भलीभाँति सिखाया जाना चाहिए।

9. विदेशी वैज्ञानिकों एवं विदेशों में कार्य करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भारतीय वैज्ञानिकों को भारत में शिक्षण-कार्य करने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।

10. "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को एक अखिल भारतीय समिति का निर्माण करना चाहिए। इस समिति को 2 या 3 वर्ष के इकरारनामे पर विज्ञान के "विजिटिंग प्रोफेसरों" (Visiting Professors) की नियुक्ति करनी चाहिए।

11. प्रायोगिक भौतिकशास्त्र एवं रसायनशास्त्र का विकास करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए।

12. एम० एस-सी० स्तर के बाद वैकल्पिक आधार पर एक नवीन उपाधि प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

13. वर्तमान वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए 2 वर्ष के एम० एस-सी० के कोर्स के अतिरिक्त 1 वर्ष या कम अवधि का कोई विशेष कोर्स आरम्भ किया जाना चाहिए।

14. अन्तिम परीक्षा में प्रयोगात्मक परीक्षा नहीं होनी चाहिए वरन् कक्षा के रिकार्ड के आधार पर प्रयोगात्मक कार्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

15. औद्योगिकी कार्यकर्त्ताओं को पत्र-व्यवहार एवं सायंकालीन कक्षाओं के द्वारा प्रयोगशालाओं में प्रयोग करने की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

14. कृषि की शिक्षा
(AGRICULTURAL EDUCATION)

कृषि-प्रधान देश, भारत में कृषि की हीन दशा और देश के लिए उसके महत्त्व को

ध्यान में रखते हुए, "आयोग" ने कृषि की शिक्षा में सुधार एवं विस्तार करने के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किए हैं, उनका विवरण द्रष्टव्य है—

1. कृषि-विश्वविद्यालय : Agricultural Universities—"आयोग" ने कृषि-विश्वविद्यालयों की स्थापना, कार्य आदि के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

1. प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक कृषि-विश्वविद्यालय की स्थापना की जानी चाहिए।

2. कृषि-विश्वविद्यालयों में कृषि की शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रसार-कार्यक्रमों की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए।

3. कृषि-विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर-शिक्षा का उन्नयन करने के लिये योग्य एवं प्रतिभाशाली शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

4. कृषि-विश्वविद्यालयों में कक्षा-शिक्षण की अपेक्षा प्रायोगिक एवं प्रयोगशाला-कार्यों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

5. कृषि-विश्वविद्यालयों के 25 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

6. कृषि-विश्वविद्यालयों में कृषि-शिक्षा के अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।

7. प्रत्येक कृषि-विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कम-से-कम 1,000 एकड़ भूमि का फार्म होना चाहिए, जिसमें से 500 एकड़ भूमि कृषि के योग्य होनी चाहिए।

8. प्रथम डिग्री-कोर्स की अवधि 10 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा के पश्चात् 5 वर्ष की होनी चाहिए।

9. उपाधि प्रदान करने से पूर्व प्रत्येक छात्र के लिए फार्म पर 1 वर्ष का कृषि-कार्य अनिवार्य होना चाहिए।

10. केन्द्रीय अनुसन्धान-केन्द्रों एवं कृषि-विश्वविद्यालयों को पारस्परिक सहयोग से स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए उत्तम केन्द्रों का निर्माण करना चाहिए।

11. सभी कृषि-विश्वविद्यालय यथासम्भव शिक्षण-विश्वविद्यालय होने चाहिए।

12. बाह्य परीक्षाओं को समाप्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया जाना चाहिए।

2. कृषि-कॉलेज : Agricultural Colleges—"आयोग" ने कृषि-कॉलेजों के विषयों में अधोलिखित सुझाव दिये हैं—

1. नवीन कृषि-कॉलेजों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए, वरन् पुराने कॉलेजों में सुधार करके, उनको सुचारु रूप से संचालित किया जाना चाहिए।

2. प्रत्येक कृषि-कॉलेज के पास कम-से-कम 200 एकड़ भूमि का सुव्यवस्थित फार्म होना चाहिए।

3. कुछ कॉलेजों में डिग्री कोर्सों के बजाय उच्च टेकनिशियन (Technician) स्तर के कोर्सों का आयोजन किया जाना चाहिए।

4. कृषि-कॉलेजों का प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" एवं "भारतीय कृषि-अनुसन्धान-परिषद्" (Indian Agricultural Research Institute) द्वारा संयुक्त निरीक्षण किया जाना चाहिए।

3. कृषि-पॉलिटेकनीक : Agricultural Polytechnics—"आयोग" ने सिफ़ारिश की है कि कृषि-शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करने के लिए "कृषि-पॉलिटेकनीकों" का शिलान्यास किया जाना चाहिए और उनके सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार लेखबद्ध किये हैं—

1. मेट्रीकुलेशन-स्तर के बाद प्रत्येक राज्य में कृषि-पॉलिटेकनीकों की स्थापना को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

2. पॉलिटेकनीकों को कृषि-विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

3. पॉलिटेकनीकों में अधिकतम छात्र-संख्या 1,000 होनी चाहिए।

4. पॉलिटेकनीकों में कृषि की ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसे समाप्त करने के पश्चात् छात्रों को कृषि की उच्च शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश मिल सके।

5. पॉलिटेकनीकों में कृषकों एवं कृषि में विशेष रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए सघन एवं संक्षिप्त पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

6. कृषि-शिक्षा की तात्कालिक माँग को पूर्ण करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के निकट स्थित पॉलिटेकनीकों में कुछ समय तक कृषि की शिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

4. विद्यालयों में कृषि-शिक्षा : Agricultural Education in Schools—"आयोग" की धारणा है कि कृषि-शिक्षा को विद्यालयों की सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए। अपनी इस धारणा के अनुसार, "आयोग" ने विद्यालयों में कृषि-शिक्षा के बारे में अधोलिखित सुझाव अंकित किये हैं—

1. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के सब प्राथमिक विद्यालयों में कृषि-सम्बन्धी जानकारी को सामान्य शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।

2. विद्यालय-स्तर पर कृषि को कार्य-अनुभव (Work-Experience) का महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए।

3. अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रमों में कृषि एवं ग्रामीण समस्याओं को उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए।

15. व्यावसायिक, प्राविधिक व इंजीनियरिंग की शिक्षा
(VOCATIONAL, TECHNICAL & ENGINEERING EDUCATION)

"आयोग" का कथन है कि देश के औद्योगीकरण को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है। अतः औद्योगीकरण की योजनाएँ बनाने वालों का यह कर्त्तव्य है कि वे विभिन्न उद्योगों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या का अनुमान लगाएँ और उनके प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों का निर्माण करें। इस कार्य में हाथ बँटाने के लिये, "आयोग" ने व्यावसायिक, प्राविधिक एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा के विषय में कुछ विचार व्यक्त किये हैं, जिनकी चर्चा यथास्थान की जा रही है—

1. व्यावसायिक व प्राविधिक शिक्षा : Vocational & Technical Education—"आयोग" ने व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा के विषय में जो विचार अंकित किये हैं, वे अग्रांकित हैं—

1. व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार, सुसंगठित योजना के अनुसार इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे 1985-86 में निम्न माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत छात्र एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्र पूर्वकालीन एवं अंशकालीन व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण कर रहे हों।

2. विद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम अपने आप में सम्पूर्ण होने चाहिए, ताकि छात्रों को उच्च शिक्षा की संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो।

3. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं (Industrial Training Institutes) में सर्वेक्षण के आधार पर प्रशिक्षण की सुविधाओं का अधिक-से-अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।

4. विद्यालय-शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को व्यावसायिक एवं प्राविधिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये पत्राचार-पाठ्यक्रमों, अल्पकालीन पाठ्यक्रमों एवं संक्षिप्त-सघन पाठ्यक्रमों (Short-Intensive Courses) की व्यवस्था की जानी चाहिये।

5. जूनियर टेकनिकल स्कूलों को टेकनिकल हाई स्कूलों की संज्ञा दी जानी चाहिये।

6. टेकनिकल स्कूलों एवं औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में व्यावहारिक कार्य पर विशेष बल दिया जाना चाहिये एवं उनको उत्पादनोन्मुखी (Production Oriented) बनाया जाना चाहिये।

7. नवीन पॉलिटेकनीकों की स्थापना औद्योगिक क्षेत्रों में की जानी चाहिये।

8. जो पॉलिटेकनीक—ग्रामीण क्षेत्रों के चल रहे हैं, उनमें कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित उद्योगों की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिये।

9. पॉलेटेकनीकों में बालिकाओं की विशेष रुचियों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिये।

10. पॉलिटेकनीकों के शिक्षकों की साहित्यिक योग्यताओं (Academic Oualifications) में कमी की जानी चाहिये और साधारणतः उन्हीं शिक्षकों को नियुक्त किया जाना चाहिये, जो विभिन्न उद्योगों में कार्य करके, औद्योगिक अनुभव प्राप्त कर चुके हों।

11. पॉलिटेकनीकों में होने वाले अपव्यय को समाप्त करने एवं उनको अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने के प्रयास किये जाने चाहिये।

12. कुछ पॉलिटेकनीकों में डिप्लोमा प्राप्त कर चुकने वाले छात्रों के लिये पोस्ट-डिप्लोमा (Post-Diploma) कोर्सों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

2. इंजीनियरिंग की शिक्षा : Engineering Education—**"आयोग"** ने इंजीनियरिंग की शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिये हैं—

1. इंजीनियरिंग के जो कॉलेज उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान नहीं कर रहे हैं, उनमें या तो सुधार किया जाना चाहिये या उनको बन्द कर दिया जाना चाहिए।

2. इंजीनियरिंग की अग्रांकित शाखाओं का अध्ययन करने के लिये केवल योग्य एवं प्रतिभाशाली बी० एस-सी० पास विद्यार्थियों का ही चुनाव किया जाना चाहिए—उपकरण एवं विद्युत-अणु (Instrumentation & Electronics)।

3. इंजीनियरिंग की शिक्षा के पाठ्यक्रमों को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये विभिन्न प्रकार का बनाया जाना चाहिए।

4. इंजीनियरिंग की शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रमों में विशेषज्ञों के परामर्श के अनुसार संशोधन किया जाना चाहिए।

5. इंजीनियरिंग की शिक्षा में अग्रांकित पाठ्य-विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए—विमान-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, रासायनिक प्रौद्योगिकी (Aeronautics, Astronautics, Chemical Technology), आदि।

6. छात्रों को डिग्री-कोर्स के तृतीय वर्ष में व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और कार्यशाला-कार्य (Workshop Practice) में उत्पादन-कार्य पर विशेष रूप से बल दिया जाना चाहिए।

7. इंजीनियरिंग की शिक्षा में सम्बन्धित शिक्षकों को नवीनतम ज्ञान से सम्पन्न करने के लिए 'ग्रीष्मकालीन संस्थानों' (Summer Institutes) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. प्रतिभाशाली व्यक्तियों को शिक्षण-व्यवसाय के प्रति आकृष्ट करने के लिए शिक्षकों के वेतन-क्रमों में वृद्धि की जानी चाहिए और उनको लागू किया जाना चाहिए।

9. टेक्नॉलॉजी की संस्थाओं में उच्च अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।

10. टेक्नॉलॉजी की संस्थाओं को उद्योगों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

आयोग का मूल्यांकन
(ESTIMATE OF THE COMMISSION)

"शिक्षा-आयोग" के सदस्यों में देश और विदेश के माने हुए विद्वान् और सुलझे हुए शिक्षा-मर्मज्ञ थे। सभी को अपने-अपने क्षेत्रों का लम्बा अनुभव था, गहरी जानकारी थी। इसलिए, उन्होंने भारतीय शिक्षा का नख से शिख तक कायाकल्प करने के लिए अनोखे और अनुपम सुझाव दिए।

इन सुझावों में से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—शिक्षा का नवीन संगठन, विज्ञान की शिक्षा पर बल, प्रौद्योगिकी एवं व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था, शैक्षिक अवसरों की समानता, त्रिभाषा-सूत्र में संशोधन, प्राथमिक स्तर से निर्देशन की आवश्यकता, प्रतिभाशाली छात्रों की खोज और शिक्षकों की स्थिति में उन्नति।

"शिक्षा-आयोग" के उपरिअंकित सभी सुझाव सारगर्भित हैं, सराहना के योग्य हैं। पर यदि हम थोड़ा-सा समय निकालकर और एकाग्रचित होकर, उन पर विचार करें, तो हमको यह जानने में देर नहीं लगेगी कि उनमें सरलता के बजाय जटिलता है, व्यावहारिकता के बजाय आदर्शवादिता है। अतः उनकी अभिपूर्ति असम्भव है। उसकी अभिपूर्ति के लिए इतने अपार धन की आवश्यकता है कि भारत के समान दरिद्र देश के लिए उसे जुटाना असम्भव है।

यदि हम "आयोग" के कुछ सुझावों पर अलग-अलग विचार करें, तो हमसे उनकी निरर्थकता और निस्सारता छिपी नहीं रह सकती है। उदाहरणार्थ—उसने शिक्षकों के पदों की सुरक्षा के बारे में एक शब्द भी नहीं लिखा है। उसने संस्कृत के अध्ययन को अनुपयोगी बनाकर, उसके उन्मूलन का अच्छा प्रबन्ध कर दिया है। उसने बेसिक शिक्षा को शिक्षा के सब स्तरों से बाहर निकाल कर, उसकी मृत्यु के अनुमति-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। उसने भारत में अंग्रेजी को अनिश्चित काल तक बनाए रखने की सिफारिश करके, एक अन्तर्राष्ट्रीय षडयन्त्र से नाता जोड़ लिया है।

सारांश यह है कि "आयोग" के अधिकांश सुझाव चौंकाने वाले हैं, परेशानी में डालने वाले हैं। सत्य बात तो यह है कि भारतीय परिस्थितियों से अनभिज्ञ जिन विदेशियों से भारतीय शिक्षा के विकास के लिए परामर्श लिया गया, उनसे इसी प्रकार के काल्पनिक और कंटकपूर्ण सुझावों की आशा की जा सकती थी। अतः हम केवल यह लिखकर अपने मूल्यांकन को समाप्त करते हैं कि "आयोग" के केवल दो-चार सुझाव ही क्रियान्वित करने के योग्य हैं। शेष केवल इसी योग्य हैं कि उनको कागज पर लिखा हुआ रहने दिया जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Summarize briefly the recommendations of the Education Commission on teacher education. How far are they likely to improve educational standards ?

   शिक्षक-शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा-आयोग की सिफारिशों का संक्षिप्त सारांश लिखिए। वे शिक्षा के स्तर में सुधार करने के लिए कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकती हैं ?

2. Comment on the view that the Report of the Indian Education Commission of 1966 is the first serious attempt at evolving a comprehensive scheme of a national system of education in India.

   इस मत की समालोचना कीजिए कि सन् 1966 के भारतीय शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की एक व्यापक योजना का प्रथम वास्तविक प्रयास है।

3. What reforms have been suggested by the Education Commission to break down the isolation of Primary and Secondary teachers's training institutions from the academic life of the universities and the everyday problems of schools ?

   प्राथमिक तथा माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण-संस्थाओं का विश्वविद्यालयों के विद्वत्परिषद् के जीवन तथा विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से पार्थक्य को हटाने के लिए जिला-आयोग ने क्या सुधार प्रस्तुत किये हैं ?

4. Give a critical estimate of the need of vocationalization of Secondary Education in India. What difficulties can arise in doing so and how can they be removed ?

   भारत में माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की आवश्यकता की समीक्षात्मक आलोचना लिखिए। ऐसा करने से क्या कठिनाइयाँ उठ सकती हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है ?

5. Write briefly the recommendations of the Kothari Commission on the following—(a) Three language formula, (b) University Autonomy, (c) Pattern of Secondary Education, (d) Reform in Women's Education, and (e) Improvement in University Education.

   अग्रलिखित पर कोठारी कमीशन की सिफारिशों को संक्षेप में लिखिए—(अ) त्रिभाषा-सूत्र, (ब) विश्वविद्यालय-स्वाधीनता, (स) माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप, (द) स्त्री-शिक्षा में सुधार, और (य) विश्वविद्यालय शिक्षा में उन्नति।

18

राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ

NATIONAL EDUCATION POLICIES

"An ideal system of Education should enable individuals to know and develop to the fullest, their physical and intellectual potentialities and promote their awareness of social and human values so that they can develop a strong character, live better lives and function as responsible members of the society."

—National Policy on Education, 1979

विषय प्रवेश

15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता की सुरभि में भारतीय शिक्षा ने करवट बदली। पराधीनता के कारण भारत में जो विष फैल गया था, उसे दूर करने और जन-चेतना को जाग्रत करके, जनतन्त्र के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति सजग करने के लिए शिक्षा को एक नवीन दिशा देने का निश्चय किया गया। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर, जनवरी, 1948 में भारत के शिक्षा-मन्त्री ने एक अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन किया।

उस अवसर पर भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने उद्घाटन-भाषण में कहा—**"पराधीन भारत में जब कभी शिक्षा की योजना बनाने के लिए सम्मेलन होते थे, तब उनमें सामान्य रूप से कुछ संशोधनों के बाद प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को स्वीकार करने की प्रवृत्ति पाई जाती थी। किन्तु, अब हमें इस प्रवृत्ति का त्याग कर देना चाहिए और शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करके उसे देश की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप ढालना चाहिए।"**

पण्डित नेहरू के इस भाषण से अनुप्राणित होकर देश में शिक्षा को नई दिशा देने और उसकी बहुमुखी प्रगति के लिए जो चेष्टाएँ अब तक की गई हैं, उनका संक्षिप्त विवरण आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति, 1968

(NATIONAL EDUCATION POLICY, 1968)

भारत-सरकार ने शिक्षा के विकास और सुसंगठित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विषय में परामर्श देने के लिए सन् 1964 में "शिक्षा-आयोग" की नियुक्ति की। "आयोग" ने भारतीय शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणामस्वरूप वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भारतीयों की कुशलताओं एवं आकांक्षाओं, धारणाओं एवं मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके इस देश के रूढ़िवादी, मध्यकालीन एवं अप्रगतिशील समाज को रूपान्तरित करके आर्थिक, औद्योगिक एवं व्यावसायिक उन्नति की शिक्षा में उन्मुख किया जाना सम्भव है। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए शिक्षा से अधिक उत्तम साधन और कोई नहीं है। इस सन्दर्भ में **"आयोग"** ने लिखा है[1]—**"अन्य साधन सहायता दे सकते हैं और वास्तव में कभी-कभी उनका अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव हो सकता है। किन्तु, शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली ही वह साधन है, जो सब व्यक्तियों तक पहुँच सकती है।"**

"Other agencies may help and can indeed sometimes have a more apparent impact. But the national system of education is the only instrument that can reach all the people." **—Education Commission Report,** p. 4.

"आयोग" ने अपने प्रतिवेदन में शिक्षा की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विषय में जो विचार अंकित किए, उनको संसद के सदस्यों, विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों, राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों और भारतीय विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों ने कुछ संशोधनों के पश्चात् स्वीकार किए। इसी के आधार पर भारत-सरकार ने शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को सरकारी प्रस्ताव के रूप में 24 जुलाई, 1968 को जारी किया।

स्वतन्त्र भारत की इस प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में 17 कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है। इनके अन्तर्गत शिक्षा के सब महत्त्वपूर्ण पक्षों, सिद्धान्तों, स्तरों एवं संरचना को स्थान दिया गया है और शिक्षा के आधारभूत लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को भी निर्धारित किया गया है। इसमें निहित 17 कार्यक्रम अधोलिखित हैं[2]—

1. परीक्षाओं में सुधार,
2. खेलकूद की व्यवस्था,
3. कार्य-अनुभव एवं राष्ट्रीय सेवा,
4. शैक्षिक अवसरों में समानता की स्थापना,
5. साक्षरता एवं वयस्क-शिक्षा का प्रसार,
6. अल्पसंख्यकों की शिक्षा की व्यवस्था,
7. कृषि एवं उद्योगों के लिए शिक्षा का विकास,
8. विज्ञान एवं अनुसंधान की शिक्षा का समान स्तर,
9. अध्यापकों के वेतन, शिक्षा एवं पदस्थिति में सुधार,

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 284.
2. *Hindustan Year-Book*, 1969. p. 179.

10. सस्ती पाठ्य-पुस्तकों के स्तर एवं उत्पादन में सुधार,

11. त्रिभाषा-सूत्र एवं प्रादेशिक भाषाओं का विकास,

12. प्रतिभाशाली छात्रों की खोज एवं उनकी प्रतिभा का अधिकतम विकास,

13. अल्पकालीन शिक्षा एवं पत्राचार-पाठ्यक्रमों की विशाल पैमाने पर व्यवस्था,

14. 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था,

15. माध्यमिक स्तर पर तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार,

16. उच्च शिक्षा के केन्द्रों की सुविधाओं में विस्तार और स्नातकोत्तर-स्तर पर अनुसंधान एवं पाठ्यक्रमों में सुधार, तथा

17. शिक्षा की संरचना—10 वर्ष की सामान्य शिक्षा, 2 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा एवं 3 वर्ष का प्रथम डिग्री कोर्स।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1979
(National Education Policy, 1979)

मार्च 1977 में भारत में जनता दल की सरकार बनी। तत्कालीन सरकार ने अप्रैल 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का प्रारूप संसद में प्रस्तुत किया। परन्तु यह शिक्षा नीति कागजों पर रही क्योंकि 1980 में पुनः सत्ता का परिवर्तन हो गया। केन्द्र में पुनः कांग्रेस की सरकार बनी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1979 की प्रस्तावना में कहा गया—"शिक्षा की आदर्श प्रणाली को लोगों को यह जानने के लिए तत्पर बनाना चाहिए कि उनकी शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताएँ क्या हैं और उनका अधिकतम विकास किस प्रकार किया जा सकता है। आदर्श शिक्षा-प्रणाली लोगों में सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूकता विकसित करके उनमें उत्तम चरित्र का विकास करती है और समाज के उत्तरदायी सदस्यों के रूप में उन्हें उत्तम जीवन व्यतीत करना सिखाती है।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1979 की प्रमुख विशेषताएँ
(Chief Characteristics of National Education Policy, 1979)

1. इस नीति में सार्वभौम प्रारम्भिक शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता प्रदान की गई। इस शिक्षा में भाषा, गणित, कला आदि विषयों के अध्यापन पर बल दिया गया। इस शिक्षा का उद्देश्य वैज्ञानिक स्वभाव (Scientific Temper) का विकास निर्धारित किया गया।

2. सार्वभौम प्रारम्भिक शिक्षा के विकास के लिये 'कॉमन स्कूल पद्धति' की स्थापना पर बल दिया गया।

3. 'कॉमन स्कूल पद्धति' की मुख्य विशेषता 'पड़ौसी विद्यालय योजना' (Neighbourhood School Plan) है। इस योजना में पड़ौस के समस्त बच्चों को नामांकित करने की योजना था जिससे बच्चों में समान रुचियों तथा सामाजिक एकीकरण की भावना का विकास किया जा सके।

4. इस शिक्षा-नीति की दूसरी प्रमुख प्राथमिकता प्रौढ़ शिक्षा थी। नीति में कहा गया कि इस समय 230 मिलियन व्यक्ति निरक्षर हैं। ये समाज के गरीबों तथा उपेक्षित वर्गों से सम्बन्धित हैं। राष्ट्र का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह इनको शिक्षित करें। अतः 2 अक्टूबर 1978 को जो राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (NAEP) औपचारिक रूप में शुरू किया गया। उसका उद्देश्य 1978-79 से 1983-84 तक की अवधि में 15-35 आयु वर्ग के 10 करोड़ असाक्षर व्यक्तियों को प्रौढ़ शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करना निर्धारित किया गया। यह कार्यक्रम बुनियादी साक्षरता की सुविधाएँ देने के साथ-साथ कार्यात्मक कुशलता बढ़ाने का लक्ष्य लेकर भी शुरू किया गया।

5. इस नीति में प्रौढ़ शिक्षा को पुनः संशोधित न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Revised Minimum Needs Programme—RMNP) का एक अभिन्न अंग माना गया जिसमें निम्नलिखित पर बल दिया गया—

(i) प्रौढ़ शिक्षा को गरीबों तक पहुँचाना।

(ii) इस कार्यक्रम को विकासात्मक विभागों से सम्बन्धित करना।

(iii) इसके क्षेत्रीय नियोजन को एकीकृत करना।

(iv) इस कार्यक्रम को ग्रामीण क्षेत्रों में चलाना क्योंकि इन क्षेत्रों में असाक्षरों की संख्या अधिक थी।

(v) इस कार्यक्रम को सतत् शिक्षा से जोड़ना।

6. इस शिक्षा-नीति की तीसरी प्राथमिकता माध्यमिक शिक्षा थी। इस शिक्षा को स्वयं में पूर्ण बनाने पर बल दिया गया जिससे बालक इसको प्राप्त करके अपने जीवन में प्रवेश कर सके।

7. माध्यमिक शिक्षा को कम शास्त्रीय बनाने पर बल दिया गया। इसमें विभिन्नीकृत पाठ्यक्रमों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया।

8. माध्यमिक शिक्षा को दो धाराओं—सामान्य तथा व्यावसायिक में बाँटा गया।

9. माध्यमिक शिक्षा के विकास एवं विस्तार में समुदाय के सहयोग पर बल दिया गया।

10. शिक्षा-नीति में उच्च शिक्षा की भूमिका को स्वीकार किया गया। परन्तु इस स्तर पर प्रवेश को सीमित करने पर बल दिया गया। इस शिक्षा के विस्तार के लिये पत्राचार-पाठ्यक्रम, अंशकालीन पाठ्यक्रम, स्वयं के समय के अनुकूल अध्ययन कार्यक्रम आदि को महत्वपूर्ण माना।

11. शैक्षिक स्वतन्त्रता पर बल दिया जाये।

12. शिक्षा में नवीन प्रयोगों को प्रोत्साहन दिया जाय।

13. दुर्बल एवं पिछड़े वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान की जाये।

14. सामान्य स्कूलों के समीप स्थित पब्लिक स्कूलों के समीकरण पर बल दिया जाये।

15. शिक्षा-नीति में 8+4+3 की शिक्षा संरचना को स्वीकार किया गया। इसमें 8 वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary education), 4 वर्षीय माध्यमिक शिक्षा तथा 3 वर्षीय

उच्च शिक्षा को स्थान दिया गया। इसमें कहा गया कि यदि विश्वविद्यालय चाहें तो वे 2 वर्ष का पास कोर्स तथा 3 वर्ष का आनर्स कोर्स रख सकती हैं।

16. सामाजिक-आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए तकनीकी शिक्षा को सभी स्तरों पर संगठित किया जाय। प्रत्येक स्तर की तकनीकी शिक्षा के कोर्सों का पुनर्गठन ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

17. सभी राज्यों में कृषि-शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार के लिए कदम उठाये जायें। प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय में प्रमुखतः अनुसंधान कार्य पर बल दिया जाय। ये अनुसंधान क्षेत्र की भूमि, जलवायु आदि के अनुकूल होने चाहिए जिससे उस राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

18. कृषि-विश्वविद्यालय ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए कृषि-विज्ञान केन्द्र स्थापित करें।

19. सांस्कृतिक कार्यक्रम की एक रचनात्मक योजना का विकास करना जिससे संस्कृति को सभी स्तरों पर शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जा सके।

20. शारीरिक शिक्षा को शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाया जाय।

21. शिक्षा के सभी स्तरों पर (प्राथमिक शिक्षा को छोड़कर) क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए।

22. त्रिभाषा-सूत्र को माध्यमिक स्तर पर लागू किया जाय।

23. सार्वजनिक परीक्षा को वस्तुपरक तथा विश्वसनीय बनाया जाय।

24. रटन्त विद्या को निरुत्साहित किया जाय।

25. प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालीय स्तर (प्रथम डिग्री) के अन्त पर सार्वजनिक परीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

26. आन्तरिक मूल्यांकन पद्धति को लागू किया जाय। साथ ही क्रेडिट (Credit) प्रणाली को लागू किया जाय।

27. क्षेत्रीय असन्तुलनों को दूर करने के लिए कारगर कदम उठाये जायें।

28. लड़कियों, अनुसूचित जातियों, अनु० जनजातियों, पिछड़े वर्गों, मलीन बस्तियों के बच्चों आदि की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किये जायें जिससे शैक्षिक समानता प्राप्त करने में सहायता मिल सके।

29. शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन किया जाय जिससे इस शिक्षा को वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा सके।

30. सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए कारगर कदम उठाये जायें।

31. अल्पसंख्यकों की शिक्षा के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जाय। इन समुदायों को अपने विद्यालय खोलने की सुविधाएँ प्रदान की जायें।

32. भारत सरकार प्रत्येक पाँच वर्ष बाद इस नीति की समीक्षा करेगी और अनुभवों के आधार पर उसमें संशोधन करेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

(NATIONAL EDUCATION POLICY, 1986)

जब कभी नवचेतना की आवश्यकता प्रतीत हुई है, तभी शिक्षा ने सदैव एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हम 21वीं सदी में पदार्पण करने वाले हैं तथा शिक्षा की

चुनौतियाँ ज्ञान की खोज पर बल दे रही हैं ताकि आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा-व्यवस्था बनाने के सम्भव तरीकों पर कुछ प्रकाश डाला जा सके। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है तथा भारत में शताब्दियाँ दशकों के रूप में बदलती जा रही हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से शिक्षा में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के लाने में सन् 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की अहम् भूमिका रही है। परन्तु इस शिक्षा नीति के अधिकांश सुझाव कार्य-रूप में परिणत न हो सके, जिसके फलस्वरूप विभिन्न वर्गों तक शिक्षा को नहीं पहुँचाया जा सका। साथ ही शिक्षा का विस्तार एवं स्तर का सुधार आवश्यकतानुसार न हो सका। इन समस्याओं का हल निकालना समय की प्रथम आवश्यकता है।

भारतीय विचारधारा के अनुसार मनुष्य स्वयं में बेशकीमती सम्पदा है, अमूल्य राष्ट्रीय संसाधन है। आवश्यकता इस बात की है कि उसका पालन-पोषण गतिशील एवं संवेदनशील हो। प्रत्येक व्यक्ति का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है, जन्म से मृत्युपर्यन्त जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में उसकी अपनी समस्याएँ एवं आवश्यकताएँ होती हैं। विकास की इस पेचीदा और गतिशील प्रक्रिया में शिक्षा अपना उत्प्रेरक योगदान दे सके, इसके लिए बहुत सावधानी से योजना बनाने तथा उस पर पूरी तरह से अमल करने की आवश्यकता है। आज भारत राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से ऐसे दौर से गुजर रहा है जिससे परम्परागत मूल्यों (Traditional Values) के ह्रास का खतरा पैदा हो गया है और समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतन्त्र तथा व्यावसायिक नैतिकता के लक्ष्यों की प्राप्ति में बराबर बाधाएँ आ रही हैं।

ग्रामों में दिन-प्रतिदिन की सहूलियतों के अभाव में पढ़े-लिखे युवक ग्रामों में रहने के लिए तैयार नहीं हैं इसलिए ग्रामीण तथा नगरीय जीवन के अन्तर को कम करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के विविध तथा व्यापक साधन उपलब्ध कराने की बहुत आवश्यकता है।

आने वाले दशकों में जनसंख्या की बढ़ती हुई गति पर काबू करना होगा। इस समस्या के समाधान के लिए महिलाओं को साक्षर तथा शिक्षित करना होगा। अगले दशकों के नवीन तनावों से निपटने के लिए मानव संसाधनों को नवीन ढंग से विकसित करना होगा। अतः इन नवीन चुनौतियों तथा सामाजिक आवश्यकताओं से निपटने के लिए भारत सरकार ने एक नई शिक्षा-नीति तैयार की जो सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नाम से प्रसिद्ध है। इस राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के प्रारूप में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का ढाँचा तैयार किया गया।

1. राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली

(NATIONAL SYSTEM OF EDUCATION)

इस शिक्षा-प्रणाली की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

1. राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का मूल मन्त्र यह है कि एक निश्चित स्तर तक प्रत्येक विद्यार्थी को बिना किसी जाति-पाँत, धर्म, स्थान या लिंग भेद के, लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो।

उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार उपयुक्त रूप से वित्तपोषित कार्यक्रमों को प्रारम्भ करेगी। सन् 1968 की नीति में अनुशंसित सामान्य स्कूली प्रणाली (Common School System) को क्रियान्वित करने की दिशा में प्रभावी कदम उठाये जायेंगे।

2. राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश के लिए 10+2+3 की संरचना को स्वीकार किया गया है। इस ढाँचे के पहले दस वर्षों के सम्बन्ध में यह प्रयास किया जायेगा कि उसका विभाजन इस प्रकार हो—प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education) में 5 वर्ष का प्राथमिक स्तर तथा 3 वर्ष का उच्च प्राथमिक स्तर तथा उसके बाद 2 वर्ष का हाईस्कूल।

3. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पूरे देश के लिए एक राष्ट्रीय शिक्षाक्रम (Curriculum) के ढाँचे पर आधारित होगी जिसमें एक 'सामान्य केन्द्रिक' (Common Core) होगा और अन्य तत्वों के बारे में लचीलापन होगा जिन्हें स्थानीय पर्यावरण तथा परिवेश के अनुसार ढाला जा सकेगा।

'सामान्य केन्द्रिक' में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियाँ (Constitutional Obligations) तथा राष्ट्रीय अस्मिता (National Identity) से सम्बन्धित तत्व होंगे। इन तत्वों को इस प्रकार से संजोया जायेगा जिससे राष्ट्रीय मूल्यों को विकसित किया जा सके। इन राष्ट्रीय मूल्यों में निम्नलिखित बातें शामिल होंगी—

भारत की समान सांस्कृतिक धरोहर, लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री-पुरुषों के बीच समानता, पर्यावरण का संरक्षण, सामाजिक अवरोधों को दूर करना, सीमित परिवार का महत्त्व तथा वैज्ञानिक स्वभाव का विकास।

4. नवीन शिक्षा-प्रणाली आने वाली सन्तति में विश्वव्यापी दृष्टिकोण को सुदृढ बनाने, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना का विकास करे।

5. समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में सभी को शिक्षा का समान अवसर ही उपलब्ध नहीं कराया जायेगा वरन् सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान किये जायेंगे। अतः राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल तथा जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रहों तथा कुण्ठाओं को समाप्त किया जाय।

6. प्रत्येक चरण पर दी जाने वाली शिक्षा का न्यूनतम स्तर निर्धारित किया जायेगा। ऐसे उपाय भी किये जायेंगे कि विद्यार्थी देश के विभिन्न भागों की संस्कृति, परम्पराओं तथा सामाजिक व्यवस्था को समझ सकें। युवा वर्ग को अपनी कल्पना और सूझबूझ के अनुसार देश की महिमा तथा गरिमा पहचानने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

7. देश में सम्पर्क भाषा को बढ़ावा देने के लिए प्रयास किया जायेंगा।

8. उच्च शिक्षा, सामान्य तथा खास तौर से तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता रखने वाले प्रत्येक छात्र को बराबर के मौके दिये जाने की व्यवस्था की जायेगी। साथ ही एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाकर अध्ययन करने की सुविधा दी जायेगी। विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा की अन्य संस्थाओं में सार्वदेशिक स्वरूप पर बल दिया जायेगा।

9. शोध, विकास तथा विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के विषयों में देश की विभिन्न संस्थाओं के बीच व्यापक तानाबाना (Network) स्थापित करने के लिए विशेष व्यवस्था की जायेगी जिससे वे अपने-अपने साधन सम्मिलित कर राष्ट्रीय महत्त्व की परियोजनाओं में भाग ले सकें।

10. आजीवन शिक्षा शैक्षिक प्रक्रिया का मूलभूत लक्ष्य है और सार्वजनिक साक्षरता उसका अभिन्न अंग। युवा वर्ग, गृहणियों, किसानों, मजदूरों, व्यापारियों आदि को अपनी पसन्द व सुविधा के अनुसार अपनी शिक्षा जारी रखने के अवसर प्रदान किये जायेंगे। इसलिए भविष्य में खुली शिक्षा (Open Education) तथा दूरस्थ शिक्षण (Distance Learning) राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंग होंगे।

11. शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा में असमानताओं को कम करने के लिए, प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए प्रौढ़ साक्षरता के लिए, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी अनुसन्धान के लिए इस प्रकार के अन्य लक्ष्यों के लिए साधन जुटाने का दायित्व समूचे राष्ट्र पर होगा।

आगे आने वाले वर्षों में निम्नलिखित संस्थाएँ राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी—

1. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)।
2. अखिल भारतीय तकनीकी परिषद् (All India Council of Technical Education)।
3. भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् (Indian Council of Agricultural Research)।
4. भारतीय चिकित्सा परिषद् (Indian Medical Council)।
5. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training)।
6. राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन संस्थान (National Institute of Educational Planning and Administration—NIEPA)।
7. अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा संस्थान (International Institute of Science and Technology Education)।

उपर्युक्त सभी संस्थाओं को एक समेकित योजना के द्वारा जोड़ा जायेगा ताकि इनमें आपस में कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित हो तथा अनुसन्धान और स्नातकोत्तर शिक्षा के कार्यक्रम मजबूत बन सकें।

2. समानता के लिए शिक्षा
(EDUCATION OF EQUALITY)

नई शिक्षा नीति विषमताओं को दूर करने पर विशेष बल देगी और अब तक वंचित रहे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के समान अवसर मुहय्या करेगी—

(अ) महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा : Education for Women's Equality

इसके लिये निम्नलिखित कदम उठाये जायेंगे—

(i) शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जायेगा।

(ii) महिलाओं से सम्बन्धित अध्ययन को विभिन्न पाठ्यचर्याओं के भाग के रूप में प्रोत्साहन दिया जायेगा और शिक्षा-संस्थाओं को महिला विकास के सक्रिय कार्यक्रम शुरू करने के लिये प्रेरित किया जायेगा।

(iii) महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रुकावटों को दूर करने को जिनके कारण लडकियाँ प्रारम्भिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जायेगी।

(ब) अनुसूचित जातियों की शिक्षा : Education of Scheduled Castes—अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास पर बल दिया जायेगा जिससे वे गैर-अनुसूचित जाति के लोगों के बराबर आ सकें। इस मकसद के तहत नई नीति में उपाय सोचे गये हैं—

(i) निर्धन परिवारों को इस प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाये कि वे अपने बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक नियमित रूप से स्कूल भेज सकें।

(ii) सफाई कार्य, पशुओं की चमड़ी उतारने तथा चर्म शोधन जैसे व्यवसायों में लगे परिवारों के बच्चों के लिये मैट्रिक-पूर्व छात्रवृत्ति योजना पहली कक्षा से शुरू की जायेगी।

(iii) अनुसूचित जातियों से शिक्षकों की नियुक्ति पर विशेष ध्यान देना।

(iv) जिला केन्द्रों पर अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिये छात्रावासों की सुविधाएँ क्रमिक रूप से बढाना।

(v) स्कूल भवनों, बालवाड़ियों तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का स्थान चुनते समय अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की सहूलियत पर विशेष ध्यान देना।

(vi) अनुसूचित जातियों के लिये शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार करने के लिये राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी के कार्यक्रम के साधनों का उपयोग करना।

(vii) अनुसूचित जातियों का शिक्षा की प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने हेतु लगातार नवीन तरीकों की खोज जारी रखना।

(स) अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा : Education of Scheduled Tribes—इन जनजातियों को अन्य लोगों की बराबरी पर लाने के लिये निम्नलिखित कदम तत्काल उठाये जायेंगे—

(i) आदिवासी इलाकों में प्राथमिक शालाएँ खोलने के काम को प्राथमिकता दी जायेगी।

(ii) आदिवासी भाषाओं के माध्यम से प्रारम्भ में शिक्षा दी जायेगी।

(iii) पढ़े-लिखे प्रतिभाशाली आदिवासी युवकों को प्रशिक्षण देकर अपने क्षेत्र में ही शिक्षक बनने के लिये प्रोत्साहन दिया जायेगा।

(iv) बड़ी संख्या में आश्रमशालाएँ तथा आवासीय विद्यालय खोले जायेंगे।

(v) उच्च शिक्षा के लिये दी जाने वाली छात्रवृत्तियों में तकनीकी तथा व्यावसायिक पढ़ाई के लिये अधिक महत्व दिया जायेगा।

(vi) आँगनवाडियाँ, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र आदिवासी बहुल इलाकों में प्राथमिकता के आधार पर खोले जायेंगे।

(vii) आदिवासियों की समृद्ध सांस्कृतिक अस्मिता तथा विशाल सृजनात्मक प्रतिभा के बारे में चेतना सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों का अनिवार्य अंग होगी।

(द) विकलांग : Handicapped—शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से विकलांगों को शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे समाज के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकें। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपाय किये जायेंगे—

(i) विकलांगता अगर हाथ पैर की या मामूली सी है, तो ऐसे बच्चों की पढ़ाई आम बच्चों के साथ हो।

(ii) गम्भीर रूप से विकलांग बच्चों के लिये छात्रावास वाले विद्यालयों की व्यवस्था की जायेगी। ऐसे विद्यालय जिला मुख्यालयों पर स्थापित किये जायेंगे।

(iii) विकलांगों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जायेगी।

(iv) विकलांगों की शिक्षा के लिये स्वैच्छिक प्रयासों को हर सम्भव तरीके से प्रोत्साहित किया जायेगा।

3. प्रौढ़ शिक्षा
(ADULT EDUCATION)

प्रौढ़ शिक्षा के वर्तमान कार्यक्रमों का पुनरावलोकन करके उन्हें मजबूत बनाया जायेगा। समूचे देश को निरक्षरता उन्मूलन के लिये तैयार करना होगा। विभिन्न पद्धतियों तथा माध्यमों का उपयोग करते हुए प्रौढ़ तथा सतत् शिक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम कार्यान्वित किया जायेगा। इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के कार्यक्रम आयेंगे—

(i) ग्रामीण क्षेत्रों में सतत् शिक्षा केन्द्रों की स्थापना।

(ii) नियोजकों, मजदूर संगठनों तथा सम्बन्धित सरकारी एजेन्सियों के द्वारा श्रमिकों की शिक्षा।

(iii) उच्च शिक्षा की संस्थाओं द्वारा सतत शिक्षा।

(iv) जन-शिक्षण तथा समूह शिक्षण के साधन के रूप में रेडियो, दूरदर्शन तथा फिल्मों का उपयोग।

(v) दूर-शिक्षण (Distance Learning) के कार्यक्रम।

(vi) स्वाध्याय और स्वयं-शिक्षण (Self-learning) में सहायता की व्यवस्था।

(viii) आवश्यकता और रुचि पर आधारित व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि।

4. विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का पुनर्गठन
(REORGANIZATION OF EDUCATION AT DIFFERENT STAGES)

(अ) शिशुओं की देखभाल तथा शिक्षा : Early Childhood Care and Education—बच्चों के विकास के विभिन्न पहलुओं को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। पौष्टिक भोजन व स्वास्थ्य को और बच्चों के सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक तथा भावनात्मक विकास को समेकित रूप में देखना होगा। इस दृष्टि से निम्नलिखित पर बल दिया जायेगा—

(i) शिशुओं की देखभाल और शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा और इसे समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम (Integrated Child Development Services Programme) से जोड़ा जायेगा।

(ii) प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के संदर्भ में शिशुओं की देखभाल के केन्द्र खोले जायेंगे।

(iii) शिशुओं की देखभाल और शिक्षा के केन्द्र पूरी तरह बाल-केन्द्रित होंगे।

(iv) इस कार्यक्रम में स्थानीय समुदाय का पूरा सहयोग लिया जायेगा।

(v) शिशुओं की देखभाल और पूर्व प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रमों को पूरी तरह समेकित किया जायेगा।

(ब) प्रारम्भिक शिक्षा : Elementary Education—प्रारम्भिक शिक्षा की नई दिशा में दो बातों पर बल दिया जायेगा—

(क) 14 वर्ष की अवस्था तक के सब बच्चों को विद्यालयों में भर्ती तथा उनका विद्यालय में टिके रहना, तथा

(ख) शिक्षा की गुणवत्ता में काफी सुधार।

(i) विद्यालय के वातावरण को प्यार, अपनत्व तथा प्रोत्साहन से युक्त बनाया जायेगा।

(ii) बालक की शिक्षा-पद्धति को बाल-केन्द्रित तथा गतिविधि पर आधारित किया जायेगा।

(iii) प्राथमिक स्तर पर बच्चों को किसी भी कक्षा में फेल न करने की प्रथा को जारी किया जायेगा।

(iv) मूल्यांकन वर्ष भर में फैला दिया जायेगा।

(v) शिक्षा की व्यवस्था में से शारीरिक दण्ड को सर्वथा हटा दिया जायेगा।

(vi) प्राथमिक विद्यालयों में आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की जायेगी। 1986 की कार्य-योजना में इसके तहत ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड की योजना को लागू किया गया।

अनौपचारिक शिक्षा : Non-Formal Education—ऐसे बच्चे जो बीच में स्कूल छोड़ गये हैं या जो ऐसे स्थानों पर रहते हैं जहाँ स्कूल नहीं हैं या जो काम में लगे हैं और वे लडकियाँ जो दिन के स्कूल में पूरे समय नहीं जा सकतीं, इन सबके लिये एक विशाल और व्यवस्थित अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जायेगा।

(स) माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education—माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर छात्रों को विज्ञान, मानविकी और सामाजिक विज्ञानों की विशिष्ट भूमिकाओं का ज्ञान होने लगता है। इसी अवस्था पर बच्चों को इतिहासबोध तथा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य सही ढंग से दिया जा सकता है। साथ ही उन्हें अपने संवैधानिक दायित्वों तथा नागरिकों के अधिकारों से भी परिचित कराना चाहिये। अच्छे पाठ्यक्रम द्वारा उनमें चेतन रूप से कर्मशीलता तथा करुणाशील सामाजिक संस्कृति के संस्कार डाले जायें। इस स्तर पर विशेष संस्थाओं में व्यवसायों की शिक्षा के द्वारा और माध्यमिक शिक्षा की पुनर्रचना के द्वारा देश के आर्थिक विकास के लिये मूल्यवान जनशक्ति जुटाई जायें। माध्यमिक शिक्षा को सुलभ तथा उसके दृढ़ीकरण करने के लिये निम्नांकित कदम उठाये जायेंगे—

(i) जिन बच्चों में विशेष प्रतिभा या अभिरुचि हो, उन्हें अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये गति निर्धारक विद्यालयों (Pace-setting Schools) की स्थापना की जायेगी। कार्य योजना 1986 में ऐसे विद्यालय खोलने के लिये कदम उठाये गये। आज तक ऐसे (नवोदय विद्यालय) 342 विद्यालय स्थापित किये जा चुके हैं।

(ii) व्यावसायिक शिक्षा स्वयं में शिक्षा की एक विशिष्ट धारा होगी जिसका उद्देश्य कई क्षेत्रों के चुने हुए काम-धन्धों के लिये छात्रों को तैयार करना होगा।

(iii) उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों को दस प्रतिशत 1990 तक तथा 25 प्रतिशत 1995 तक व्यावसायिक पाठ्यचर्या में लाया जायेगा।

(iv) व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण नियमित रूप से किया जायेगा।

(v) माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों के विविधीकरण को बढावा देने के लिये सरकार अपने अधीन की जाने वाली भर्ती की नीति पर भी पुनः विचार करेगी।

(द) उच्च शिक्षा : Higher Education—उच्च शिक्षा से लोगों को इस बात का अवसर मिलता है कि वे मानव जाति की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में आई हुई समस्याओं पर विचार कर सकें। विशिष्ट ज्ञान तथा कौशलों के प्रसारण द्वारा उच्च शिक्षा राष्ट्र के विकास में सहायक बनती है। अतः समाज के जीवन में उसकी निर्णायक भूमिका है। शैक्षिक पिरामिड के शीर्ष पर होने के नाते समूची शिक्षा व्यवस्था के लिये शिक्षक तैयार करने में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। ज्ञान के अभूतपूर्व विस्फोट को देखते हुए उच्च शिक्षा को अधिक गतिशील बनाना होगा। साथ ही अनजाने अध्ययन-क्षेत्रों में निरन्तर कदम बढ़ाने होंगे। प्रचलित उच्च शिक्षा संस्थाओं (विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों) को दृढ़ करने तथा उनकी सुविधाओं के विस्तार के लिये कार्य करना होगा। अनुबन्धन को घटाकर बड़ी संख्या में कॉलेजों को स्वायत्तता देने पर बल दिया जायेगा। विश्वविद्यालयों के कुछ चुने हुए विभागों को भी स्वायत्तता देने को प्रोत्साहित किया जायेगा। स्वायत्तता तथा स्वतंत्रता के साथ जबावदेही भी अवश्य रहेगी।

(i) विशिष्टीकरण की माँग को उत्तम ढंग से पूरा करने के लिये पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों को नये सिरे से तैयार किया जायेगा।

(ii) राज्य स्तर पर उच्च शिक्षा का नियोजन तथा उच्च शिक्षा संस्थाओं में समन्वय सम्पन्न करने के लिये शिक्षा-परिषदें बनायी जायेंगी।

(iii) शिक्षा के स्तर पर निगरानी रखने के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) तथा उक्त परिषदें समन्वय पद्धतियाँ बनायेंगी।

(iv) शिक्षा संस्थाओं में न्यूनतम आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की जायेगी और शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश उनकी ग्रहण क्षमता के अनुसार किया जायेगा।

(v) शिक्षण-विधियों को बदलने के प्रयास किये जायेंगे।

(vi) दृश्य-श्रव्य साधनों तथा इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भ किया जायेगा।

(vii) विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान के लिये अधिक सहायता दी जायेगी तथा उसकी उच्च गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिये कदम उठाये जायेंगे।

(viii) भारत विद्या (Indology), मानविकी तथा सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धान के लिये पर्याप्त सहायता दी जायेगी।

(ix) अन्तरविषयी अनुसन्धान (Interdisciplinary Research) का विकास करने की दृष्टि से सामान्य, कृषि, चिकित्सा, कानून तथा अन्य व्यावसायिक क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के लिये एक राष्ट्रीय निकाय स्थापित किया जायेगा।

(x) भाषिक क्षमता पर विशेष बल दिया जायेगा।

(xi) उच्च शिक्षा के लिये अधिक अवसर देने तथा शिक्षा को जनतांत्रिक बनाने की दृष्टि से खुले विश्वविद्यालय की प्रणाली को शुरू किया जायेगा।

(xii) कुछ चुने हुए क्षेत्रों में डिग्री को नौकरी से अलग करने के लिये कदम उठाये जायेंगे।

(xiii) नौकरियों को डिग्री से अलग करने के साथ-साथ क्रमिक रूप में एक राष्ट्रीय परीक्षण सेवा प्रारम्भ की जायेगी।

(xiv) ग्रामीण विश्वविद्यालय के नवीन ढाँचे को सुदृढ़ किया जायेगा और इसे महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचारों के अनुरूप विकसित किया जायेगा।

5. तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा
(TECHNICAL AND MANAGEMENT EDUCATION)

तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा का पुनर्गठन करते समय नई शताब्दी के आरम्भ में जिस प्रकार की परिस्थिति की सम्भावना है, उसे ध्यान में रखना होगा। अर्थव्यवस्था, सामाजिक वातावरण, उत्पादन तथा प्रबन्धकीय प्रक्रियाओं में संभावित परिवर्तन, ज्ञान में तेजी से होते फैलाव तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में होने वाली प्रगति को इस संदर्भ में देखना होगा।

(i) अर्थव्यवस्था के बुनियादी ढाँचे तथा सेवा क्षेत्रों के साथ-साथ असंगठित ग्रामीण क्षेत्र में भी उन्नत प्रौद्योगिकी तथा प्रबन्धकीय जनशक्ति की बेहद आवश्यकता है। अतः सरकार को इस ओर ध्यान देना होगा।

(ii) वर्तमान तथा उभरती प्रौद्योगिकी दोनों में सतत् शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जायेगा।

(iii) जनशक्ति सूचना प्रणाली को विकसित तथा सुदृढ़ किया जायेगा।

(iv) संगणक-साक्षरता (Computer literacy) के कार्यक्रम स्कूल स्तर से ही बड़े पैमाने पर आयोजित किये जायेंगे।

(v) औपचारिक पाठ्यक्रमों में दाखिले की वर्तमान कड़ी शर्तों के कारण साधारण लोगों में अधिकांश को आज तकनीकी तथा प्रबन्धकीय शिक्षा नहीं मिलती। ऐसे लोगों के लिये दूर-शिक्षण सुविधाएँ जिनमें जनसंचार माध्यम का उपयोग भी शामिल है, प्रदान की जायेगी। तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा कार्यक्रम, पॉलिटेकनीक शिक्षा सहित लचीली माड्यूलर पद्धति के अनुसार चलेंगे। इनके लिये पर्याप्त मार्गदर्शन और परामर्श सेवा भी उपलब्ध करायी जायेगी।

(vi) महिलाओं, आर्थिक तथा सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों एवं विकलांगों के लाभ के लिये तकनीकी शिक्षा के लिये समुचित औपचारिक तथा अनौपचारिक कार्यक्रम तैयार किये जायेंगे।

(vii) 'स्वयं रोजगार' को छात्रगण जीविका-विकल्प के रूप में स्वीकार करें। अतः इसके लिये उन्हें उद्यम-विषयक (Entrepreneurship) प्रशिक्षण दिया जायेगा जिसकी व्यवस्था डिग्री तथा डिप्लोमा स्तर पर माड्यूलर तथा वैकल्पिक कोर्सों द्वारा की जायेगी।

(viii) पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाने की सतत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नवीनीकरण द्वारा नई प्रौद्योगिकियों और विषयों को शुरू करना होगा तथा पुराने तथा अर्थहीन विषयों को क्रमशः हटाया जायेगा।

6. शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाना
(MAKING THE SYSTEM WORK)

शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने के लिये अग्रलिखित युक्तियाँ अपनायी जायेंगी—

(i) अध्यापकों को अधिक सुविधाएँ तथा साथ ही उनकी अधिक जवाबदेही।

(ii) छात्रों के लिये सेवा में सुधार तथा साथ ही उनके सही आचरण पर बल।

(iii) शिक्षा-संस्थाओं को अधिक सुविधाएँ दिया जाना।

(iv) राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर तय किये गये मानदण्ड के आधार पर शिक्षा-संस्थाओं के कार्य के मूल्यांकन की पद्धति का सृर्जन।

7. शिक्षा की विषय वस्तु तथा प्रक्रिया को नया मोड़ देना
(REORIENTING THE CONTENT AND PROCESS OF EDUCATION)

इस समय शिक्षा की औपचारिक पद्धति और देश की समृद्ध एवं विविध सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच एक खाई है जिसे माटना अनिवार्य है। आधुनिक टेक्नॉलॉजी की धुन में यह नहीं होना चाहिए कि नई पीढ़ी भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के मूल से ही कट जाये। संस्कृतिविहीनता, अमानवीयता तथा अजनबीकरण (Alienation) के भाव से हर कीमत पर बचना होगा। परिवर्तनपरक टेक्नॉलॉजी और सतत् चली आ रही देश की सांस्कृतिक परम्परा में एक सुन्दर समन्वय स्थापित करना होगा।

शिक्षा की पाठ्यचर्या तथा प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक विषय-वस्तु के समावेश द्वारा अधिक से अधिक रूपों में समृद्ध किया जायेगा। इस बात का प्रयास होगा कि सौन्दर्य, सामंजस्य तथा परिष्कार के प्रति बच्चों की संवेदनशीलता बढ़े। सांस्कृतिक परम्परा में निष्णात व्यक्तियों को शिक्षा में सांस्कृतिक तत्वों का योगदान करने के लिए आमंत्रित किया जायेगा। इस कार्य में लिखित दोनों परम्पराएँ शामिल होंगी। सांस्कृतिक परम्परा को कायम रखने तथा आगे बढ़ाने के लिए परम्परागत तरीकों से पढ़ाने वाले गुरुओं तथा उस्तादों की सहायता की जायेगी और उनके कार्य को मान्यता दी जायेगी।

(i) ललित कलाओं, संग्रहालय-विज्ञान, लोक साहित्य आदि विशिष्ट विषयों पर उचित ध्यान दिया जायेगा।

(ii) मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था की जायेगी।

(iii) 1968 की शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास के प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया गया था। अब इस नीति को अधिक सक्रियता तथा सोद्देश्यता से लागू किया जायेगा।

(iv) पुस्तकों के विकास के साथ-साथ मौजूदा पुस्तकालयों के सुधार के लिए तथा नये पुस्तकालयों की स्थापना के लिए एक राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया जायेगा। प्रत्येक शिक्षा-संस्था में पुस्तकालय की सुविधा के लिए प्रावधान किया जायेगा और पुस्तकालयाध्यक्षों के स्तर को सुधारा जायेगा।

(v) शैक्षिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग उपयोगी जानकारी के लिए; अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा पुनः प्रशिक्षण के लिए, शिक्षा की गुणवत्ता (Quality) को सुधारने के लिए तथा कला एवं संस्कृति के प्रति जागरूकता और स्थायी मूल्यों के संस्कार उत्पन्न करने के लिए किया जायेगा। औपचारिक तथा अनौपचारिक (Nonformal) दोनों प्रकार की शिक्षा में इसका (Technology) प्रयोग होगा।

(vi) बच्चों के लिए उच्च कोटि के कार्यक्रमों तथा उपयोगी फिल्मों के निर्माण के लिए सक्रिय अभियान चलाया जायेगा।

(vii) कार्यानुभव (Work expereince) सभी स्तरों पर दी जाने वाली शिक्षा का एक आवश्यक अंग होगा।

(viii) पर्यावरण के प्रति जागरूकता विद्यालयों तथा कालेजों की शिक्षा का अंग होगी।

(ix) गणित एवं विज्ञान शिक्षा को सुदृढ़ किया जायेगा।

(x) विद्यालयों में कम्प्यूटर-शिक्षा का प्रवेश होगा।

(xi) खेल और शारीरिक शिक्षा सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न अंग होंगे।

(xii) परीक्षा में इस प्रकार सुधार किया जायेगा जिससे कि मूल्यांकन की एक वैध तथा विश्वसनीय प्रक्रिया उभर सके और सिखाने की प्रक्रिया में एक सशक्त साधन के रूप में काम आ सके। क्रियात्मक रूप में इसका अर्थ होगा—

1. अत्यधिक संयोग (Chance) तथा आत्मगतता (Subjectivity) के अंश को समाप्त करना।
2. रटाई पर जोर को हटाना।
3. ऐसी सतत् और सम्पूर्ण मूल्यांकन प्रक्रिया का विकास करना जिसमें शिक्षा के शास्त्रीय (Scholastic) तथा शास्त्रेत्तर (Non-Scholastic) पहलू समाविष्ट हो जायें और जो शिक्षण की पूरी अवधि में व्याप्त रहें।
4. शिक्षकों, छात्रों तथा माता-पिता के द्वारा मूल्यांकन की प्रक्रिया का प्रभावी प्रयोग।
5. परीक्षाओं के आयोजन में सुधार।
6. परीक्षा में सुधार के साथ-साथ शिक्षण सामग्री और शिक्षण-विधि में भी सुधार।
7. माध्यमिक स्तर से क्रमबद्ध रूप में सेमेस्टर प्रणाली का प्रारम्भ; तथा
8. अंकों के स्थान पर 'ग्रेड' का प्रयोग।

8. शिक्षा का प्रबन्ध

(MANAGEMENT OF EDUCATION)

शिक्षा की आयोजना तथा प्रबन्ध की व्यवस्था के पुनर्गठन को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी। इस सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जायेगा वे निम्नलिखित हैं—

1. शिक्षा की आयोजना और प्रबन्ध का दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य तैयार करना और उसे देश की विकासात्मक और जन-शक्ति विषयक आवश्यकताओं से जोड़ना।
2. विकेन्द्रीकरण तथा शिक्षा-संस्थाओं में स्वायत्तता की भावना उत्पन्न करना।
3. लोक भागीदारी को प्रधानता देना जिसमें गैर-सरकारी एजेंसियों का जुड़ाव तथा स्वैच्छिक प्रयास शामिल हैं।
4. शिक्षा की आयोजना और प्रबन्ध में अधिकाधिक संख्या में महिलाओं को शामिल करना।
5. प्रदत्त उद्देश्यों तथा मानदण्डों के सम्बन्ध में जवाबदेही (Accountability) के सिद्धान्त की स्थापना।

(क) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education) शैक्षिक विकास का पुनरावलोकन करेगा, शिक्षा में सुधार के लिए आवश्यक परिवर्तनों को सुनिश्चित करेगा और कार्यान्वयन सम्बन्धी देखरेख में निर्णायक भूमिका अदा करेगा।

(ख) राज्य सरकारें केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की तरह के राज्य शिक्षा सलाहकार बोर्ड स्थापित करेंगी। मानव संसाधन विकास से सम्बन्धित राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों के समाकलन के लिए कारगर उपाय उठाये जायेंगे।

(ग) उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए जिला शिक्षा बोर्डों की स्थापना की जायेगी और राज्य सरकारें यथाशीघ्र इस सम्बन्ध में कार्यवाही करेंगी।

(घ) विद्यालय संगमों (School Complexes) को विकसित किया जायेगा।

(ङ) गैर-सरकारी तथा स्वैच्छिक प्रयासों को, जिनमें समाजसेवी सक्रिय समुदाय भी शामिल हैं; प्रोत्साहन दिया जायेगा।

9. संसाधन तथा समीक्षा

(RESOURCES AND REVIEW)

यह सुनिश्चित किया जायेगा कि सातवीं पंचवर्षीय योजना में पूँजी निवेश जिस हद तक जरूरी होगा, उस हद तक बढ़ाया जायेगा। साथ ही आठवीं पंचवर्षीय योजना में यह राष्ट्रीय आय के 6 प्रतिशत से सर्वदा अधिक हो।

नई शिक्षा नीति के विभिन्न पहलुओं के कार्यान्वयन की समीक्षा प्रत्येक पाँच वर्षों में अवश्य ही की जायेगी। कार्यान्वयन की प्रगति और समय-समय पर उभरती हुई प्रवृत्तियों की जाँच करने के लिए मध्यावधि मूल्यांकन भी होंगे।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Write an essay of National Education Policy, 1968.
   राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 पर एक निबन्ध लिखिये।
2. Explain the main features of National Education Policy, 1979.
   1979 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. Compare and contrast National Education Policy, 1968 and 1979.
   1968 और 1979 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों की तुलना कीजिए।
4. Explain National System of Education as advocated in National Policy, 1986.
   1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रतिपादित राष्ट्रीय शिक्षा नीति को स्पष्ट कीजिए।
5. Explain the main features of the National Education Policy of 1986.
   1986 की राष्ट्रीय शिक्षा-नीति की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

●●

21

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा

EDUCATION IN FREE INDIA

"Education in India has expanded very rapidly since the attainment of independence." —Saiyidain & Gupta.

विषय-प्रवेश

15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता की सुरभि में भारतीय शिक्षा ने करवट बदली। पराधीनता के कारण भारत में जो विष फैल गया था, उसे दूर करने और जन-चेतना को जाग्रत करके, जनतन्त्र के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति सजग करने के लिए शिक्षा को एक नवीन दिशा देने का निश्चय किया गया है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर, जनवरी, 1948 में भारत के शिक्षा-मन्त्री ने एक अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन किया।

उस अवसर पर भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने उद्घाटन-भाषण में कहा—**"पराधीन भारत में जब कभी शिक्षा की योजना बनाने के लिए सम्मेलन होते थे, तब उनमें सामान्य रूप से कुछ संशोधनों के बाद प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को स्वीकार करने की प्रवृत्ति पाई जाती थी। किन्तु, अब हमें इस प्रवृत्ति का त्याग कर देना चाहिए और शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करके उसे देश की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप ढालना चाहिए।"**

पण्डित नेहरू के इस भाषण से अनुप्राणित होकर देश में शिक्षा को नई दिशा देने और उसकी बहुमुखी प्रगति के लिए जो चेष्टाएँ अब तक की गई हैं, उनका संक्षिप्त विवरण आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत है।

शिक्षा का उत्तरदायित्व

(RESPONSIBILITY OF EDUCATION)

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा-प्रशासन की नीति में कोई हेर-फेर नहीं हुआ है। जिस प्रकार 1935 के "भारत-सरकार अधिनियम" (Government of India Act) के अन्तर्गत शिक्षा का उत्तरदायित्व—प्रान्तीय सरकारों पर था, उसी प्रकार स्वतन्त्र भारत में संविधान के अनुसार यह उत्तरदायित्व—राज्य-सरकारों पर था। परन्तु संविधान में संशोधन करके

अब शिक्षा को समवर्ती सूची (Concurrent list) में स्थान दिया गया है जिस पर केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों को कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

भारतीय संविधान तथा शिक्षा

(INDIAN CONSTITUTION AND EDUCATION)

भारतीय संविधान में ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण धाराएँ एवं उपबन्ध हैं जिनका शिक्षा से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इन धाराओं तथा उपबन्धों का संक्षिप्त पुनर्विलोकन निम्नांकित पंक्तियों में किया जा रहा है—

धारा 28—"राज्य द्वारा पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा-संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, परन्तु प्राइवेट संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकेगी जिन्हें सरकार या राज्य ने मान्यता दे दी है या जिन संस्थाओं को सरकारी धन से सहायता मिलती है या जिन संस्थाओं का प्रबन्ध तो सरकार करती है परन्तु जो गैर-सरकारी धन से बनी हैं और चलती हैं और जिनके निर्माताओं और दाताओं ने साथ में यह शर्त लगा दी है कि उनमें धार्मिक शिक्षा दी जायेगी; किन्तु शर्त यह होगी कि उक्त संस्था में पढ़ने वाले किसी व्यक्ति को उक्त संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए अथवा धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिए अथवा उक्त संस्था की इमारत में उपस्थित होने के लिए उस समय तक बाध्य नहीं किया जायेगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह वयस्क न हो तो उसके संरक्षक ने, उसके लिए स्वीकृति न दे दी हो।"

धारा 29 (1)—"भारत के राज्य-क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासियों के किसी विभाग को, अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति बनाये रखने का अधिकार होगा।"

धारा 29 (2)—"राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा-संस्था में किसी नागरिक को धर्म, प्रजाति, जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश देने से नहीं रोका जायेगा।"

धारा 30—"धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार होगा।"

उक्त शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धार्मिक या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रशासन में है।

राज्य के नीति-निदेशक तत्व

धारा 41—"राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार यथाशक्ति काम पाने, शिक्षा पाने तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंग हानि तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का कार्य-साधक उपबन्ध करेगा।"

धारा 45—"राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से दस वर्ष के अन्तर्गत सब बच्चों के लिए, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।"

धारा 46—"राज्य, जनता के निर्बल वर्गों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों के शिक्षा तथा अर्थ-सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"

29 फरवरी, 1964 से उक्त मन्त्रालय को शिक्षा-मन्त्री की अध्यक्षता में रखा गया, जिसकी सहायता के लिए दो उपमन्त्री तथा एक राज्यमन्त्री रखा गया। सन् 1964-65 में शिक्षा-मन्त्रालय को पुनर्गठित किया गया और इसमें पाँच ब्यूरो तथा चार डिवीजनों की व्यवस्था की गई। ये पाँच ब्यूरो इस प्रकार थे—

1. विद्यालय शिक्षा (School Education),
2. उच्च शिक्षा (Higher Education),
3. छात्रवृत्तियाँ (Scholarships),
4. नियोजन तथा एंसीलरी शैक्षिक सेवाएँ (Planning and Ancillary Education Services), तथा
5. भाषाएँ, साहित्य तथा ललित कलाएँ (Languages, Literature and Fine Arts)।

उक्त मन्त्रालय में निम्न चार डिवीजन थे—

1. शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन (Physical Education and Recreation),
2. वैज्ञानिक अनुसन्धान (Scientific Research),
3. बाह्य सम्बन्ध (External Relations) तथा
4. प्रशासन (Administration)।

सन् 1967-68 में इस मन्त्रालय को पुनः गठित किया गया और इसमें दो ब्यूरो और जोड़े गये। साथ ही इन समस्त ब्यूरो के नाम परिवर्तित किये गये। नवीन नामों के साथ ये ब्यूरो इस प्रकार थे—

1. सांस्कृतिक क्रियाओं का ब्यूरो (Buereau of Cultural Activities),
2. ब्यूरो ऑफ प्लानिंग एण्ड कौरडीनेशन (Buereau of Planning and Co-ordination),
3. ब्यूरो ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (Buereau of Administration),
4. ब्यूरो ऑफ जनरल एजूकेशन (Buereau of General Education),
5. ब्यूरो ऑफ टैक्नीकल एजूकेशन (Buereau of Technical Education),
6. ब्यूरो ऑफ स्कॉलरशिप्स एण्ड यूथ सर्विसेज (Buereau of Scholarships and Youth Services),
7. ब्यूरो ऑफ लैंग्वेजेज एण्ड बुक प्रमोशन (Buereau of Languages and Book Promotion)।

प्रत्येक ब्यूरो को एक संयुक्त सचिव या परामर्शदाता के अधीन रखा गया। उनके अधीन उप-शिक्षा परामर्शदाता, उप-सचिव, सहायक शिक्षा-परामर्शदाता, सीनियर विज्ञान अधिकारी, शिक्षा अधिकारी, सेक्शन अधिकारी, आदि रखे गये। यह व्यवस्था पर्याप्त समय तक चलती रही।

26 सितम्बर, 1985 को एक नये मन्त्रालय का सृजन किया गया जिसका नामकरण है—**'मानव संसाधन विकास मन्त्रालय'** (Ministry of Human Resource Development—MHRD)

इस मन्त्रालय में निम्नलिखित पाँच विभाग हैं—

(अ) शिक्षा-विभाग (Department of Education),

(ब) संस्कृति-विभाग (Department of Culture),

(स) कला-विभाग (Department of Arts).

Youth Affairs

of Women and

अंग है। इसको
धीन कार्य करता
सहायता के लिए
ों, सेक्शनों तथा
ये को पृथक रूप

ा

VERNMENT)
न्द्र सरकार तथा
में कहा गया है—
रदायित्व में कोई
स्तरों पर शिक्षण
ी आवश्यकताओं
क्ति के सम्बन्ध में
मण करने, शिक्षा,
रने तथा सामान्य
को बढ़ावा देने के
के लिए व्यापक

ा नीति द्वारा तैयार
ं एवं संघ शासित
। केन्द्र सरकार के

1. केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित संस्थाओं के माध्यम से उच्चतर शैक्षिक अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है—

(i) भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला (Indian Institute of Advanced Study (IIAS), Shimla)।

29 फरवरी, 1964 से उक्त मन्त्रालय को शिक्षा-मन्त्री की अध्यक्षता में रखा गया, जिसकी सहायता के लिए दो उपमन्त्री तथा एक राज्यमन्त्री रखा गया। सन् 1964-65 में शिक्षा-मन्त्रालय को पुनर्गठित किया गया और इसमें पाँच ब्यूरो तथा चार डिवीजनों की व्यवस्था की गई। ये

1. विद्यालय
2. उच्च शिक्ष
3. छात्रवृत्तिय
4. नियोजन

Services), तथा

5. भाषाएँ, सा

उक्त मन्त्रालय

1. शारीरिक
2. वैज्ञानिक
3. वाह्य सम्ब
4. प्रशासन (

सन् 1967-68 जोड़े गये। साथ ही ये ब्यूरो इस प्रकार

1. सांस्कृतिक
2. ब्यूरो ऑफ ordination),
3. ब्यूरो ऑफ
4. ब्यूरो ऑफ
5. ब्यूरो ऑफ
6. ब्यूरो ऑफ Youth Services),
7. ब्यूरो ऑफ Promotion)।

प्रत्येक ब्यूरो अधीन उप-शिक्षा पर अधिकारी, शिक्षा अधि... तक चलती रही।

26 सितम्बर, 1985 को एक नये मन्त्रालय का सृजन किया गया जिसका नामकरण है—**'मानव संसाधन विकास मन्त्रालय'** (Ministry of Human Resource Development—MHRD)

इस मन्त्रालय में निम्नलिखित पाँच विभाग हैं—

(अ) शिक्षा-विभाग (Department of Education),

(ब) संस्कृति-विभाग (Department of Culture),

(स) कला-विभाग (Department of Arts),

(द) डिपार्टमेण्ट ऑफ यूथ अफेयर्स एण्ड स्पोर्ट्स (Department of Youth Affairs and Sports) तथा

(य) डिपार्टमेण्ड ऑफ वोमेन एण्ड चाइल्ड्स केयर (Department of Women and Child's Care)।

शिक्षा-विभाग, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय का एक निर्माणक अंग है। इसको राज्यमन्त्री की अध्यक्षता में रखा गया है जो कि मन्त्रालय के मन्त्री के अधीन कार्य करता है। इस विभाग के सचिवालय का अध्यक्ष एक सचिव होता है जिसकी सहायता के लिए विभिन्न पदाधिकारी होते हैं। शिक्षा-विभाग को विभिन्न ब्यूरो, डिवीजनों, सेक्शनों तथा एककों (Units) में विभक्त किया गया है। इस विभाग के प्रशासकीय ढाँचे को पृथक रूप से चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है, जो संलग्न है—

संघ या केन्द्रीय सरकार की शैक्षिक भूमिका

(EDUCATIONAL ROLE OF UNION OR CENTRAL GOVERNMENT)

सन् 1976 से शिक्षा के समवर्ती विषय है। समवर्ती का तात्पर्य केन्द्र सरकार तथा राज्यों के बीच एक सार्थक सहभागिता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में कहा गया है—

"जबकि शिक्षा के सम्बन्ध में राज्यों की भूमिका और उनके उत्तरदायित्व में कोई परिवर्तन नहीं होगा। केन्द्रीय सरकार शिक्षा की कोटि और स्तरों (सभी स्तरों पर शिक्षण व्यवसाय सहित) को बनाये रखने, अनुसन्धान और प्रोन्नत अध्ययन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कार्य करेगी। साथ ही वह विकास हेतु जनशक्ति के सम्बन्ध में समस्त देश की शैक्षिक अपेक्षाओं का अध्ययन और उनका अनुश्रवण करने, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव संसाधन के अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं की देखभाल करने तथा सामान्य तौर पर देश भर में शैक्षिक पिरामिड के सभी स्तरों पर उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिये शिक्षा के राष्ट्रीय तथा समेकित स्वरूप को लागू करने के लिए व्यापक उत्तरदायित्व को स्वीकार करेगी।"

मानव संसाधन विकास मन्त्रालय का शिक्षा विभाग राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा तैयार की गई भूमिका को पूरा करने के लिए प्रयास कर रहा है तथा राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों के घनिष्ठ सहयोग से अपने दायित्वों का निर्वाह कर रहा है। केन्द्र सरकार के प्रमुख शैक्षिक कार्य इस प्रकार है—

1. केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित संस्थाओं के माध्यम से उच्चतर शैक्षिक अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य क़र रही है—

(i) भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला (Indian Institute of Advanced Study (IIAS), Shimla)।

(ii) भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली (Indian Council of Social Science Research (ICSSR), New Delhi)।

(iii) भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली (Indian Council of Historical Research (ICHR), New Delhi)।

(iv) भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली (Indian Council of Philosophical Research, (ICPR), New Delhi)।

2. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र सरकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से कार्य कर रही है। भारत सरकार इस समय निम्नलिखित विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय महत्व की विभिन्न संस्थाओं का संचालन कर रही है—

(i) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।
(ii) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
(iii) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
(iv) हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद।
(v) जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली।
(vi) जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
(vii) उत्तर-पूर्वी पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग।
(viii) पाण्डुचेरी विश्वविद्यालय, पाण्डुचेरी।
(ix) विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति निकेतन।
(x) नागालैण्ड विश्वविद्यालय।
(xi) असम विश्वविद्यालय, सिल्चर।
(xii) इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
(xiii) तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर।

उपर्युक्त विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त केन्द्र सरकार निम्नलिखित विश्वविद्यालय/संस्थान स्थापित करने के लिए कदम उठा रही है—

(i) अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय।
(ii) उर्दू विश्वविद्यालय तथा,
(iii) राजीव गाँधी राष्ट्रीय स्मारक एवं सम्बद्ध विज्ञान संस्थान।

तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित संगठनों की सहायता से अपने शैक्षिक दायित्वों का निर्वाह कर रही है—

(i) भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर।
(ii) भारतीय खान स्कूल, धनबाद।
(iii) राष्ट्रीय औद्योगिक इन्जीनियरी प्रशिक्षण संस्थान, बम्बई।
(iv) राष्ट्रीय ढलाई तथा गढ़ाई प्रौद्योगिकी, राँची।
(v) आयोजना तथा वस्तुकला स्कूल, नई दिल्ली।
(vi) भारतीय प्रशासनिक स्टाफ कालेज, हैदराबाद।

भारत सरकार अहमदाबाद, बंगलौर, कलकत्ता तथा लखनऊ स्थित भारतीय प्रबन्ध संस्थानों (Indian Institute of Management) का संचालन करती है। साथ ही वह बम्बई, दिल्ली, गोहाटी, कानपुर, खडगपुर तथा मद्रास स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (Indian Institute of Technology-IIT) का संचालन कर रही है। इसके अतिरिक्त 17 क्षेत्रीय इन्जीनियरिंग कॉलेजों का भी संचालन करती है।

3. **स्कूल शिक्षा**—केन्द्र सरकार स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training NCERT, New Delhi) विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में संचालन करने वाली एक राष्ट्रीय स्तर की स्रोत संस्था है। भारत सरकार इस संस्था के अतिरिक्त **केन्द्रीय विद्यालय संगठन**, नई दिल्ली, **नवोदय विद्यालय समिति**, नई दिल्ली, **केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड**, नई दिल्ली तथा **राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय** नई दिल्ली की सहायता से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में अपने शैक्षिक दायित्वों का निर्वाह करती है।

4. भारत सरकार संघ शासित प्रदेशों की सभी प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करती है।

5. भारत सरकार भाषाओं की प्रोन्नति के क्षेत्र में निम्न प्रमुख संगठनों की सहायता से अपने दायित्वों का निर्वाह कर रही है—

(i) डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ।
(ii) केन्द्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।
(iii) केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल, आगरा।
(iv) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।

6. भारत सरकार राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली (National Book Trust, New Delhi) की सहायता से पुस्तक संवर्द्धन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

7. केन्द्र सरकार प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा संस्थान (National Institute of Adult Education—NIAE) की सहायता से अपनी शैक्षिक भूमिका का निर्वाह करती है।

8. मानव संसाधन विकास मन्त्रालय का शिक्षा विभाग अपने विभिन्न शैक्षिक कार्यों को निम्नलिखित अधीनस्थ कार्यालयों एवं संगठनों के माध्यम से भी करता है।

(i) प्रौढ शिक्षा निदेशालय (The Directorate of Adult Education)।
(ii) केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (The Central Hindi Directorate)।
(iii) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (The Commission for Scientific and Technical Technology—CSTT)।
(iv) उर्दू प्रोन्नति ब्यूरो (The Bureau for Promotion of Urdu—BPU)।
(v) केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान (The Central Institute of Indian Languages—CIIL)।

9. सम्पूर्ण देश में 6 से 14 वर्ष तक के समस्त बच्चों की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में राज्य सरकारों के दायित्वों में सहयोग देना। इसने प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लिये विभिन्न प्रायोजनाओं (Projects) को संचालित किया है।

10. अल्पसंख्यक, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सांस्कृतिक हितों के लिये विशेष दायित्व।

11. समाज के पिछड़े वर्गों में शिक्षा को प्रोत्साहन देना।

12. भारत की प्राचीन संस्कृति का संरक्षण एवं विकास राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिये समुचित कार्यक्रम एवं साधनों की व्यवस्था करना।

अखिल भारतीय शिक्षा-परिषदें
(ALL INDIA EDUCATIONAL COUNCILS)

शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा गठित बहुत-सी शिक्षा-परिषदें या बोर्ड आज भी कार्य कर रहे हैं। ये निकाय भारत सरकार को अपने शैक्षिक दायित्वों तथा कार्यों को पूर्ण करने में सहायता प्रदान करते हैं। इनमें से प्रमुख का उल्लेख संक्षेप में नीचे किया जा रहा है—

(1) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड : Central Advisory Board of Education—यह मण्डल सबसे प्राचीन संस्था है। शिक्षा सम्बन्धी मामलों में प्रान्तीय सरकारों को सलाह देने के लिए इसकी स्थापना की सन् 1921 ई० में की गई थी। सन् 1923 में इसको 'Retrenchment Committee)' की सिफारिश पर विघटित कर दिया गया था। परन्तु हर्टाग समिति (Hartog Committee) की सिफारिश के परिणामस्वरूप इसको सन् 1935 ई० में पुनः स्थापित किया गया और वह अब तक कार्य कर रहा है।

यह मण्डल मन्त्रालय की समस्त क्रियाओं की महत्त्वपूर्ण धुरी है, जिसके चारों ओर सम्पूर्ण कार्यक्रम फैला हुआ है। इसका संगठन इस प्रकार किया गया है—

1. केन्द्रीय शिक्षामन्त्री (चेयरमैन)।
2. भारत सरकार का शिक्षा परामर्शदाता।
3. भारत सरकार द्वारा मनोनीत 15 सदस्य, जिनमें 4 स्त्रियाँ होती हैं।
4. संसद के पाँच सदस्य, जिनमें 2 राज्य सभा तथा 3 लोक सभा के सदस्य।
5. भारत सरकार के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों में अन्तर्विश्वविद्यालय मण्डल द्वारा चुने हुए 2 सदस्य।
6. अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद् के 2 सदस्य, जिनको स्वयं परिषद् मनोनीत करती है।
7. प्रत्येक राज्य सरकार का एक प्रतिनिधि, जो शिक्षा-मन्त्री होता है।
8. मण्डल का सचिव, जिनको केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। सामान्यतः केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय का शिक्षा सचिव ही इसके सचिव का कार्य करता है।[1]

इस परामर्शदाता मण्डल से एक अन्य महत्वपूर्ण संस्था सम्बन्धित है जो कि 'शिक्षा के केन्द्रीय ब्यूरो' (Central Bureau of Education) के नाम से प्रसिद्ध है। यह ब्यूरो अपना कार्य दो सचिवों द्वारा संचालित करता है। इनमें से एक सचिव बाह्य देशों से सम्बन्धित है और दूसरा आन्तरिक सूचनाओं से। यह भारत में शिक्षा की प्रगति के विषय

1. Government of India, Ministry of Education, Notification No. 6-2-50 D 1. May 25, 1950.

में आधुनिकतम सूचनाओं को एकत्रित करता है तथा बहुत-सी शैक्षिक रिपोर्ट प्रकाशित करता है।

इस मण्डल के दो प्रमुख कार्य हैं—

1. किसी भी शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न पर, जो केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाय, परामर्श देना।

2. भारत सरकार के शैक्षिक विकास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाओं एवं परामर्शों को एकत्रित करना तथा उनकी जाँच करके अपनी सिफारिशों के साथ भारत सरकार तथा राज्य सरकारों को प्रस्तुत करना।[1]

इस मण्डल की वर्ष में एक बार बैठक अवश्य होती है यह अपनी बैठक में देश की प्रमुख शैक्षिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करता है तथा उनके सम्बन्ध में अपने सुझाव प्रदान करता है। यह मण्डल अपनी चार स्थायी समितियों—प्राथमिक तथा बेसिक शिक्षा-समिति, सामाजिक शिक्षा-समिति, माध्यमिक शिक्षा-समिति तथा उच्च शिक्षा-समिति के द्वारा कार्य करता है।

सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड को शिक्षा के प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने का दायित्व सौंपा गया है। यह बोर्ड शैक्षिक विकास का पुनरावलोकन करेगा। शिक्षा-प्रणाली में सुधार के लिए आवश्यक परिवर्तनों को सुनिश्चित करेगा और कार्यान्वयन सम्बन्धी देखरेख में निर्णायक भूमिका अदा करेगा। बोर्ड उपर्युक्त समितियों के माध्यम से एवं मानव संसाधन विकास के विभिन्न क्षेत्रों के बीच सम्पर्क तथा समन्वय के लिए बनाये गये प्रक्रमों के माध्यम से कार्य करेगा। केन्द्र तथा राज्यों के शिक्षा विभागों को सुदृढ बनाने के लिए इनमें व्यावसायिक दक्षता रखने वाले व्यक्तियों को लाया जायेगा।

(2) अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा-परिषद् : All India Council for Elementry Education—इस परिषद् की स्थापना शिक्षा तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान मन्त्रालय द्वारा सन् 1957 में की गई थी। इसकी स्थापना का उद्देश्य 6 से 14 वर्ष तक के सभी बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार के कदम उठाना है। केन्द्रीय सरकार प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में अपने दायित्व का निर्वाह इसी परिषद् के माध्यम से करती है तथा इसी क्षेत्र में राज्य-सरकारों एवं स्थानीय निकायों का नेतृत्व एवं पथ-प्रदर्शन करती है। इस परिषद् का संगठन निम्नलिखित संस्थाओं के द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों से होता है—

1. राज्य सरकारों के प्रतिनिधि।
2. केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदाता मण्डल।
3. अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद्।
4. प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रतिनिधि।
5. बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षा-मर्मज्ञ।
6. शिक्षा मन्त्रालय के प्रतिनिधि।
7. पिछड़े वर्गों एवं लड़कियों की शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षा-मर्मज्ञ।

1. The Organization of Government of India, *op. cit*, p. 260.

इस परिषद के निम्नलिखित कार्य निर्धारित किये गये—

1. प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्धित मामलों पर केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों को सलाह देना।

2. प्रारम्भिक शिक्षा की प्रशासकीय, वित्तीय एवं शिक्षा-शास्त्र सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसन्धान कार्य कराना तथा उनके निष्कर्षों को प्रकाशित करना।

3. ऐसा साहित्य तैयार करना, जिससे शिक्षा-विभागों तथा शिक्षकों को प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर उन्नत बनाने में सहायता मिल सके।

4. प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार एवं उन्नति के लिए उपयुक्त प्रकार का निर्देशन एवं नेतृत्व प्रदान करना।

5. प्रत्येक राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा की उन्नति एवं विस्तार के लिए विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा की नई दिशा में दो बातों पर विशेष बल दिया जायेगा—(क) 14 वर्ष की अवस्था तक के सब बच्चों को विद्यालय में भर्ती तथा उनका विद्यालयों में टिके रहना तथा (ख) शिक्षा की गुणवत्ता में काफी सुधार। इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद् महत्त्वपूर्ण कदम उठा रही है। यह सभी प्राथमिक विद्यालयों को आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड (Operation Black Board) की योजना का संचालन कर रही है। साथ ही ऐसे बच्चों के लिए जो बीच में विद्यालय छोड़ गये हैं या जो ऐसे स्थानों पर रहते हैं जहाँ स्कूल नहीं हैं या जो काम में लग गये हैं और वे लड़कियाँ जो दिन के स्कूल में पूरे समय नहीं जा सकतीं, इन सबके लिए एक विशाल तथा व्यवस्थित निरौपचारिक/औपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा (Non-formal Education) का कार्यक्रम संचालित करा रही है। सरकार इस क्षेत्र के समस्त दायित्वों का भार स्वयं उठायेगी।

(3) अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद् : All India Council for Secondary Education—इस परिषद् की स्थापना सन् 1955 ई० में की गई थी। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह देश में माध्यमिक शिक्षा की उन्नति के लिए एक विशेष संस्था के रूप में कार्य करे। उस समय इस परिषद् के सदस्यों की संख्या 22 थी और उसका चेयरमैन भारत-सरकार का शिक्षा-परामर्शदाता था। इस परिषद् को दो प्रकार के कार्य सौंपे गये—परामर्श सम्बन्धी तथा कार्यपालिका सम्बन्धी। यह परिषद् माध्यमिक शिक्षा के सभी क्षेत्रों में भारत-सरकार तथा राज्य सरकार को सलाह देने वाली संस्था होने के साथ-साथ स्वयं इस क्षेत्र में माध्यमिक शिक्षा के प्रसार एवं उन्नति के लिए पहला कदम उठाने की भी अधिकारिणी थी। इस परिषद् ने सन् 1955-58 तक इसी रूप में कार्य किया। परन्तु सन् 1958 ई० में इस परिषद् का पुनर्गठन किया गया, उसके कार्यपालिका सम्बन्धी कार्यों को एक दूसरी संस्था 'Directorate of Extension Programmes for Secondary Education' (DEPSE) को सौंप दिया गया और इसको माध्यमिक शिक्षा-परिषद् से सम्बन्धित रखा गया। अब इस पुनर्संगठित माध्यमिक शिक्षा-परिषद् का कार्य केवल परामर्श देने तक ही सीमित है। इस पुनर्संगठित परिषद् में अग्रलिखित निकायों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है—

1. केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय।
2. केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय।
3. अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद्।
4. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग।
5. अखिल भारतीय शिक्षा समुदायों का संघ।
6. प्रशिक्षण महाविद्यालयों का समुदाय।
7. प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि—इनको भारत सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है।
8. अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा-परिषद्।

(4) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग : University Grants Commission—भारत सरकार द्वारा सन् 1948 में नियुक्त 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' के सुझाव के अनुसार सन् 1953 ई० में 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' की स्थापना की गई। सन् 1956 में संसद के अधिनियम द्वारा इसे 'वैधानिक संस्था' (Statutory Body) स्वीकार कर लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार चेयरमैन तथा सचिव के अतिरिक्त 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के 9 सदस्यों में से 3 सदस्य विश्वविद्यालयों के कुलपति, 4 प्रसिद्ध भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञ एवं दो केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। आजकल डॉ० (मिसेज) आरमेती देसाई (Dr. (Mrs) Armaity Desai) चेयरमैन हैं।

इस आयोग के निम्न कार्य हैं—

1. विश्वविद्यालय-शिक्षा में सुधार करने एवं शिक्षण-स्तर को उच्च बनाने के लिए विश्वविद्यालयों को सलाह देना।

2. भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तर में समन्वय रखने तथा विश्वविद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर एक विशेषज्ञ-संस्था के रूप में भारत सरकार को परामर्श देना।

3. विश्वविद्यालयों को अपने कोष से दी जाने वाली धनराशि का वितरण करना तथा इस सम्बन्ध में अपनी नीति का निर्धारण करना।

4. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना एवं प्रचलित विश्वविद्यालयों के कार्य-क्षेत्र की वृद्धि पर पूछे जाने पर अपना मत प्रकट करना।

5. भारत सरकार एवं विश्वविद्यालयों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देना तथा उनकी शंकाओं का समाधान करना।

6. विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थितियों की जाँच करना और केन्द्रीय सरकार द्वारा उनको सहायता-अनुदान में दी जाने वाली धनराशि के सम्बन्ध में सुझाव देना।

7. विश्वविद्यालय-शिक्षा के विस्तार एवं विकास से सम्बन्धित आवश्यक कार्यों को पूरा करना।

8. विश्वविद्यालयों से उनकी परीक्षाओं, पाठ्यक्रमों, अनुसन्धान कार्यों आदि के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करना।

9. विश्वविद्यालय के लिए उपयुक्त समझी जाने वाली सूचनाओं को भारत तथा विदेशियों से एकत्रित करके विश्वविद्यालयों को भेजना।

10. विश्वविद्यालयों द्वारा विविध सेवाओं के लिए प्रदान की गई उपाधियों के सम्बन्ध में भारत-सरकार तथा राज्य-सरकारों को अपनी सलाह देना।[1]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आजकल उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्यों को भी कर रहा है[2]—

1. विकासात्मक परियोजनाओं का संचालन।
2. शिक्षकों के वेतनमानों में सुधार लाना।
3. विभिन्न विश्वविद्यालयों में 'अध्ययन केन्द्रों' की स्थापना करना।
4. छात्रावासों का निर्माण-कार्य।
5. सेवा-निवृत्त शिक्षकों की सेवाओं का उपयोग।
6. शिक्षकों का आदान-प्रदान।
7. छात्रवृत्तियाँ एवं फैलोशिप आदि।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस समय, विज्ञान, इन्जीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी के 62 विभागों तथा 19 उन्नत अध्ययन केन्द्रों को सहायता प्रदान कर रहा है। इसके अलावा मानवशास्त्र तथा समाज विज्ञान के 10 उन्नत अध्ययन केन्द्र तथा 25 विभागों को विशेष सहायता प्रदान कर रहा है।[3]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रथम उपाधि के कोर्सों के पुनर्निर्माण की योजना प्रस्तावित की। इसके माध्यम से इसने इन कोर्सों को समुदाय की विकासशील आवश्यकताओं तथा पर्यावरण से सम्बन्धित करने पर बल दिया है। साथ ही शिक्षा को कार्यक्षेत्र/व्यावहारिक अनुभव तथा उत्पादकता से सम्बन्धित करने पर बल दिया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस योजना के तहत 9 विश्वविद्यालयों तथा 208 कॉलेजों में पुनर्निर्मित कार्सों को लागू किया।

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को उन्नत बनाने के लिए विश्वविद्यालय आयोग ने निम्नलिखित कार्यक्रमों को भी लागू किया है—

1. कॉलेज ह्यूमेनिटीज एण्ड सोशल साइंस इम्प्रूवमेण्ट प्रोग्राम (College Humanities and Social Science Improvement Programme—CHSSIP)।
2. कॉलेज साइंस इम्प्रूवमेण्ट प्रोग्राम (College Science Improvement Programme—CSIP)।
3. यूनीवर्सिटी लीडरशिप प्रोग्राम्स (University Leadership Programmes)।
4. स्पेशल एसिस्टेंस प्रोग्राम्स (Special Assistane Programmes—SAP)।
5. करीक्यूलम डवलपमेण्ट सेण्टर्स (Curriculum Development Centres)।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रौढ़ शिक्षा तथा प्रसार, निरक्षरता को दूर करने तथा सतत् शिक्षा एवं जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

1. University Grants Commission Art, 1956 Section 12.
2. Hindustan Year Book, 1978, p. 175.
3. Manorama Year Book, 1988, p. 494.

आयोग ने नवम्बर, 1993 तक इन क्षेत्रों में विभिन्न कार्यक्रमों को विद्यालयों तथा कॉलेजों के माध्यम से संचालित किया। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

1. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, 1897।
2. जन शिक्षण निलयम, 1836।
3. सतत् शिक्षा कार्यक्रम, 1830।

आचार्य राममूर्ति समिति ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पुनर्गठन के लिए सुझाव दिया था। समिति का विचार था कि—

1. आयोग के पाँच सदस्य पूर्णकालिक होने चाहिए। ये सदस्य शिक्षण, अनुसन्धान, प्रसार (Extension), प्रबन्ध (Management) तथा वित्त से सम्बन्धित होने चाहिए।
2. इनके अतिरिक्त आयोग के चेयरमैन तथा वाइस चेयरमैन होने चाहिए।
3. आयोग के क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये जाने चाहिए जिससे समस्याओं का तत्काल निबटारा किया जा सके।

(5) अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद् : All India Council for Technical Education—इस परिषद् की स्थापना 'सरकार समिति' (Sarkar Committee) की सिफारिश पर सन् 1945 में हुई थी। अब इसको विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भाँति एक वैधानिक निकाय का रूप प्राप्त हो गया है। सन् 1987 के अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद् के अधिनियम के अनुसार इसके निम्नलिखित कार्य हैं—

1. प्राविधिक शिक्षा का नियोजन।
2. स्तरों तथा मानदण्डों (Norms) का निर्धारण और अनुरक्षण।
3. प्रत्यापन (Accreditation)।
4. प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लिए वित्तीय व्यवस्था।
5. अनुश्रवण (Monitoring) तथा मूल्यांकन।
6. प्रमाणन (Certification)।
7. उपाधियों की समकक्षता का निर्धारण, तथा
8. प्राविधिक तथा प्रबन्ध शिक्षा के बीच समन्वय स्थापित करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्राविधिक तथा प्रबन्ध शिक्षा को समान मुद्दा माना गया और प्राविधिक जनशक्ति सूचना प्रणाली (Technical Manpower Information System) को आगे विकसित तथा सुदृढ़ बनाने का संकल्प किया गया है। साथ ही शिक्षा के सभी स्तरों पर संगणक शिक्षा (Computer Education) तथा व्यावसायीकरण (Vocationalization) को सुदृढ़ बनाने के लिए कहा गया है।

(6) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् : National Council for Education Research and Training—केन्द्रीय सरकार का महत्त्वपूर्ण कार्य—शैक्षिक अनुसन्धान की उन्नति, प्रकाशन एवं समन्वय तथा प्रशिक्षण एवं प्रसार सेवाओं की उन्नति करना है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए शिक्षा मन्त्रालय ने सन् 1961 में एक संगठन की नई दिल्ली में स्थापना की। यह संगठन 'National Council of Educational Research & Training' के नाम से प्रसिद्ध है। यह एक स्वायत्तता प्राप्त संगठन है। इसमें अग्रलिखित को सदस्यता प्राप्त है—

1. भारत सरकार का शिक्षा-परामर्शदाता।
2. दिल्ली विश्वविद्यालय का कुलपति।
3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का चेयरमैन।
4. प्रत्येक राज्य सरकार का एक-एक प्रतिनिधि।
5. भारत सरकार द्वारा मनोनीत 12 सदस्य।

यह संगठन मानव संसाधन विकास-मन्त्रालय के शैक्षिक विंग (Academic Wing) के रूप में कार्य करता है।[1] यह मन्त्रालय समाज-कल्याण मन्त्रालय (Social Welfare Ministry) को विद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित नीतियों और बड़े-बड़े कार्यक्रमों के निर्माण एवं कार्यान्वयन में सहायता करता है। साथ ही यह विद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में उसकी नीति-निर्धारण तथा प्रमुख कार्यक्रमों के संचालन में उसको (मन्त्रालय को) सहायता प्रदान करता है। इस संगठन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं[2]—

1. विद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित अध्ययन एवं पर्यवेक्षण करना।
2. विद्यालय-शिक्षकों के लिए उन्नत स्तर के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
3. शैक्षिक विस्तार सेवाओं को संगठित करना।
4. विद्यालयों में उन्नत शैक्षिक प्रविधियों एवं व्यवहारों को लागू करना।
5. विद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित सभी मामलों में विचारों तथा सूचनाओं के लिए एक निकासी-गृह (Clearing House) के रूप में कार्य करना।

यह संगठन उक्त कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए राज्यों के शिक्षा-विभागों, विश्वविद्यालयों तथा विद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित अन्य शिक्षा-संस्थाओं से सदैव घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखता है। इसके अतिरिक्त यह परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों—यूनेस्को (UNESCO), यूनीसेफ (UNICEF) से भी घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखती है। इस परिषद् ने विद्यालय-शिक्षा तथा शिक्षक-शिक्षा को बहुत प्रभावित किया है।

इस परिषद ने 'राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थान' (National Institute of Education) की देहली में स्थापना की। यह संस्थान एक अनुसन्धान संगठन है जिसके अपने शैक्षणिक विभाग एवं एकांश (Unit) है, जिनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं—

1. केन्द्रीय शिक्षा-संस्थान (Central Institute of Education)—अब इस संस्थान को कोठारी आयोग की सिफारिश पर दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली से सम्बद्ध कर दिया गया है।
2. शिक्षण-सामग्री विभाग (Department of Teaching Aids)—जो कि सन् 1948 से एक पूर्ण विकसित संस्थान के रूप में परिवर्तित हो गया जो कि सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी (CIET) के नाम से प्रसिद्ध है।
3. शैक्षिक पर्यवेक्षण इकाई (Educational Survey Unit)।
4. बेसिक शिक्षा विभाग (Department of Basic Education)।
5. विज्ञान शिक्षा विभाग (Department of Science Education)।

1. India, 1986, p. 79.
2. India, 1971-72, p. 77.

6. समाज-विज्ञान तथा मानवीय शास्त्र विभाग (Department of Social Science and Humanities)।
7. अभिलेख तथा सूचना इकाई (Documentation and Information Unit)।
8. पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षा विभाग (Department of Preprimary and Primary Education)।
9. शिक्षक शिक्षा-विभाग (Department of Teacher Education)।
10. पाठ्य-पुस्तक विभाग तथा प्रकाशन इकाई (Department of Text-book and Publication Unit)।

अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर तथा मैसूर में परिषद् के चार क्षेत्रीय कॉलेज हैं। ये कॉलेज, विद्यालय-शिक्षा के क्षेत्र में अनेक विस्तृत गतिविधियों को बढावा देते हैं और स्वयं भी उनमें भाग लेते हैं और विशेषतः विज्ञान के शिक्षकों के लिए ग्रीष्म संस्थान (Summer Institute) चलाते हैं।

इस परिषद् ने विभिन्न राज्यों में 17 क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किये हैं।[1] क्षेत्रीय कार्यालय परिषद् को राज्यों में क्रियान्वित किये जाने वाले कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देते हैं और राज्यों को परिषद् द्वारा किये गये कार्य (विशेषतः पाठ्यक्रम सम्बन्धी) का उपयोग करने में सहायता देते हैं। परिषद ने 10 + 2 + 3 शिक्षा-प्रणाली के लिए I से 12 कक्षाओं के लिए नया पाठ्यक्रम तथा विषयक्रम भी तैयार किया है। परिषद् अंग्रेजी और हिन्दी में विद्यालय-स्तर के सभी विषयों के लिए आदर्श पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करती हैं। राज्यों में इन पुस्तकों को आदर्श रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

परिषद् निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी करती है—

1. Indian Education Review.
2. Journal of Indian Education.
3. School Science.
4. Primary Teacher.
5. भारतीय आधुनिक शिक्षा।
6. प्राइमरी शिक्षक।

इनमें से प्रथम चार अंग्रेजी में प्रकाशित होते हैं और अन्तिम दो पत्रिकाएँ हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् अपने विभिन्न विभागों, एककों, क्षेत्रीय कार्यालयों आदि के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने में लगी हुई है। इसने निम्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है—

शैक्षिक अनुसन्धान—यह परिषद् विद्यालयी शिक्षा के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य कर रही है। इस परिषद् की अनुसन्धान सम्बन्धी क्रियाओं का संचालन एक विशेष समिति द्वारा किया जाता है। यह समिति—'Educational Research and Innovation Committee' (ERIC) है। यह प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण, शिक्षा के

1. India, 1986. p. 79.

व्यावसायीकरण तथा पाठ्यक्रम विकास से सम्बन्धित क्षेत्रों में अनुसन्धान कार्य करा रही है।

1. पाठ्यक्रम तथा पाठ्य-पुस्तक निर्माण।
2. राष्ट्रीय प्रतिभा खोज योजना।
3. विज्ञान-किट।
4. शैक्षिक सर्वेक्षण कार्य।
5. व्यावसायीकरण से सम्बन्धित कार्यक्रम।
6. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य से सम्बन्धित निर्देशक सामग्री।
7. अनुसूचित जाति एवं जनजातियों से सम्बन्धित कार्यक्रम।
8. पूर्व बाल्यकालीन शिक्षा (Early Childhood Education)।
9. युवकों के लिए निरौपचारिक/अनौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा (Non-formal Education for Youth)।
10. राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम।
11. संगणक शिक्षा (Computer Education)।
12. मूल्य-शिक्षा (Value Education)।
13. स्वास्थ्य शिक्षा तथा पर्यावरणीय स्वच्छता (Health Education and Environmental Sanitation)।

(7) वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्[1]—यह परिषद् सन् 1942 में एक स्वतन्त्र निकाय के रूप में स्थापित की गई। भारत सरकार इसके माध्यम से वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य कराती है। इस परिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं—

1. भारत में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहित एवं निर्देशित करना।
2. वैज्ञानिक अध्ययन के लिए विशेष संस्थाओं या विभागों की स्थापना एवं उनका विकास करना।
3. अनुसन्धान फैलोशिपों की व्यवस्था करना।
4. अनुसन्धानों द्वारा की गई खोजों का उपयोग करना।
5. वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान के लिए उपयुक्त प्रयोगशालाओं व वर्कशापों की व्यवस्था करना।
6. औद्योगिक तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन।

(8) राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान : National Institute of Educational Planning and Administration—इस संस्थान को भारत सरकार ने शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन के क्षेत्र में राष्ट्रीय शिखर की संस्था के रूप में स्थापित किया। यह संस्थान सन् 1962 में यूनेस्को (UNESCO) के साथ दस-वर्षीय संविदा के तहत स्थापित किया गया। उस समय इसका नाम था—'एशियन इंस्टीट्यूट ऑफ

1. Council of Scientific and Industrial Research (CSIR).

एजूकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' (Asian Institute of Educational Planning and Administration। इस संविदा की समाप्ति के बाद भारत सरकार ने शिक्षा आयोग की सिफारिश पर इस संस्थान को अपने हाथों में ले लिया, उसका नाम रखा—'नेशनल स्टाफ कॉलेज फॉर एजूकेशन प्लानर्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेटर्स (National Staff College for Educational Planners and Administrators)। मई, 1979 में भारत सरकार ने इस संस्थान का वर्तमान नाम—'राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान' (National Institute of Educational Planning and Administration—NIEPA) दिया। यह संस्थान नई दिल्ली में स्थित है।

संस्थान के कार्य—इस संस्थान के कार्यों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है—

1. शिक्षा-नियोजकों तथा प्रशासकों का प्रशिक्षण—यह संस्थान भारत के शैक्षिक कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। यह शैक्षिक नीतियों पर विचार-विमर्श करने के लिए विभिन्न सेमीनारों तथा वर्कशापों का भी आयोजन करता है। इसने अब तक भारत के विभिन्न राज्यों तथा संघ प्रदेशों के हजारों अधिकारियों को प्रशिक्षित किया है। संस्थान जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए भी डिप्लोमा कोर्स भी संचालित कर रहा है। इनमें से प्रमुख 'DEPA' (Diploma in Educational Planning and Administration) है जिसकी अवधि छः माह की है। इस अवधि में उनको तीन माह में पाठ्यक्रम कार्य कराया जाता है और शेष तीन माह में व्यवसाय से सम्बन्धित प्रोजेक्ट कार्य कराया जाता है। यह संस्थान विदेशी कर्मचारियों के लिए भी प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। इस संस्थान द्वारा आयोजित सेमीनार तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अफगानिस्तान, भूटान, बंगलादेश, चीन, इथोपिया, हंगरी, इण्डोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, नेपाल, मॉरीशस, पाकिस्तान, फिलीपीन्स, श्रीलंका, थाईलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूगोस्लाविया आदि देशों ने भाग लिया है।

2. अनुसन्धान—इस संस्थान ने अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसकी अनुसन्धानात्मक क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की हैं। इनमें सर्वेक्षण, विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा अनुसन्धान प्रायोजनाएँ प्रमुख हैं।

3. नवाचारों का प्रसार—यह संस्थान नवाचारों के प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसके लिए सन् 1983 में इस संस्थान ने अन्तर्राज्यीय भ्रमणों (Visits) का आयोजन किया। इसके साथ ही उसने विभिन्न राज्यों में प्रयुक्त नवाचारों को प्रसारित करने के लिए अन्य माध्यमों का प्रयोग किया।

4. परामर्शदात्री सेवा—यह संस्थान विभिन्न राज्यों तथा संघ-शासित प्रदेशों के लिए परामर्शदात्री सेवाएँ प्रदान करता है। इसने जम्मू व कश्मीर, सिक्किम, दादरा व नगरहवेली, हरियाणा आदि में सेवाएँ प्रदान की हैं। संस्थान ने हरियाणा की प्रार्थना पर विद्यालयों की स्थापना तथा विद्यालयों को प्रोन्नत करने के मानकों का निर्माण किया।

5. प्रकाशन कार्यक्रम—संस्थान शैक्षिक नियोजन तथा प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकाशनों को प्रकाशित कर रहा है। इनमें पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ, प्रतिवेदन आदि प्रमुख हैं।

(अ) पुस्तकें—(i) 'एजूकेशन एण्ड दी न्यू सोशल ऑर्डर' (Education and the New Social Order)।

(ii) 'रेविटेलाइजिंग स्कूल कॉम्पलेक्सेज इन इण्डिया' (Revitalising School Complexes in India)।

(ब) पत्रिकाएँ—संस्थान की पत्रिका 'शैक्षिक योजना और प्रशासन' प्रमुख है। यह हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती है।

(स) प्रतिवेदन—संस्थान ने विभिन्न प्रायोजनाओं के प्रतिवेदनों को भी प्रकाशित कराया है।

6. सहयोग—यह संस्थान विभिन्न राष्ट्रीय संगठनों—विश्वविद्यालयों अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (Council of Scientific and Industrial Research—CSIR), योजना आयोग, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड मेनपॉवर रिसर्च, केन्द्रीय विद्यालय संगठन, प्रौढ शिक्षा निदेशालय आदि से सहयोग एवं सम्बन्ध रखती है। यह संस्थान अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। इनमें यूनेस्को, रीजनल ऑफिस, बंगकॉक, इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन प्लानिंग, पेरिस, कामनवेल्थ सचिवालय लन्दन आदि प्रमुख हैं।

(9) राष्ट्रीय शिक्षक व शिक्षा परिषद् : National Council of Teacher Education—इसका वर्णन शिक्षक-शिक्षा नामक अध्याय में किया गया है।

उपसंहार

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के सब अंगों एवं क्षेत्रों का असाधारण विस्तार एक विस्मयकारी घटना है, अचरज की बात है। पर साथ ही यह घटना—उलझन में डालने वाली और परेशान करने वाली भी है। इस घटना के इन दोनों पक्षों का निरूपण करते हुए, सैयदेन व गुप्ता ने लिखा है—"स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से भारत में शिक्षा का अत्यन्त त्वरित गति से विस्तार हुआ है। सामान्य रूप में, इस संख्यात्मक वृद्धि की शिक्षण के सब स्तरों पर प्रतिकूल प्रक्रिया हुई है, और इसने अध्यापकों, साज-सज्जा, भवनों एवं अन्य आवश्यक सुविधाओं की श्रेष्ठता को निम्नतर बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप, शिक्षा के लिए उपलब्ध धनराशि के अधिकांश भाग का प्रयोग, शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार के लिए और उसकी तुलना में गुणात्मक उन्नति के उपायों की उपेक्षा करने के लिए किया गया है।"

"Education in India has expanded very rapidly since the attainment of independence. The pressure of numbers at all stages of education has, generally speaking, reacted adversely on standards of instruction and tended to lower the quality of staff, equipment, buildings and other necessary amenities. It has led to the diversion of a large proportion of the limited funds available to quantitative expansion and to the comparative neglect of measures for the improvement of quality."—K. G. Saiydain & H. C. Gupta : *Access of Higher Education in India*, p. 75.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What provisions have been made for education in Indian constitution ?
   भारतीय संविधान में शिक्षा के लिए क्या प्रावधान किये गये हैं ?
2. Discuss the administrative set of education at the centre.
   केन्द्र में शिक्षा के प्रशासकीय ढाँचे की विवेचना कीजिए।
3. What is the educational role of Union Government ?
   सघीय सरकार की शैक्षिक भूमिका क्या है ?
4. Write short notes on the following—
   (a) Central Advisory Board of Education—CABE
   (b) University Grants Commission.
   (c) All Indial Council for Techpical Education (AICTE).
   (d) National Council for Educational Research and Training—NCERT.
   (e) National Council for Teacher Education—NCTE.
   (f) National Institute of Educational Planning and Administration—NIEPA.

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

(अ) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड—कैब।

(ब) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग—यू० जी० सी०।

(स) अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद्—ए० आई० सी० टी० ई०।

(द) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्—एन० सी० ई० आर० टी०।

(य) राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद्—एन० सी० टी० ई०।

(र) राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान—नीपा।

●●

22

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा
PRE-PRIMARY EDUCATION

"Pre-primary education is of great significance to the physical, emotional and intellectual development of children."
—Kothari Commission Report.

विषय-प्रवेश

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का जन्मदाता—जर्मनी का विख्यात शिक्षाशास्त्री, फ्रॉबेल (Froebel) माना जाता है। उसने सन् 1837 ई० में जर्मनी के ब्लेंकनबर्ग (Blankenburg) नामक ग्राम में प्रथम पूर्व-प्राथमिक विद्यालय अथवा बालोद्यान (Kindergarten) की स्थापना करके, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को जन्म दिया। उसने इस प्रकार के 16 और विद्यालयों का शिलान्यास किया। इन विद्यालयों में कम-से-कम 4 वर्ष के बच्चों को प्रवेश दिया जाता था और उन्हें खेल के द्वारा आचरण-सम्बन्धी ज्ञान के साथ-साथ पुस्तकीय ज्ञान भी मनोवैज्ञानिक विधि से प्रदान किया जाता था।

फ्रॉबेल के पश्चात् 19वीं शताब्दी के अन्त में इंग्लैण्ड में कुमारी मारगेरेट मैक्मिलन (Miss Margaret McMillan) ने शिशु-शालाओं (Nursury Schools) का आयोजन किया, जिनमें 2 से 4 वर्ष की आयु तक के बच्चों को प्रवेश दिया जाता था।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इटली में डॉ० मेरिया मॉन्टेसरी (Dr. Maria Montessori) ने मॉण्टेसरी स्कूलों का शिलान्यास किया, जिनमें 2 से 6 वर्ष की आयु तक के बच्चों को विभिन्न उपकरणों की सहायता से शिक्षा दी जाती थी।

इस प्रकार, जर्मनी के किण्डरगार्टनों, इंगलैण्ड के नर्सरी स्कूलों और इटली के मॉण्टेसरी स्कूलों ने शिशु-शिक्षा के महत्त्व एवं स्वरूप को सम्पूर्ण संसार में नवीन आयाम प्रदान किये और नूतन दिशाएँ दिखाईं।

भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का सूत्रपात करने और शिशु-विद्यालयों को लोकप्रिय बनाने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को प्राप्त है। सन् 1939-40 में डॉ० मॉण्टेसरी के भारत-आगमन से पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को विशेष बल मिला और उसी समय से भारतीयों ने इस शिक्षा के प्रति ध्यान देना आरम्भ किया।

भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विकास
(DEVELOPMENT OF PRE-PRIMARY EDUCATION IN INDIA)

हम स्पष्टता की दृष्टि से भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास का वर्णन निम्नांकित शीर्षक के अन्तर्गत कर रहे हैं—

1. ईसाई मिशनरियों के प्रयास—यद्यपि इस देश के अंग्रेज शासकों ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की, तथापि भारत की शैक्षिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि इस शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास का श्रेय उन्हीं के देश के ईसाई मिशनरियों को प्राप्त हुआ। इन मिशनरियों ने 1874 में लखनऊ में लारेटो कॉन्वेंट और पूना में सेण्ट हिल्टाज नर्सरी स्कूल का निर्माण किया। इसके तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् 1888 में उन्होंने मद्रास के सैदापेट उच्च माध्यमिक विद्यालय में किंडरगार्टन कक्षाओं का संचालन आरम्भ किया और धीरे-धीरे अन्य अनेक प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों से इन कक्षाओं को संयुक्त कर दिया।[1] बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत के अधिकांश पूर्व-प्राथमिक विद्यालय, ईसाई मिशनरियों के प्रयास के परिणाम थे। अतः हम मुकर्जी व ओड़ के शब्दों में कह सकते हैं[2]—**"20वीं शताब्दी के प्राथमिक वर्षों में किंडरगार्टन अथवा नर्सरी स्कूल अधिकतर मिशनरियों के साथ ही संयुक्त थे और शिशु-शिक्षालयों को लोकप्रिय बनाने में इन मिशनरियों का बहुत बड़ा योगदान था।"**

2. व्यक्तिगत प्रयास—मिशनरियों से पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को जो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, उसने भारतवासियों को शिक्षा के इस उपेक्षित क्षेत्र के प्रति बरबस आकृष्ट किया। अतः उन्होंने देश के कुछ भागों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए आन्दोलन आरम्भ किए। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इस आन्दोलन को श्रीमती एनी बेसेंट (Annie Besant) एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त हुई। इसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप थियोसॉफिकल सोसायटी (Theosophical Society) और गुजरात एवं महाराष्ट्र के कतिपय शिक्षा-प्रेमियों ने शिशु-शिक्षाशालाओं की सृष्टि की।

1939-40 में डॉ० मेरिया मॉण्टेसरी (Maria Montessori) के भारत-आगमन से पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को विशेष बल एवं मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त हुआ। उसने न केवल शिशुओं की शिक्षा के लिए, अपितु शिशु-शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए भी संस्थाओं की स्थापना की। उसी की प्रेरणा से मद्रास में 'मॉण्टेसरी-संघ' की एक शाखा का सृजन हुआ, जिसने ग्रामीण क्षेत्रों में मॉण्टेसरी पद्धति को लोकप्रिय बनाने में अत्यन्त सराहनीय कार्य किया।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से सम्बद्ध उपरिवर्णित सब कार्य मुख्यतः दक्षिण भारत में हुए और वहीं से देश के अन्य भागों में उनका प्रसार हुआ। इस सन्दर्भ में मुकर्जी व ओड़ ने लिखा है[3]—**"लगभग 1930 तक शिशु-शिक्षा के केन्द्र अधिकतर दक्षिण भारत तक ही सीमित रहे। तत्पश्चात् इनके प्रसार के स्थल धीरे-धीरे बम्बई, इलाहाबाद, दिल्ली और इन्दौर होते गये।"**

1. मुकर्जी व ओड़ : भारतीय शिक्षा, पृष्ठ 26।
2. मुकर्जी व ओड़ : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 26।
3. मुकर्जी व ओड़ : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 26।

3. राजकीय प्रयास—**'कोठारी कमीशन' के शब्दों में[1]—"1947 से पूर्व राज्य द्वारा पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के प्रति बहुत कम ध्यान दिया गया और उसे राज्य का उत्तरदायित्व नहीं माना गया।"**

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के प्रति राज्य का ध्यान आकृष्ट करने और इसका महत्त्व बताकर, इसकी समुचित व्यवस्था किये जाने का कार्य 'सार्जेन्ट रिपोर्ट' एवं 'कोठारी-कमीशन' द्वारा किया गया, यथा—

(i) सार्जेन्ट-रिपोर्ट (1944)—प्राथमिक शिक्षा की दिशा में राज्य के ध्यान को मोड़ने का सर्वप्रथम प्रयास, सार्जेन्ट रिपोर्ट ने किया। इसलिए, इस रिपोर्ट को पूर्व-प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी प्रथम आधिकारिक प्रलेख माना जाता है। इसमें 3 से 6 वय-वर्ग के कम-से-कम 10 लाख नन्हें भावी नागरिकों को निःशुल्क शिक्षा देने के लिए नर्सरी स्कूलों की स्थापना पर बल दिया गया। **'सार्जेन्ट-रिपोर्ट' ने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया—"नर्सरी स्कूल व कक्षाओं के रूप में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था, शिक्षा की किसी भी राष्ट्रीय प्रणाली का अनिवार्य अंग है।"**

"An adequate provision of Pre-Primary instruction in the form of Nursery Schools or classes is an essential adjunct to any national system of education."—*Sargent Report*. Quoted by **Nurullah & Naik : *A History of Education in India*, p. 834.**

(ii) कोठारी कमीशन (1964-66)—**'कोठारी कमीशन'** ने बालक के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता बताकर, यह सिफारिश की[2]—"हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि 1986 तक 3 से 5 वय-वर्ग के 5 प्रतिशत बच्चों के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध हो जाय। इसका अर्थ यह है कि लगभग 25 लाख बच्चे इस शिक्षा से लाभान्वित हो जायेंगे। यदि इस शिक्षा के लिए कम खर्चीली विधियों को अपनाया जाय और 5 से 6 वय-वर्ग के बच्चों के लिए यथासम्भव विशाल पैमाने पर प्राथमिक विद्यालयों में पूर्व-प्राथमिक कक्षा खोल दी जाय, तो हम आशा करते हैं कि 1986 तक 100 लाख बच्चों के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो जायगी।"

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की प्रगति
(PROGRESS OF PRE-PRIMARY EDUCATION)

भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की प्रगति को नीचे की तालिका में स्पष्ट किया गया है—

वर्ष	विद्यालयों की संख्या	बच्चों की संख्या	शिक्षकों की संख्या	प्रत्यक्ष व्यय (लगभग)
1950-51	303	28,000	856	12 लाख रुपये
1965-66	3500	2,50,000	6,500	110 लाख रुपये
1967-68	3614	2,71,268	7,974	—
1977-78	36,000	27,50,000	70,000	

नर्सरी स्कूलों के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण-केन्द्रों की संख्या 1950-51 में मात्र 10 थी। 1967 में यह संख्या बढ़कर 59 हो गई।

1. *Kothari Commission Report*, p. 149.
2. *Kothari Commission Report*, p. 151.

देहाती क्षेत्रों में कुछ वर्षों से 'केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद्' (Central Social Welfare Board) और 'सामुदायिक विकास प्रशासन' (Community Development Administration) द्वारा सराहनीय कार्य किया जा रहा है। इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप 22 हजार से अधिक बालवाड़ियाँ सचालित की जा चुकी हैं, जिनमें लगभग 8 लाख बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।[1]

छठी पंचवर्षीय योजना तथा पूर्व-प्राथमिक शिक्षा
(SIXTH FIVE-YEAR PLAN & PRE-PRIMARY EDUCATION)

शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिकताएँ निश्चित करने की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व छोटे बच्चों, स्कूल जाने योग्य आयु-वर्ग के बच्चों और सामाजिक दृष्टि से सुविधाहीन वर्गों के बच्चों को देना आवश्यक है। बच्चे के प्रथम पाँच वर्ष का समय उसके विकास में बहुत महत्त्व रखता है और इस आयु-वर्ग के बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। शिशुकाल एक ऐसा समय है जबकि बच्चा सबसे अधिक सीखता है और इसी दौरान उसका मानसिक विकास होता है। अतः यह अवस्था शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखती है। स्कूल जाने से पूर्व आयु के बच्चों की देखभाल के लिए इस समय जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं वे खाद्य सामग्री के वितरण तथा सामान्य स्वास्थ्य की जाँच तक सीमित हैं। वे कार्यक्रम बच्चे के व्यक्तित्व मुख्यतः उसके बौद्धिक, सामाजिक व भावात्मक विकास के प्रति कोई ध्यान नहीं देते। अतः 3-6 वर्ष के आयु-वर्ग के बच्चों के लिए बालवाडी, जिनमें खिलौनों, खेल का सामान, सिखलाने की सामग्री और बच्चों के पढ़ने योग्य पुस्तकें हों, उपयोगी होंगी।

छठी पंचवर्षीय योजना में आरम्भ में ग्रामीण और गन्दी बस्तियों में रहने वाले बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यक्रम सचालित किए जायेंगे। यह वह वर्ग होगा जिनके जीवनयापन के साधन बहुत कम हैं और सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से बहुत ही पिछडे हुए हैं। इस योजना का लक्ष्य है कि प्रत्येक विकास-खण्ड में कम से कम एक शिशु-शिक्षा-केन्द्र हो। जहां कहीं सम्भव हो, इन केन्द्रों को ग्रामों के प्राइमरी स्कूलों के अंग के रूप में विकसित करना उपयोगी रहेगा। स्वास्थ्य, पोषाहार, समाज-कल्याण, एकीकृत ग्रामीण विकास तथा शिक्षा-कार्यक्रमों के बच्चे/परिवार और सामुदायिक कल्याण के लिए जो व्यय किया जाता है वह सब इस काम के साथ समन्वित कर दिया जावेगा। पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अनौपचारिक रूप से शिक्षा देने की व्यवस्था की जायेगी और स्थानीय रूप से समाज या पर्यावरण में उपलब्ध होने वाले संसाधनों के उपयोग से बच्चों में किसी चीज को ठीक से समझने की भावना पैदा की जायेगी। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् राज्यों में अपने समाज अभिकरणों के माध्यम से अध्यापकों के प्रशिक्षण तथा कार्यक्रम के लागू करने के लिए जो सिखलाई या पढ़ाई की सामग्री तथा सहायक चीजें हैं, उनके विकसित करने में सहायता देगा।

इस योजना में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा का एक अंग माना गया। इसके लिए प्रारम्भिक शिक्षा के लिए निर्धारित धनराशि में ही व्यय करने को कहा गया।

1. साहित्य-परिचय : शैक्षिक प्रगति विशेषांक, 1976, pp. 255-256.

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए आदर्श विकसित करने हेतु भारतीय शिक्षा-मन्त्रालय ने 1980 में एक विशेषज्ञ-समूह की नियुक्ति की, जिसने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए बहुत-से आदर्शों का सुझाव दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा पूर्व-प्राथमिक शिक्षा

बच्चों से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति इस बात पर विशेष बल देती है कि बच्चों के विकास पर पर्याप्त विनियोग (Investment) किया जाय। विशेषतः ऐसे वर्गों पर, जिनके बच्चों की पहली पीढ़ी शिक्षा प्राप्त कर रही है। बच्चों के विकास के विभिन्न पहलुओं को अलग-अलग करके न देखा जाय। पौष्टिक भोजन व स्वास्थ्य को तथा बच्चों के सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक तथा भावात्मक विकास को समेकित देखा जाय। इस दृष्टि से शिशुओं की देखभाल तथा शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय। सम्भव हो सके तो इस शिक्षा को समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम के साथ जोड़ा जाय। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के सन्दर्भ में शिशुओं की देखभाल के केन्द्र खोले जायेंगे जिससे अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने वाली लड़कियों को स्कूल जाने की सुविधा मिल जायेगी। साथ ही निर्धन वर्गों की कार्यरत स्त्रियों को भी केन्द्रों से सहायता मिल सकेगी। शिशुओं की देखभाल और शिक्षा के केन्द्र पूरी तरह बाल-केन्द्रित होंगे। उनकी गतिविधियाँ खेलकूद पर तथा बच्चों के व्यक्तित्व पर आधारित होंगी। इस अवस्था में औपचारिक रूप से पढना-लिखना नहीं सिखाया जायेगा। इन कार्यक्रमों में स्थानीय समुदाय का पूरा सहयोग लिया जायेगा।

शिशुओं की देखभाल और पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रमों को पूरी तरह समेकित किया जायेगा जिससे प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा मिल सके और मानव संसाधन (Human Resources) विकास में सामान्य रूप से सहायता मिल सके। इसके साथ ही स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम को और सुदृढ़ किया जायेगा।

कार्य-योजना, 1992 में प्रारम्भिक बाल-देखरेख तथा शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में प्रारम्भिक बाल देखरेख तथा शिक्षा पर काफी महत्त्व दिया गया है। इसमें प्रारम्भिक बाल देखरेख तथा शिक्षा को मानव संसाधन विकास की नीति में निम्नलिखित तीन रूपों में स्वीकार किया गया है—

(अ) प्राथमिक शिक्षा के लिए एक पोषक तथा सहायक कार्यक्रम के रूप में,

(आ) समाज के वंचित वर्गों की कार्यरत महिलाओं के लिए सहायता सेवाओं के रूप में,

(स) महत्त्वपूर्ण निवेश के रूप में।

मानव संसाधन विकास की नीति में प्रारम्भिक बाल देखरेख तथा शिक्षा की सम्पूर्ण प्रकृति को भी ध्यान में रखा गया है तथा बच्चों के चहुँमुखी विकास के लिए कार्यक्रमों को आयोजित करने की आवश्यकता का भी उल्लेख किया है। इसमें विशेष रूप से संवेदनशील क्षेत्रों से सम्बन्धित बच्चों की प्रारम्भिक देखरेख तथा मनोरंजन की आवश्यकता पर ध्यान दिया गया है। प्रारम्भिक बाल देखरेख तथा शिक्षा में आयु चूँकि प्रारम्भ से 6 वर्षों तक है, अतः इसमें शिक्षण के औपचारिक तरीकों के स्थान पर

बाल-केन्द्रित दृष्टिकोण, खेल के तरीके से क्रिया-कलाप आधारित अध्ययन तथा शीघ्र ही तीन 'आर' (लिखना, पढ़ना तथा गिनना) को शुद्ध करने पर बल दिया गया है। सामुदायिक सहभागिता के महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया है। समेकित बाल विकास (Integrated Child Development) सेवा तथा अन्य प्रारम्भिक बाल विकास कार्यक्रमों के बीच सम्पर्क स्थापित करने पर भी बल दिया गया है।

प्रारम्भिक बाल कला के दौरान तेजी से हो रहे भौतिक तथा मानसिक विकास के महत्त्व को समझते हुए प्रारम्भिक बाल देखरेख शिक्षा के कई कार्यक्रमों को विशेषकर बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति, 1974 के पश्चात् शुरू किया गया। विद्यमान प्रारम्भिक बाल देखरेख शिक्षा कार्यक्रम में निम्नलिखित शामिल हैं—

1. समेकित बाल विकास योजना (Integrated Child Development Scheme)।
2. प्रारम्भिक बाल देखरेख शिक्षा केन्द्रों के आयोजित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों की सहायता की योजना।
3. सरकारी सहायता से स्वैच्छिक एजेंसियों द्वारा चलाई जा रही बालवाड़ी और दिवा देखरेख केन्द्र।
4. राज्य सरकारों, नगर निगमों तथा अन्य सरकारी तथा गैर-सरकारी एजेंसियों द्वारा चलाये जा रहे पूर्व-प्राथमिक विद्यालय।
5. प्राइमरी स्वास्थ्य केन्द्रों तथा उप-केन्द्रों तथा अन्य एजेंसियों के माध्यम से मातृत्व तथा बाल स्वास्थ्य सेवाएँ।

इस समय समेकित बाल विकास योजना प्रारम्भिक बाल विकास का सबसे बड़ा कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत लगभग 2·90 लाख आँगनवाड़ियाँ लगभग 140 लाख बच्चों तथा लगभग 27 लाख माताओं की सेवाएँ कर रही हैं और 91·5% समेकित बाल विकास योजना की परियोजनाएँ ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्रों में तथा 8·5% शहरी बस्तियों में स्थित हैं। इसके अलावा, समेकित बाल विकास योजना वर्ष 1991-92 के अन्त तक, इसमें 5 साल से कम आयु वाले लगभग 3 लाख बच्चों के लिए 12,470 क्रेच, शैक्षिक रूप से पिछड़े 9 राज्यों में 4395 प्रारम्भिक बाल देखरेख केन्द्र तथा 3·5 वर्ष की आयु वर्ग में लगभग 2·30 लाख बच्चों के लिए बालवाड़ी पौष्टिक आहार कार्यक्रम थे।

प्रारम्भिक बाल देखरेख तथा शिक्षा का लक्ष्य यह है कि प्रत्येक बच्चे की सभी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए पहुँच को सुनिश्चित करना। इसलिए 2000 ई० तक समेकित बाल विकास योजना को सर्व सुलभ बनाने के प्रयास किए जायेंगे। आठवीं योजना के अन्त तक 3·75 लाख आँगनबाड़ी केन्द्रों की स्थापना की जायेगी और 2000 ई० तक सात लाख आँगनबाड़ी होंगी। आँगनबाड़ियों को धीरे-धीरे आँगनबाड़ी एवं क्रेच के रूप में परिवर्तित कर दिया जायेगा। प्रारम्भिक बाल देख-रेख शिक्षा के चल रहे कार्यक्रमों में सुधार करने पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। इसमें प्रचलित विभिन्न कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जायेंगे।

(अ) समेकित बाल विकास योजना—इसमें प्रयासों को जारी रखने तथा प्रभावी एवं सुदृढ बनाने के लिए अग्रलिखित कदम उठाये जायेंगे—

(i) प्रत्येक आँगनवाड़ी प्रशिक्षण केन्द्र को कम से कम 20-25 आँगनवाड़ी केन्द्रों के विकास की जिम्मेदारी सौंपना ताकि प्रशिक्षुओं (Trainees) को पर्याप्त क्षेत्र में प्रशिक्षण दिया जा सके।

(ii) व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए आँगनवाड़ियों को क्रम से कम एक माह के लिए प्रशिक्षुओं को तैनात करना।

(iii) प्रशिक्षकों तथा प्रशिक्षुओं के उपयोग के लिए शैक्षणिक सामग्री का विकास करना।

(iv) सभी आँगनवाड़ियों को बच्चों की सचित्र पुस्तकें, सचित्र पोस्टर, न्यूनतम अनिवार्य खेल सामग्री प्रदान करना तथा उन्हें आवधिक रूप से बदलते रहना।

(v) सी० डी० पी० ओ० (Child Development Programme Officer's) कार्यालय को संसाधन केन्द्र के रूप में विकसित करना और उसे प्रशिक्षण सामग्री प्रदान करना।

(vi) जहाँ कहीं सम्भव हो प्राइमरी स्कूलों के साथ समेकित बाल विकास योजना आँगनवाड़ियों के समय को समन्वित करना।

(आ) प्रारम्भिक बाल शिक्षा केन्द्र—इस समय इस योजना में न तो पोषाहार का घटक है और न ही शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए कोई प्रावधान है। अतः इसमें सुधार के लिए तत्काल से ही निम्नलिखित कदम उठाये जायेंगे—

(i) अभिभावक/सामुदायिक सहायता के साथ-साथ पोषाहार घटक को जोड़ना।

(ii) कार्मिकों के प्रशिक्षण का प्रावधान।

(iii) बच्चों के लिए शैक्षिक सामग्री की आपूर्ति।

(iv) खेल के तरीकों का पढ़ाई में उपयोग करना तथा प्रारम्भिक पढ़ाई में तीन 'आर' को समाप्त करना।

(इ) स्वैच्छिक एजेंसियों द्वारा चलाई जा रही बालवाड़ियाँ—बालवाड़ी की पद्धतियों में विभिन्नता है। प्रत्येक योजना का अपना इतिहास तथा पृष्ठभूमि है। स्वैच्छिक एजेंसियों द्वारा चलाये जा रहे सभी बाल विकास कार्यक्रमों को एक समेकित दृष्टिकोण तथा एक विस्तृत पैकेज प्रदान करके उन्हें दोहराव से बचाकर तैयार किया जायेगा। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ विद्यमान क्रियाकलापों को कुछ विस्तृत तथा समेकित कार्यक्रम के साथ मिलाया जायेगा। स्वैच्छिक एजेंसियों द्वारा चलाये जा रहे अधिकतर कार्यक्रमों में स्वास्थ्य, पोषाहार तथा शिक्षा के सभी घटक नहीं हैं। अतः इनको पूर्ण रूप से बाल विकास केन्द्रों में परिवर्तित करने के लिए कदम उठाये जायँगे।

(ई) पूर्व-प्राथमिक विद्यालय तथा कक्षाएँ—इसमें अनिवार्य रूप से शिक्षा पर बल दिया गया है। अतः इनके सुधार के लिए निम्नलिखित की आवश्यकता है—

(i) समुदाय/अभिभावक सहभागिता के साथ पोषाहार का घटक जोड़ना।

(ii) शीघ्र शुरू किये जाने वाले तीन 'आर' को प्रोत्साहित न करना।

(iii) खेल के तरीकों का प्रयोग करना।

(iv) घर तथा समुदाय के बीच सम्बन्ध विकसित करना।

(v) दाखिलों के लिए प्रवेश परीक्षा को प्रोत्साहन न देना।

(उ) **बाल देखरेख केन्द्र**—सरकारी सहायता/सहायता के बिना चलाये जा रहे क्रेचों तथा दिवा देखरेख केन्द्रों की अन्य रूप से तत्काल ही समीक्षा करने तथा उसे सुदृढ बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए निम्नलिखित अपेक्षाओं को सुनिश्चित किया जायेगा।

(i) स्कूल के कार्य के समय तथा माताओं के कार्य के समय के बीच समय में तालमेल करना।

(ii) पर्याप्त, सुरक्षित तथा स्वच्छ स्थान।

(iii) पर्याप्त बाल कार्यकर्त्ता अनुपात।

(iv) स्वच्छ पीने का पानी।

(v) अनुपूरक पोषाहार।

(iv) मेडीकल पर्यवेक्षण के अन्तर्गत मेडीकल सुविधाएँ।

(vii) बिछौनों तथा पालनों सहित न्यूनतम उपस्कर।

(viii) खिलौने तथा खेल सामग्री।

प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने में तथा मानव ससाधन विकास के लिए प्रारम्भिक शिशु देखभाल तथा शिक्षा की भूमिका को एक सहायक सेवा के रूप में ध्यान में रखते हुए प्रारम्भिक शिशु देखभाल तथा शिक्षा का रुख सुविधाहीन वर्गों की ओर ही जारी रखा जायेगा जो अब भी औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा से बाहर रह गये हैं। इनमें से कुछ लोगों को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया गया है—

(i) शहरी गन्दी बस्तियों के बहुत गरीब।

(ii) उन सुविधाहीन क्षेत्रों के बच्चे, जो परिस्थितिवश जलाने की लकड़ी, गोबर के उपले, पनहारे तथा अन्य घरेलू कार्यों से सम्बन्धित आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में पारिवारिक मजदूर तथा घरेलू कामकाज करने वाले और घरेलू कार्य करने वाले कारीगर।

(iv) बंजारे अथवा आकस्मिक मजदूर जो सड़क छाप कामगारों की तरह जीवन भर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते हैं।

(v) भूमिहीन कृषि मजदूर।

(vi) खानाबदोश तथा चरवाहे।

(vii) जंगलों में निवास करने वाले तथा दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी।

(viii) दूर-दराज की अलग-अलग पड़ी बस्तियों के निवासी।

प्रारम्भिक शिशु देखभाल शिक्षा की विषय-वस्तु—बच्चों के मानसिक विकास के लिए स्कूल कार्यक्रमों की विषय-वस्तु उपलब्ध करायी जानी चाहिए। इसका तात्पर्य स्वास्थ्य, पोषाहार तथा शिक्षा के घटकों को उपलब्ध कराना होगा। विशेष रूप से इसमें अग्रलेखित बातें शामिल होंगी—

1. जहाँ आवश्यक हो वहाँ अनुवर्ती तथा रैफरल सेवाओं के साथ-साथ बच्चों की नियमित चिकित्सा जाँच।

2. बच्चों की पौष्टिक स्थिति के अनुसार प्रतिदिन पूरक पोषाहार का प्रावधान।

3. मासिक/पाक्षिक रिकार्डों के माध्यम से कद तथा वजन की वृद्धि का अनुवीक्षण।

4. बाल-केन्द्रित तथा विकास एवं प्रगति घटक खेलकूद कार्यकलापों की आयोजना इस रूप में बनाई जाय ताकि बच्चे विभिन्न प्रकार के अर्जित ज्ञान, आनन्द तथा जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सकें।

5. सम्प्रेषण का माध्यम मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा हो। मातृभाषा तथा क्षेत्र की प्रमुख भाषा के बीच सम्पर्क होना चाहिए।

6. भाषा कौशल तथा ज्ञानात्मक को बढ़ावा देना।

7. उमंग तथा सृजनशीलता और विश्वास की भावना भरना।

8. माँसपेशीय विकास को बढ़ावा देना।

समस्याएँ और उनके समाधान
(PROBLEMS & THEIR SOLUTIONS)

यद्यपि हमारे देश में कुछ वर्षों से पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की प्रगति पर्याप्त तीव्र गति से हो रही है, तथापि भारत की आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस प्रगति को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता है। यदि हम इस शिक्षा की वर्तमान स्थिति पर समग्र रूप में विचार करें तो यह हमको अनेक कमियों एवं त्रुटियों की जटिल समस्याओं में उलझी हुई मिलती है। इन समस्याओं से मुक्त होकर ही यह प्रगति के पथ पर अपना अप्रतिबन्धित अभियान आरम्भ कर सकती है और तभी यह इस देश के विभिन्न वर्गों के बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूर्ण करके, भारतीय शिक्षा के इतिहास में अविस्मरणीय स्थान प्राप्त करने की अधिकारिणी बन सकती है। ये समस्याएँ कौन-सी हैं ? इनका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है ? इन्हीं पर हम नीचे की पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैं; यथा—

1. समस्या—साज-सज्जा का अभाव : Dearth of Equipment—स्वतन्त्र भारत में पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि तो अवश्य द्रुतगति से हो रही है, पर इनमें से थोड़े-से विद्यालयों के अतिरिक्त शेष सब में साज-सज्जा का नितान्त अभाव है। इस साज-सज्जा के अन्तर्गत दो प्रकार के उपकरणों का स्थान है—(1) शिक्षक द्वारा शिक्षण के लिए प्रयोग किये जाने वाले उपकरण, और (2) बालक द्वारा अपने खेलों, रचनात्मक कार्यों एवं विभिन्न क्रियाकलापों में प्रयोग किये जाने वाले उपकरण। अधिकांश विद्यालय ऐसे हैं, जिनमें शिक्षक के लिए केवल श्यामपट एवं कुछ चित्र, चार्ट, मॉडल आदि और बालक के लिए कुछ रंगबिरंगी गोलियाँ, खिलौने, झूले आदि हैं। इस प्रकार, ये विद्यालय—शिक्षण एवं अधिगम के उपकरणों से प्रायः विहीन हैं।

इन विद्यालयों के उपकरणहीन शैक्षिक वातावरण में बालकों को शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करना, 'शिक्षा' शब्द की विडम्बना मात्र है। अपने परिवार के सदस्यों की उदर-पूर्ति करने के लिए विभिन्न कार्यालयों, व्यवसायों आदि में दिन के अनेक घण्टे व्यतीत करने वाले माता-पिता विवशतावश अपने अबोध बच्चों को भले ही इन विद्यालयों में भेज दें, पर यह आशा करना कि शिक्षा के साधनों एवं सुविधाओं से हीन इन संस्थाओं में वे अच्छी बातें सीखेंगे या किसी प्रकार के लाभप्रद ज्ञान का अर्जन करेंगे, केवल स्वर्णिम स्वप्न है। मुकर्जी व ओड़ ने ठीक ही लिखा है[1]—**"ऐसी शालाओं में बालकों के लिए कुछ लाभ प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती है, घर के स्वाभाविक स्नेह व संरक्षण से दूर रहने की हानियाँ ही कदाचित् उन्हें प्राप्त होती हैं।"**

समाधान—सस्ते उपकरणों का प्रयोग : Use of Cheap Aids—साज-सज्जा के अभाव को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय है—सस्ते उपकरणों का प्रयोग। इन उपकरणों को प्राप्त करने के लिए 4 सुझाव दिए जा सकते हैं; यथा—

(i) उपकरणों को प्राप्त करने के लिए स्थानीय साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाय।

(ii) धनी एवं उदार हृदय व्यक्तियों तथा अभिभावकों से बिना मूल्य या नाममात्र के मूल्य पर उपकरण देने की प्रार्थना की जाय।

(iii) बेसिक स्कूलों और बहु-उद्देशीय स्कूलों में सस्ते उपकरण बनाए जाएँ और वे लागत मूल्य पर पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों को दिए जायँ।

(iv) पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण काल में विभिन्न प्रकार के उपकरणों को बनाने की विधियों से परिचित कराया जाय।

2. समस्या—धन का अभाव : Dearth of Money—हमारे देश में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की स्थिति निश्चित रूप से अत्यन्त असन्तोषजनक है। इस स्थिति के अनेक सामाजिक कारण हो सकते हैं। किन्तु, इन सबसे अधिक गम्भीर कारण है—आर्थिक कारण अथवा धन का अभाव। भारत-सरकार, सम्पूर्ण शिक्षा पर जितना धन व्यय करती है, उसका केवल 0·2 प्रतिशत, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर करती है।[2] इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक नन्हे शिशु की शिक्षा पर प्रति वर्ष 15 रुपए, अर्थात् 1·25 रुपए प्रति माह, यानी 4 पैसे प्रतिदिन से अधिक व्यय नहीं किया जाता है।

इस सम्बन्ध में तनिक भी मत-विभिन्नता नहीं हो सकती है कि इससे अधिक धन व्यय किया जा सकता है किन्तु, सरकार ने इस प्रश्न को यह कहकर टाल दिया है[3]—**"हालांकि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है, पर सरकार केवल सीमित उत्तरदायित्व ले सकती है। इसका कारण यह है कि साधन कम हैं।"**

समाधान—कम खर्चीली विधियों का प्रयोग : Use of Inexpensive Techniques—**"कोठारी कमीशन"** ने भारत-सरकार की धन-सम्बन्धी मजबूरी को स्वीकार किया है और

1. मुकर्जी व ओड़ : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 32.
2. *Kothari Commission Report*, p. 149.
3. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० 222.

धनाभाव की समस्या का समाधान करने के लिए निम्नलिखित कम खर्चीली विधियों के प्रयोग का अनुमोदन किया है[1]—

(i) मद्रास का प्रयोग—इस प्रयोग में एक स्थानीय महिला को थोड़ा-सा मानदेय (Honorarium) देकर, अध्यापिका के रूप में चुन लिया जाता है और फिर उसे अल्पकालीन प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके पश्चात्, वह अपने स्थान के महिला-मण्डल के सहयोग से बच्चों को पूर्व-प्राथमिक शिक्षा देने का कार्य करती है। यह विधि इतनी कम खर्चीली है कि इसमें प्रति छात्र पर वार्षिक शैक्षिक व्यय 20 रुपये से कम होता है।

(ii) प्राथमिक विद्यालयों में मनोरंजन-केन्द्र—प्राथमिक विद्यालयों में मनोरंजन या क्रीड़ा-केन्द्र स्थापित करने का प्रयोग, देश के अनेक भागों में सफलतापूर्वक किया गया है। यह केन्द्र 3 से 5 वय-वर्ग के बच्चों के लिए होता है। वे इस केन्द्र में प्रतिदिन लगभग 2 घण्टे के लिए आते हैं। यहाँ वे सामूहिक संगीत, कहानी कहते एवं खेलकूद में सम्मिलित होते और उनकी वैयक्तिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के प्रति काफी ध्यान दिया जाता है। ये केन्द्र, विद्यालय से पूर्व की कक्षाओं के रूप में कार्य करते हैं और बालक को बचपन की खेलकूद भरी दुनियाँ से प्राथमिक विद्यालय के औपचारिक वातावरण में प्रवेश करने की अन्तिम अवधि को सहज बना देते हैं। ये प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा चलाये जाते हैं, जिनको इस कार्य के लिए अलग भत्ता दिया जाता है। अतः इनको चलाने में बहुत कम धन व्यय होता है।

धनाभाव की समस्या का समाधान करने के लिए "कोठारी कमीशन" के दोनों सुझाव इतने उपयोगी हैं कि उसके विपक्ष में विचार व्यक्त करना, घोर अज्ञानता का परिचय देना है। इसीलिए **"कोठारी कमीशन"** ने यह पूर्वाशा प्रकट की है[2]—**"यदि हमारे द्वारा प्रस्तावित की गई कम खर्चीली विधियों को अपनाया जाय, तो हम पूर्वाशा करते हैं कि 1986 तक पूर्व-प्राथमिक स्तर पर कुल नामांकन (Enrolment) लगभग 100 लाख हो जायगा।"**

3. समस्या—प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का अभाव : Dearth of Trained Lady Teachers—पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं के अभाव पर विचार करने से पहले यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस स्तर पर अध्यापकों के बजाय अध्यापिकाओं के अभाव की बात क्यों कही गई है ? इसका कारण यह है कि "शिशुओं के व्यक्तित्व के विकास को दिशा देने के लिए कठोरता की अपेक्षा कोमलता की आवश्यकता होती है। नारी कोमलता की मूर्ति है, वात्सल्य की अक्षय निधि है एवं शिशु के जीवन के लिए स्वयं का उत्सर्ग कर देने वाली ममतामयी प्राणी है। अतः वह पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए नर से अधिक उपयुक्त है।"[3]

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए पुरुषों से अधिक उपयुक्त होने के कारण ही महिला-अध्यापिकाओं की अधिक माँग है। किन्तु, वे इस माँग के अनुपात में उपलब्ध नहीं हैं।

1. *Kothari Commission Report*, pp. 149-150.
2. *Kothari Commission Report*, p. 150.
3. साहित्य-परिचय : शिक्षा-समस्या विशेषांक, 1969, p. 158.

इसकी पुष्टि **अदावाल या उदियाल** के अग्रांकित वाक्य से हो जाती है[1]—**"पूर्व-प्राथमिक स्तर पर अध्यापिका-छात्र अनुपात 1 : 3 है, जो तीन से पाँच वर्ष के वय-समूह के बालकों की दृष्टि से बहुत ही असन्तोषपूर्ण है।"**

इस स्तर पर अध्यापिकाओं, विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापिकाओं के अभाव के अनेक प्रत्यक्ष कारण हैं; यथा—

(i) अध्यापिकाएँ अपने स्थायी निवास-स्थानों को छोड़कर, अन्य स्थानों को, विशेष रूप से ग्रामों को जाना पसन्द नहीं करती हैं।

(ii) वे विवाह के पश्चात् अध्यापन-कार्य को असुविधाजनक मानकर, उसे करना बन्द कर देती हैं।

(iii) उन पर विद्यालयों में कार्य का भार इतना अधिक होता है कि वे अध्यापन-कार्य के बजाय किसी अन्य कार्य को करना अधिक पसन्द करती हैं।

(iv) उनकी औसत आय 100 रुपये मासिक से अधिक नहीं है, जो उनके जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने के लिए भी पर्याप्त नहीं।[2]

(v) उनके प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं है, जैसा कि नीचे की तालिका से विदित हो जायगा।

विभिन्न राज्यों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाएँ[3]

राज्य	प्रशिक्षण संस्थाएँ	राज्य	प्रशिक्षण-संस्थाएँ
आसाम	1	राजस्थान	3
दिल्ली	1	महाराष्ट्र	12
गुजरात	10	पश्चिमी बंगाल	4
केरल	3	आंध्र प्रदेश	2
मद्रास	4	मध्य प्रदेश	4
मैसूर	7	उत्तर प्रदेश	8
पंजाब	3		

समाधान—प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की पूर्ति : Supply of Trained Lady Teachers—पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापिकाओं के अभाव को समाप्त करने और उनको पर्याप्त संख्या में उपलब्ध बनाने के लिए निम्नलिखित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है—

(i) अध्यापिकाओं को अपने स्थायी निवास-स्थानों के पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में कार्य करने की सुविधा प्रदान की जाय।

(ii) उनको विवाह के पश्चात् निवास-स्थान की सुविधा देकर और विद्यालय-समय में परिवर्तन करके अध्यापन-कार्य में संलग्न रहने का प्रोत्साहन दिया जाय।

1. अदावाल व उनियाल : भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथा प्रवृत्तियाँ, पृ० 219।
2. अदावाल व उनियाल : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 217।
3. S. N. Mukerji : Education of Teacher in India, Vol. I, p. 291.

(iii) उन पर विद्यालयों में कार्य का भार कम करने के लिए अध्यापिकाओं की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय।

(iv) उनको वही वेतन दिया जाय, जो प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को दिया जाता है।

(v) उनके प्रशिक्षण के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण, अल्पकालीन प्रशिक्षण एवं नवीन प्रशिक्षण-संस्थानों का निर्माण करने की व्यवस्था की जाय।

4. समस्या—अभिभावकों की अज्ञानता : Ignorance of Guardians—भारत में अधिकांश अभिभावकों को इस बात का अल्प मात्रा में भी ज्ञान नहीं है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा क्या है और शिशुओं के लिए इसकी क्या उपयोगिता है। उनकी इस अज्ञानता का कारण है—भारत में अशिक्षा की व्यापकता। इस समय हमारे देश के 48 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति, अशिक्षित एवं निरक्षर हैं।

अशिक्षित होने के कारण अभिभावकों का ध्यान नव-प्रचलित पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की ओर न जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है और यदि किसी प्रकार चला भी जाता है, तो वे इसके महत्त्व से परिचित नहीं हैं।

समाधान—जनता में जागृति : Consciousness among Masses—पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अभिभावकों की अज्ञानता का अन्त करने का एकमात्र उपाय है—जनता में जागृति उत्पन्न करना, जन-जन के मानस-पटल पर इस शिक्षा के महत्त्व की गहरी छाप अंकित करना। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर आन्दोलन की परम आवश्यकता है। जिस प्रकार सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करने के लिए हमारे देश में व्यापक सामाजिक आन्दोलन हुए हैं, उसी प्रकार जनसाधारण को पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के महत्त्व से अवगत कराने के लिए भी आन्दोलन किए जाने चाहिए।

ये आन्दोलन—सर्वोदय समाज, भारत सेवक-समाज एवं शिशु-शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा तत्काल आरम्भ किए जाने चाहिए और इनको केन्द्रीय एवं राज्यों के समाज-कल्याण-परिषदों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, **डॉ० मुकर्जी** का एक सुझाव यह है[2]—हमारे देश में समाज-शिक्षा का जो आन्दोलन चल रहा है, उसके अन्तर्गत अशिक्षित वयस्कों को 'बुद्धिमान माता-पिता' (Wise Parenthood) में कर्त्तव्यों का ज्ञान प्रदान करने का नवीन कार्यक्रम सम्मिलित किया जाना चाहिए।

5. समस्या-विभाजित उत्तरदायित्व : Divided Responsibility—इस समय स्थिति यह है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व न तो केन्द्रीय सरकार पर है, न राज्य सरकार पर, न जिले के प्रशासन पर और न किसी अखिल भारतीय संस्था पर। अधिकांश पूर्व-प्राथमिक विद्यालय—व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा और कुछ केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में चलाए जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में **'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना'** में यह उल्लेख मिलता है[3]—**"इस समय प्राग्विद्यालय शिक्षा की उपलब्ध सुविधाएँ शहरी क्षेत्र में**

1. *India*, 1991.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 433.
3. पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (प्रारूप), पृष्ठ 199-200।

गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाए गए स्कूलों तथा समाज-कल्याण क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी तत्त्वावधान में चलाए गए कुछ हज़ार बालवाड़ियों तथा आँगनवाड़ियों तक ही सीमित हैं।" किसी-किसी राज्य में कुछ आदर्श पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के संचालन का कार्य, सरकार द्वारा आरम्भ कर दिया गया है, पर इन विद्यालयों की संख्या नगण्य है।[1]

इस प्रकार, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व—केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकार एवं व्यक्तिगत संस्थाओं के मध्य विभाजित है। "विभाजित उत्तरदायित्व किसी का भी उत्तरदायित्व नहीं होता है"—यह चिर-विख्यात लोकोक्ति है। अतः इस प्रकार का उत्तरदायित्व, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए निश्चित रूप से विघ्नकारी एवं अनिष्टकारी है। इसके परिणाम पर प्रकाश डालते हुए **अदावाल व उनियाल** ने लिखा है[2]—**"पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था के विषय में यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीय शिक्षा वह अकेला क्षेत्र है जिसके प्रति कोई उत्साह नहीं है, एक प्रकार की महत्त्वहीनता है, असम्बद्धता है और अनिश्चितता है। इसका सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य धुँधला है।"**

समाधान—सरकार का उत्तरदायित्व : Responsibility of Government—पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के धुँधले परिप्रेक्ष्य को प्रकाशमान् तभी किया जा सकता है, जब इसका उत्तरदायित्व किसी एक पर हो। किन्तु, किस पर ? इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ व्यक्ति इसका उत्तरदायित्व, व्यक्तिगत संस्थाओं पर और कुछ सरकार पर चाहते हैं। 'कोठारी कमीशन' ने इसका उत्तरदायित्व दोनों पर रखा है।[3] यद्यपि 'कमीशन' का प्रतिवेदन, सरकार के हाथ में 1966 में पहुँच गया था, तथापि उसने "कमीशन" के सुझाव के प्रति ध्यान न देकर **"चौथी पंचवर्षीय योजना"** (1969-1974) में अपना यह निर्णय प्रकाशित किया[4]—**"पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को काफी हद तक निजी हाथों में छोड़ दिया गया है।"**

किन्तु, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को निजी हाथों में छोड़ने से इस शिक्षा की तो क्या, शिक्षा के किसी भी स्तर की उन्नति होना असम्भव है। इसका कारण बताते हुए और राज्य पर इस शिक्षा का उत्तरदायित्व रखते हुए, **अदावाल व उनियाल** ने लिखा है[5]—**केवल निजी प्रयास से इस स्तर की उन्नति नहीं हो सकती है, क्योंकि अभी भारतीय जनता विशेष जागरूक नहीं हो पाई है। वर्तमान समय में बाल-कल्याण के क्षेत्र में जो निजी प्रयास हैं भी, वे इतने कम और कुछ ऐसे व्यावसायिक दृष्टिकोण से आच्छादित हैं कि उनके आधार पर यह धारणा बना लेना गलत होगा कि जनता स्वयं इस क्षेत्र में अच्छी संस्थाओं का विकास करेगी। सन् 1947 के बाद भी जो मिशनरी प्रयास हुए हैं उन तक से सामान्य जनता ने कोई प्रेरणा नहीं ली है। अतएव, इस क्षेत्र में राज्य के नेतृत्व की शीघ्र आवश्यकता है—उद्‌बोधन और क्रियात्मक, दोनों ही रूपों में।"**

1. **साहित्य-परिचय** : शिक्षा-समस्या विशेषांक, पृ० 160।
2. **अदावाल व उनियाल** : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 223।
3. *Kothari Commission Report*, p. 149.
4. **चौथी पंचवर्षीय योजना** (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृष्ठ 222।
5. **अदावाल या उनियाल** : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 222-223।

हम **"पाँचवीं पंचवर्षीय योजना"** में यह पढ़कर सन्तोष की साँस लेते हैं कि राज्य-सरकार पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व वहन करने की दिशा में उन्मुख हो रही है[1]—"यद्यपि श्रेष्ठ किस्म की किसी प्राग्विद्यालय शिक्षा की व्यवस्था करना कठिन होगा, लेकिन स्थिति की माँग यह है कि कुछ प्रारम्भिक प्रयत्न तत्काल किए जाने चाहिए। इसलिए पाँचवीं योजना में यह परिकल्पना की गई है कि 3-6 आयु-वर्ग के बच्चों के खेल-केन्द्रों को कुछ चुने हुए प्रारम्भिक विद्यालयों के साथ सम्बद्ध कर दिया जाय। इन केन्द्रों के अतिरिक्त गैर-सरकारी अभिकरणों को प्राग्-प्राथमिक विद्यालयों को चलाने के लिए प्रोत्साहित किया जायगा तथा राज्य-सरकार अध्यापक-प्रशिक्षण, अध्यापक-प्रशिक्षण, अध्यापक-निर्देशिकाएँ (Teacher Guides) तैयार करने तथा हमारी अवस्थाओं के अनुकूल प्राग्-विद्यालय-क्रिया-सम्बन्धी कार्य-पद्धति को तैयार करने के लिए अनुसन्धान प्रगति हेतु महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में और आर्थिक सहायता देगी। कुछ समेकित (Integrated) बाल-कल्याण-सेवा-केन्द्रों में प्राग्-विद्यालय-शिक्षा प्रायोगिक आधार पर प्रारम्भ की जायगी।"

6. समस्या—सीमित विस्तार : Limited Expansion—अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विस्तार अत्यधिक सीमित है। इसके निम्नांकित 4 प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

(i) 3 से 5 वय-वर्ग से प्रत्येक एक हजार बच्चों में से केवल एक बच्चे को पूर्व-प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है।[2]

(ii) दसवीं कक्षा तक के समस्त छात्रों एवं छात्राओं में से केवल एक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा प्राप्त होता है।[3]

(iii) भारत में 6 वर्ष की आयु तक के बच्चों की कुल संख्या 30 लाख से अधिक है।[4] इनमें से केवल 10 लाख बच्चों के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था है।[5]

(iv) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ मुख्यतः नगरीय क्षेत्रों में निवास करने वाले सम्पन्न परिवारों के बच्चों तक ही सीमित हैं। ग्रामीण अंचलों में निवास करने वाली भारत की अधिकांश जनता के अधिकांश बच्चे इस शिक्षा से वांछित लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं।

समाधान—अधिक विस्तार : Greater Expansion—यद्यपि हमारे देश में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विस्तार त्वरित गति से हो रहा है, तथापि इस विस्तार का निर्धारित लक्ष्य अभी पूरा नहीं हुआ है। यह लक्ष्य तभी पूरा होगा, जब पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का सूर्य, निर्धन एवं ग्रामीण अंचलों में अपने नूतन प्रकाश को सर्वत्र विकीर्ण करेगा। यह तभी सम्भव होगा, जब पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए नवीन दिशाओं में ठोस कदम उठाए जायेंगे। इन दिशाओं का संकेत हमें **"कोठारी कमीशन के प्रतिवेदन"** में इस प्रकार मिलता है[6]—

1. **पाँचवीं पंचवर्षीय योजना** (प्रारूप), पृष्ठ 200।
2. & 3 **अदावाल या उनियाल** : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 218।
4. *Kothari Commission Report*, p 153.
5. **साहित्य-परिचय** : शैक्षिक प्रगति विशेषांक, 1976, पृ० 256।
6. *Kothari Commission Report*, pp 149-150.

(i) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए प्रत्येक राज्य के राज्य-शिक्षा संस्थान (State Institute of Education) में राज्य-स्तर का एक केन्द्र (State Level Centre) स्थापित किया जाय।

(ii) अगले बीस वर्षों में प्रत्येक जिले में एक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा-विकास केन्द्र (Pre-Primary Education Development Centre) की स्थापना की जाय और इसे अग्रलिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाय जाय—(i) पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण, पर्यवेक्षण (Supervision) एवं मार्गदर्शन की व्यवस्था, (ii) उनके लिए अभिनवन-पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण के कार्यक्रमों (Programmes of Inservice Training) का आयोजन; (iii) उपलब्ध सामग्री से शिक्षण-सामग्री तैयार करवाने का प्रबन्ध; (iv) प्रायोगिक पूर्व-प्राथमिक विद्यालय का संचालन; और (v) बच्चों की देखभाल के विषय में अभिभावकों की शिक्षा की व्यवस्था।

(iii) देश की वर्तमान स्थिति में पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन का कार्य व्यक्तिगत प्रबन्धकों द्वारा ही किया जाय, पर इन विद्यालयों को राज्य-सरकारों द्वारा उदार आर्थिक सहायता दी जाय।

(iv) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार से सम्बन्धित प्रत्येक अनुसन्धान को और विशेष रूप से कम खर्चीली विधियों के प्रयोग को राज्य-सरकारों द्वारा पूरा-पूरा प्रोत्साहन दिया जाय।

(v) प्राथमिक विद्यार्थियों में बच्चों के क्रीड़ा-केन्द्र स्थापित किए जायँ। इनका संचालन प्राथमिक विद्यालयों के प्रशिक्षित अध्यापकों या पृथक् अध्यापकों द्वारा विद्यालयों से पूर्व की कक्षाओं के रूप में प्रतिदिन दो घण्टे किया जाय। इनके कार्यक्रम में सामूहिक संगीत, कहानी कहना, खेलकूद और वैयक्तिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य को सम्मिलित किया जाय।

(vi) राज्य-सरकारों द्वारा पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के लिए आवश्यक साहित्य एवं सामग्री तैयार करवाने में सहायता दी जाय।

(vii) राज्य-सरकारों द्वारा शहरी गन्दी बस्तियों या देहाती क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए या आदर्श संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों का स्वेच्छा से शिलान्यास एवं संचालन किया जाय।

7. समस्या—असमान व अस्पष्ट उद्देश्य : Diverse & Indefinite Aims—वर्तमान भारत में पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की वृद्धि अवश्य हुई है, पर इस वृद्धि में बाल-विकास से सम्बन्धित उद्देश्यों का अभाव खटकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि ये विद्यालय या तो वाणिज्य-वृत्ति वाले व्यक्तियों द्वारा धन कमाने के लिए, या समाज-कल्याण-केन्द्रों द्वारा समाज के कुछ बच्चों के हित के लिए, या विभिन्न व्यवसायों में कार्य करने वाली माताओं के शिशुओं की देखभाल करने के लिए, या नगर के निर्जन परिवारों के बच्चों को उपयुक्त वातावरण प्रदान करने के लिए, या धन-सम्पन्न व्यक्तियों के बच्चों को उत्तम प्रकार की शिक्षा देने के लिए निर्धारित किये गए हैं।

इतने विभिन्न उद्देश्य से स्थापित किए जाने वाले पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के शैक्षिक उद्देश्यों का असमान और अस्पष्ट होना स्वाभाविक है। ये विद्यालय, बालकों को

अल्पकालीन संरक्षण और थोड़ा-सा ज्ञान भले ही प्रदान कर दें, पर ये न तो उनका वांछित दिशा में विकास कर सकते हैं और न उनको उपयुक्त शिक्षा प्रदान करने का कार्य ही कर सकते हैं। अतः इस प्रकार के पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की वृद्धि को न तो पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की प्रगति माना जा सकता है और न उसकी सफलता का द्योतक। मुकर्जी व ओड़ का यह कथन अक्षरशः सत्य है[1]—**"किसी भी योजना की सफलता का प्रथम मूल चरण है—उद्देश्यों की स्पष्टता। किसी भी क्षेत्र में निरुद्देश्य संख्यात्मक वृद्धि उस क्षेत्र में प्रगति का सूचक नहीं हो सकता है।"**

समाधान—समान व स्पष्ट उद्देश्य : Similar & Definite Aims—भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विचार, पाश्चात्य देशों से ग्रहण किया गया है। उन देशों के आदर्श एवं आवश्यकताएँ हमारे देश के आदर्शों एवं आवश्यकताओं से भिन्न हैं। अतः वहाँ की पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों को वहाँ के बच्चों एवं समाज के लिए तो हितकर माना जा सकता है, पर भारत के बच्चों एवं समाज के लिए नहीं। इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि भारत के आदर्शों, आर्थिक दशाओं एवं सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के समान एवं स्पष्ट उद्देश्यों का निर्धारण किया जाय। इस दृष्टि से "कोठारी कमीशन" ने उद्देश्यों की जो निम्नलिखित सूची प्रस्तुत की है, यह स्वीकार किए जाने के योग्य है[2]—

(i) बालक में अच्छी स्वस्थ आदतों का विकास करना।

(ii) बालक में व्यक्तिगत समायोजन के लिए वस्त्र पहनने, नहाने-धोने, भोजन करने, स्वच्छ रहने आदि की आवश्यक योग्यताओं का विकास करना।

(iii) बालक में वांछनीय सामाजिक अभिवृत्तियों एवं व्यवहार के प्रतिमानों का विकास करना।

(iv) बालक को दूसरों के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के प्रति सजग रखने के लिए, उसमें स्वस्थ सामूहिक साझेदारी की भावना का विकास करना।

(v) बालक को अपने संवेगों को अभिव्यक्त करने, समझने, स्वीकार करने और नियन्त्रित करने का निर्देशन देकर, उसके संवेगों की परिपक्वता का विकास करना।

(vi) बालक की सौन्दर्यात्मक भावना का विकास करना।

(vii) बालक में अपने वातावरण के सम्बन्ध में बौद्धिक जिज्ञासा उत्पन्न करना।

(viii) बालक को अपनी आस-पास की दुनियाँ को समझने में सहायता देना।

(ix) बालक को खोज, पड़ताल और प्रयोग के अवसर देकर, उसमें नवीन अभिरुचियाँ पल्लवित करना।

(x) बालक को आत्म-अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर देकर, उसे स्वतन्त्रता एवं सृजनशीलता के लिये प्रोत्साहित करना।

(xi) बालक की अपने विचारों एवं भावनाओं को शुद्ध, स्पष्ट एवं धारावाहिक भाषा में प्रकट करने की योग्यता का विकास करना।

1. मुकर्जी व ओड़ : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 30।
2. *Kothari Commission Report*, p. 148.

(xii) बालक में अच्छे शारीरिक गठन, पर्याप्त माँसपेशी समन्वय और बुनियादी अंगचालन की निपुणता का विकास करना।

8. समस्या—अपूर्ण व दोषपूर्ण कार्यक्रम : Incomplete & Faulty Programme— पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम के विषय में विश्व के सब देशों में अब तक कुल मिलाकर 370 प्रयोग हो चुके हैं, किन्तु इसके विषय में अभी तक किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है।[1] वस्तुतः इस स्तर पर बालकों के लिए किसी प्रकार के पाठ्यक्रम को निर्धारित करना, उनको नियमितता के बन्धन में बाँधना, उनके विकास के लिए सर्वथा अनुचित है। सत्य यह है कि इस स्तर पर उनके लिए क्रियाकलापों के कार्यक्रमों का ही निर्माण किया जा सकता है। यही विचार **'कोठारी कमीशन'** ने अग्रांकित शब्दों में व्यक्त किया है—**"हम पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम की भुश्किल से ही बात कर सकते हैं। इसको क्रियाकलाप कार्यक्रम समझना ही अधिक उचित है।"**

"We can hardly talk about a curriculum for pre-primary schools; it is more appropriate to think of it as a programme of activities."

—Kothari Commission Report, p. 153.

हम 'कोठारी कमीशन' के उक्त कथन के आधार पर ही इस समस्या का विवेचन कर रहे हैं। भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का क्षेत्र निजी हाथों में है। इसलिए, केन्द्रीय सरकार या राज्य-सरकारों द्वारा पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के लिए कोई पाठ्यक्रम या कार्यक्रम निर्धारित नहीं किया गया है। यही कारण है कि हमारे देश के पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में किसी निश्चित एवं समरूप कार्यक्रम का अनुसरण नहीं किया जाता है। उनमें बच्चों को सामान्यतया गीत, सामूहिक व्यायाम एवं रचनात्मक कार्यों की शिक्षा दी जाती है और खेल-खेल में साधारण ज्ञान एवं वातावरण की जानकारी प्रदान की जाती है। एक वर्ष के उपरान्त उनको गिनती, उच्चारण, पढ़ना-लिखना आदि सिखाया जाता है। सब पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के कार्यक्रमों में साधारणतः निम्नलिखित क्रियाएँ मिलती हैं[2]—

(i) व्यायाम।
(ii) सामूहिक नृत्य।
(iii) गिनती और नामोच्चारण।
(iv) शिशु-गीत और लयानुसार ड्रिल।
(v) पढना, लिखना और बोलना।
(vi) खेल—वैयक्तिक और सामूहिक।
(vii) कुछ विशेष उपकरणों के साथ खेलना।
(viii) रचनात्मक कार्य—कागज, मिट्टी, गत्ते या लकड़ी के टुकड़ों से विभिन्न आकृतियाँ बनाना।

उक्त कार्यक्रम निर्विवाद रूप से अपूर्ण एवं दोषपूर्ण है। यह अपूर्ण इसलिए है, क्योंकि इसमें जिन क्रियाओं को सम्मिलित किया गया है, वे बालक के गामक, ऐन्द्रिक,

1. **अदायाल व उनियाल** : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 219।
2. **अदायल व उनियाल** : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 216-217।

शारीरिक, मानसिक एवं स्नायुविक विकास में पूर्ण योग नहीं देती हैं। यह दोषपूर्ण क्यों है, इसका उत्तर **"कोठारी कमीशन"** से सुनिए[1]—**"हमने देखा है कि कार्यक्रम बहुधा अनुल्लंघनीय एवं सत्तापूर्ण (Rigid and Authoritarian) बन जाते हैं, बच्चों को अपने वातावरण को समझने के लिए पूर्व अवसर नहीं दिए जाते हैं, बच्चों की आवश्यकताओं के बजाय सामूहिक कार्य पर अधिक बल दिया जाता है और मध्यान्ह भोजन एवं अल्पाहार की व्यवस्था की शैक्षिक सम्भावनाओं का पूर्ण उपयोग नहीं किया जाता है।"**

समाधान—पूर्ण व निर्दोष कार्यक्रम : Complete & Faultless Programme— पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के कार्यक्रम को पूर्ण एवं निर्दोष बनाने के लिए, इस शिक्षा के मूल उद्देश्य को भली-भाँति समझ लेना, पहली और आधारभूत शर्त है। यह उद्देश्य है—बालक को स्वस्थ, स्वच्छन्द एवं परिष्कृत वातावरण प्रदान करना, ताकि यह उसके सीखने के विभिन्न अवयवों को पुष्ट करे और इसका गामक, ऐन्द्रिक, शारीरिक, मानसिक एवं स्नायुविक विकास इस प्रकार करे कि उसे भविष्य में किसी भी कठिनाई का अनुभव न हो। यदि इस उद्देश्य को ध्यान में रखा जाय, तो समस्त कार्यक्रम को ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए, जिसमें बालक अपनी इच्छा के अनुसार विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र हो, उस पर किसी प्रकार का दबाव न हो और उसे कुछ पूर्व-निश्चित बातों को सीखने के लिए विवश न किया जाय। इस दृष्टि से **"कोठारी कमीशन"** ने "शिशु-सुरक्षा-समिति" (Committee of Child Care) द्वारा प्रस्तावित की जाने वाली क्रियाओं के अधोलिखित कार्यक्रम का अनुमोदन किया है[2]—

(i) स्वतन्त्र खेल, जिनमें अग्रलिखित को सम्मिलित किया जाय—शैक्षिक एवं रचनाकारी खिलौने, घर के अन्दर के खेल (Indoor Games) और दूसरे बच्चों के साथ घर के बाहर की क्रियाएँ (Outdoor Activities)।

(ii) विभिन्न अंगों और माँसपेशियों का संचालन करने वाली शारीरिक क्रियाएँ।

(iii) शारीरिक, पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण का सम्पर्क, परिचय, अनुकरण और अनुभव कराने वाले खेल।

(iv) संगठित एवं निर्देशित खेल और सामूहिक क्रियाएँ।

(v) खेल के मैदान के उपकरणों का उपयोग करके, खेल के मैदान की क्रियाएँ।

(vi) सरल व्यायाम, नृत्य और लययुक्त खेलों को शामिल करते हुए शारीरिक प्रशिक्षण।

(vii) बागवानी, सरल गृहकार्य एवं सरल सामुदायिक श्रम-प्रयासों को शामिल करते हुए शारीरिक श्रम और खेल।

(viii) प्राकृतिक पदार्थों और विशेष रूप से बनाये गये उपकरणों का प्रयोग करते हुए इन्द्रिय-ज्ञान की शिक्षा।

(ix) उँगलियों की प्रवीणता एवं औजारों के उपयोग वाले हस्तकार्य एवं कार्यकलाप।

1. *Kothari Commission Report*, p. 150.
2. *Kothari Commission Report*, p. 150.

(x) गीत, संगीत, नृत्य, ड्राइंग और चित्रकला; जैसे—कार्यकलाप।

(xi) भाषा-ज्ञान सहित अधिगम क्रियायें; वैयक्तिक स्वच्छता एवं स्वास्थ्य के नियम, भौतिक, वनस्पति एवं पशु-जगत से सम्पर्क रखने वाला प्रारम्भिक प्राकृतिक अध्ययन; और गिनती, गणित आदि।

(xii) नौकरों और वयस्क सहायकों की आवश्यकता का अनुभव न किए जाने के लिए विद्यालय में स्वयं-सेवा (Self-Service) की शिक्षा।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe the development of Pre-Primary Education in India.
   भारत में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विकास का वर्णन कीजिए।
2. What are the chief problems of Pre-Primary Education ? Give your proposals to solve them.
   पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की मुख्य समस्याएँ क्या हैं ? उनके समाधान के लिए अपने प्रस्ताव प्रस्तुत कीजिए।
3. What are the main recommendations of Education Commission (1964-66) regarding the aims, expansion and programme of Pre-Primary Education ?
   पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों, विस्तार एवं कार्यक्रम के विषय में 'शिक्षा-आयोग' (1964-66) की क्या शिफारिशें हैं ?

●●

23

प्राथमिक शिक्षा

PRIMARY EDUCATION

"Why does not the nation move ? First educate the nation. Even for social reforms, the first duty is to educate the people."
—Swami Vivekanand.

विषय-प्रवेश

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा—प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है, जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान इसका है, उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनीतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर, देश की पूरी जनसंख्या से होता है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्पर्क होता है।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि सब व्यक्तियों की शिक्षा अथवा जनसाधारण की शिक्षा ही राष्ट्रीय प्रगति का मूलाधार है। इस शिक्षा की अवहेलना करने के कारण भारत का पतन हुआ। अतः इसका उत्थान करके ही हमारे देश का कल्याण हो सकता है। इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द के अग्रांकित वाक्य सत्य से भरपूर हैं—"मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी, जब तक कि भारत में जनसाधारण को एक बार फिर भली प्रकार शिक्षित नहीं कर लिया जायगा।"

प्राथमिक शिक्षा के इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात् हम उसके इतिहास पर विहगम दृष्टिपात कर रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा—अनिवार्यता से पूर्व

(PRIMARY EDUCATION BEFORE COMPULSION)

अनिवार्यता से पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का इतिहास दो स्पष्ट कालों में विभाजित किया

जा सकता है—इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन-काल और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का शासन-काल। हम इन दोनों कालों में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति और प्रगति का वर्णन करने से पूर्व उस समय भारत में प्रचलित देशी शिक्षा (Indigenous Education) की व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं; यथा—

1. देशी शिक्षा व्यवस्था—1775 में प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारियों के भाग्य ने पलटा खाया और वे इस देश के विशाल भू-भाग पर शासक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। इस घटना के लगभग एक शताब्दी के उपरान्त, अर्थात् 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों द्वारा की जाने वाली जाँच से ज्ञात होता है कि भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए पाठशालाओं और मकतबों का जाल बिछा हुआ था।

उदाहरणार्थ—इतिहासकार मिल (Mill) के अनुसार, 1822 में मद्रास के प्रत्येक गाँव में एक प्राइमरी स्कूल था।[1] बम्बई के गवर्नर की कौंसिल के सदस्य, प्रेंडरगस्ट (Prendergast) के मतानुसार, 1832 में बम्बई में ऐसा कोई ग्राम नहीं था, जिसमें कम-से-कम एक प्राथमिक विद्यालय न हो[2]। एडम (Adam) की "प्रथम रिपोर्ट" (First Report) के आधार पर बसु ने लिखा है कि 1835 के लगभग केवल बंगाल में एक लाख प्राथमिक स्कूल थे।[3] उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) की सरकार की 1843 की रिपोर्ट के अनुसार अनेक ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय थे।[4]

2. कम्पनी का शासन-काल (1757-1858)—1757 से 1858 तक के लगभग 100 वर्ष के शासन-काल में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने हितों की पूर्ति और अपने नवविजित प्रदेशों के निवासियों की सद्भावना प्राप्त करने के उद्देश्य से उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता मदरसा, बनारस संस्कृत कॉलेज, पूना संस्कृत कॉलेज आदि की स्थापना तो की, पर प्राथमिक शिक्षा के प्रति कोई रुचि प्रकट नहीं की। इस शिक्षा के सम्बन्ध में केवल दो अंग्रेज प्रशासकों के नाम उल्लेखनीय हैं। पहला नाम है—भारत के गवर्नर-जनरल, लार्ड डलहौजी (Dalhousie) का; जिसने 1854 में बंगाल में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। दूसरा नाम है—पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर, जेम्स टॉमसन (James Thomsan) का, जिसे भारत में माध्यमिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है। उसी के प्रयास के फलस्वरूप इस प्रान्त में, 1851 में "हल्काबन्दी स्कूलों की प्रणाली" (Circle-School System) आरम्भ हुई, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की गई।

किन्तु, डलहौजी और टॉमसन के प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कार्य—भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के लिए सागर में दो बूँदों के समान थे। जहाँ तक कम्पनी की शिक्षा-नीति का प्रश्न था, उसने धन-लोलुपता के वशीभूत होकर और अपने नव-स्थापित राज्य को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से, प्रचलित देशी विद्यालयों को, जो

1. James Mill : *History of British India*, Vol. I, p. 562.
2. G. L. Prendergast's Evidence of 1832.
3. A. N. Basu : *Education in Modern India*, p. 5.
4. S. N. Mukerji : *History of Education in India*, p. 43.

अति प्राचीन काल से भारतीय शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र थे, धनाभाव दुःसाध्य समस्या में उलझाकर समय से पहले ही काल के गाल में पहुँचा दिया। अंग्रेजों ने यह किस प्रकार किया, इसका वर्णन—बैलेरी जिले के अंग्रेज कलक्टर **कैम्पबेल** (Campbell) से सुनिए[1]—"इस जिले में 533 शिक्षण संस्थाएँ हैं, पर मुझे शर्म के साथ कहना पड़ता है कि अब इनमें से किसी को भी सरकारी अनुदान नहीं मिलता है। सरकारी आय का वह अधिकांश भाग, जो पहले शिक्षा-संस्थाओं को अनुदान के रूप में दिया जाता था, अब अज्ञानता फैलाने के लिए प्रयोग किया जाता है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम अपने निष्कर्ष को **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** के अग्रांकित शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं[2]—**"कम्पनी के शासन-काल में प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना की गई और कम-से-कम प्रारम्भिक काल में निश्चित रूप से उपेक्षा की गई।"**

3. पार्लियामेंट का शासन-काल (1858-1905)—नवम्बर, 1858 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी के शासन का अन्त करके, रानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया। इस नवीन शासन-व्यवस्था में लार्ड स्टैनले (Stanley) ने 'भारत-मन्त्री' (Secretary of State for India) का पद ग्रहण किया। उसने 1859 के भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में एक आदेश-पत्र जारी किया, जिसे 'स्टैनले का आदेश-पत्र' (Stanley's Despatch) कहा जाता है। इस 'आदेश-पत्र' में उसने भारत-सरकार को प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व ग्रहण करने का आदेश दिया और उसके व्यय की पूर्ति के लिए अनिवार्य स्थानीय कर लगाने का परामर्श दिया।

ब्रिटिश पार्लियामेंट के शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदारता का परिचय दिया। किन्तु, 1882 में उसे स्थानीय संस्थाओं को सौंपकर सरकार ने अपने एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व की अवहेलना की, जिसके फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा में गतिहीनता आ गई। इस बात को स्वीकार करते हुए, 1904 के **"शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" में अंकित किया गया है**[3]—**"सम्पूर्ण जनसंख्या के 15 प्रतिशत बच्चों में से केवल छठवें भाग से कुछ ही अधिक को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हो रही है। हाल के वर्षों में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अवरुद्ध हो गई है। भारत-सरकार इस निष्कर्ष की उपेक्षा नहीं कर सकती है कि प्राथमिक शिक्षा को इस समय तक उसका अपर्याप्त धन एवं ध्यान प्राप्त हुआ है।"**

अनिवार्य शिक्षा के लिए प्रारम्भिक प्रयास
(Early Efforts for Compulsory Education)

20वीं शताब्दी के उषा-काल में राष्ट्रीय आन्दोलन ने जन-जन के मन में आशा और आकुलता का संचार कर दिया था। उस अवसर पर देश-प्रेम से आप्लावित भारतीय नेता अपने देशवासियों के बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान के लिए शिक्षा के

1. Report of Mr. H. D. Campbell, the Collector of Bellary, submitted to the President of Board of Reveaue, Fort St. George in August, 1823.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 33.
3. Government Resolution on Educational Policy, 1904.

महत्त्व का सन्देश प्रसारित कर रहे थे। इस सन्देश को अपने जीवन का चरम लक्ष्य बनाकर, देवी सरस्वती के दो अनन्य आराधकों ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने के दिशा में दीप्तिमान कदम उठाए। प्राथमिक शिक्षा को नया मोड़ देने वाले ये दो सुविख्यात शिक्षा-प्रेमी थे—बड़ौदा-नरेश, महाराज सायाजीराव गायकवाड़ और कर्मठ सवाज-सेवक, गोपाल कृष्ण गोखले।

1. बड़ौदा-नरेश का प्रथम प्रयास
(First Effort of Baroda Ruler)

20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में बम्बई में सर चिमनलाल सीतलवाद और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों ने अपने प्रान्त की सरकार से बम्बई नगर में अनिवार्य शिक्षा आरम्भ करने की शक्तिशाली शब्दों में माँग की। सरकार ने उनको सन्तुष्ट करने के लिए इस विषय पर परामर्श देने के लिए 1906 में एक समिति की नियुक्ति कर दी। किन्तु, समिति के सदस्य—सरकार के ही चाटुकार थे। अतः उन्होंने बलपूर्वक घोषित किया कि अनिवार्य शिक्षा का समय अभी इतनी दूर है कि उसे बम्बई नगर में आरम्भ किया जाना असम्भव है।[1]

जिस कार्य का आरम्भ बम्बई जैसे धनी एवं उन्नत नगर के लिए असम्भव समझा गया, उसी कार्य को महाराज सायाजीराव गायकवाड़ ने बम्बई की तुलना में निर्धन और कम उन्नत अपने बड़ौदा-राज्य में सम्भव करके दिखा दिया। उन्होंने परीक्षण के रूप में अपनी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना को 1893 में अपने राज्य के अमरेली तालुका (Amreli Taluka) के 9 ग्रामों में आरम्भ किया। इस योजना के अनुसार इन ग्रामों के 7 से 12 वर्ष तक की आयु के समस्त बालकों और 7 से 10 वर्ष तक की समस्त बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बना दिया गया। इस कार्य में महाराज को इतनी असाधारण सफलता प्राप्त हुई कि उन्होंने 1906 में एक अधिनियम बनाकर अपने राज्य के सब बालकों एवं बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बना दिया।[2]

2. गोखले का प्रस्ताव, 1910
(Gokhale's Resolution, 1910)

बड़ौदा-नरेश के सफल परीक्षण एवं उत्कृष्ट उदाहरण का गोपाल कृष्ण गोखले पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव ने उनके मस्तिष्क पर वह अमिट विचार अंकित कर दिया कि जिस कार्य को सीमित साधनों वाला छोटा-सा राज्य कर सकता है, उसे प्रचुर साधनों से सम्पन्न विशाल ब्रिटिश भारत कहीं अधिक सरलता एवं सफलता से कर सकता है। प्राथमिक शिक्षा के सौभाग्य से उस समय गोखले—केन्द्रीय धारा-सभा (Imperial Legislative Assembly) के सदस्य थे। अतः उन्होंने इस सभा के माध्यम से भारत-सरकार को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की दिशा में क्रियाशील बनाने का संकल्प किया।

1. D. M. Desai : *Universal Compulsory and Free Education in India*, pp. 46-47.
2. *The Gazetteer of the Baroda State*, pp. 310-12.

अपने संकल्प के अनुसार, गोखले ने 19 मार्च, 1910 को "केन्द्रीय धारा-सभा" के समक्ष अपना "प्रस्ताव" (Resolution) प्रस्तुत करते हुए कहा—**"यह सभा सिफारिश करती है कि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जाय और इस विषय में निश्चित प्रस्तावों का निर्माण करने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त आयोग शीघ्र ही नियुक्त किया जाय।"**

सरकार ने गोखले को इस बात का आश्वासन दिया कि वह उनके "प्रस्ताव" पर अवश्य विचार करेगी। इस आश्वासन को सत्य समझ कर, निष्कपट गोखले ने अपने "प्रस्ताव" को वापिस ले लिया।

3. गोखले का विधेयक, 1911
(Gokhale's Bill, 1911)

एक वर्ष तक गोखले की आँखें—सरकार की गतिविधियों पर लगी रहीं। किन्तु, सरकार ने आश्वासन देकर भी प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने की दिशा में एक कदम भी नहीं उठाया। इससे क्रुद्ध एवं क्षुब्ध होकर, गोखले ने 16 मार्च, 1911 को "केन्द्रीय धारा-सभा" के समक्ष प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अपना "विधेयक" प्रस्तुत करते हुए कहा—**"इस विधेयक का उद्देश्य—देश की प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली में अनिवार्यता के सिद्धान्त को क्रमशः लागू करना है।"**

"The object of this Bill is to provide for the gradual introduction of the principle of compulsion into the elementary education system of the country."
—**Gokhale's** *Speeches*, p. 618.

गोखले का "विधेयक" उनके "प्रस्ताव" पर आधारित था और उसमें निहित मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे[1]—

1. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का अधिनियम केवल उन स्थानीय बोर्डों (Local Boards) के क्षेत्रों में लागू किया जाय, जहाँ बालकों एवं बालिकाओं का एक निश्चित प्रतिशत—प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर रहा हो। यह प्रतिशत गवर्नर-जनरल की कौंसिल द्वारा निश्चित किया जाय।

2. इस अधिनियम को लागू करने से पूर्व स्थानीय बोर्डों द्वारा सरकार की अनुमति प्राप्त की जाय।

3. इस अधिनियम को स्थानीय बोर्डों द्वारा अपने सम्पूर्ण या किसी निश्चित क्षेत्र में लागू किया जाय।

4. प्राथमिक शिक्षा का व्यय-भार—स्थानीय बोर्डों और सरकार द्वारा 1 : 2 के अनुपात में वहन किया जाय।

5. प्राथमिक शिक्षा के व्यय की पूर्ति करने के लिए स्थानीय बोर्डों को शिक्षा-कर (Education Cess) लगाने का अधिकार दिया जाय।

6. अभिभावकों द्वारा 6 से 10 वर्ष तक की आयु के बालकों को मान्यता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों में अनिवार्य रूप से भेजा जाय। इस नियम का उल्लंघन करने वाले अभिभावकों को दण्ड दिया जाय।

1. S. N. Mukerji : *History of Education in India*, pp. 199-200.

7. जिन बालकों के अभिभावकों की मासिक आय 100 रुपये से कम है, उनसे शिक्षा-शुल्क न लिया जाय।

8. कुछ समय के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा को बालिकाओं के लिए अनिवार्य बना दिया जाय।

गोखले के "विधेयक" में निहित उपरिअंकित सभी सुझाव स्पष्ट, सरल एवं साधारण थे। अतः अत्यन्त शिष्ट एवं विनम्र भाव से गवर्नर जनरल का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करते हुए गोखले ने अपना भाषण इन शब्दों से समाप्त किया—**"श्रीमान् जी, संक्षेप में मेरा यह सम्पूर्ण विधेयक है। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की यात्रा के प्रथम चरणों के सम्बन्ध में सुझाव देने का यह लघु एवं तुच्छ प्रयास है।"**

केन्द्रीय सरकार ने गोखले के विधेयक को जनमत-संग्रह के लिए विश्वविद्यालयों, प्रान्तीय सरकारों एवं कुछ व्यक्तिगत संस्थाओं के पास भेज दिया। 18 मार्च, 1912 को "केन्द्रीय धारा-सभा" में विधेयक पर वाद-विवाद आरम्भ हुआ। सरकारी प्रवक्ता के रूप में सर हारकोर्ट बटलर (Sir Harcourt Butler) ने उसके विपक्ष में छः शक्तिशाली तर्क दिये—(1) प्रान्तीय सरकारें, विधेयक के पक्ष में नहीं हैं, (2) शिक्षित वर्ग ने विधेयक का विरोध किया है; (3) देश, अनिवार्य शिक्षा के लिए तैयार नहीं है; (4) अनिवार्य शिक्षा के लिए जनता की माँग नहीं है; (5) अनिवार्यता को लागू करने में अनेक प्रशासकीय कठिनाइयाँ हैं; और (6) स्थानीय संस्थाएँ, अनिवार्य शिक्षा के लिए नवीन कर लगाने के लिए उद्यत नहीं हैं। इस प्रकार, सरकार ने विधेयक को सर्वथा अनुपयुक्त एवं असामयिक बताकर, तिरस्कृत किया।

गोखले ने सर हारकोर्ट बटलर के सभी तर्कों के अकाट्य उत्तर दिए, पर उनको सफलता नहीं मिली। दो दिन के भीषण वाक्-द्वन्द्व के अन्त में जब 19 मार्च, 1912 को विधेयक पर मतदान हुआ, तब उसे 13 वोटों के विरुद्ध 38 वोटों से गिरा दिया गया। दुःख का विषय यह था कि सरकारी सदस्यों के अतिरिक्त जमींदार सदस्यों ने भी उसके विरुद्ध मतदान किया। इस प्रकार, अल्पसंख्यक भारतीय जमींदारों ने अपने गोरे शासकों को प्रसन्न करके, अपने भावी स्वार्थ की सिद्धि के लिए जन-शिक्षा का भ्रूणावस्था में ही गला घोंट दिया। इससे भारत के वीर सेनानी, गोखले तनिक भी हतोत्साहित नहीं हुए और अपनी बहस को खतम करते हुए बोले—**"मैं जानता था कि संध्या तक मेरा विधेयक उखाड़ कर फेंक दिया जायगा। इस पर मुझे न कोई शिकायत है और न निराशा ही है। मैं सदैव सोचता हूँ और कहता हूँ कि इस पीढ़ी के भारतवासी अपनी मातृभूमि की सेवा अपनी असफलताओं के द्वारा ही कर सकते हैं।"**

"I knew that my bill would be thrown out before the day closed. I make no complaint. I shall not feel even depressed. I have always felt and have often said that we of the present generation in India can only hope to serve our country by our failures." —**Gokhale's** *Speeches*, p. 650

अनिवार्य शिक्षा का प्रसार

(EXPANSION OF COMPULSORY EDUCATION)

गोखले अपने भगीरथ प्रयत्नों के बावजूद प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में असफल हुए। किन्तु, उनकी असफलता—सफलता के प्रकाश-स्तम्भ को दीप्तिमान करने वाली असफलता थी, अनिवार्यता-अधिनियम निर्माण की दिशा-निर्देशिका थी। यही कारण था कि 1918 से 1920 तक की केवल दो वर्ष की अल्प अवधि में भारत के अग्रांकित 7 प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम पारित कर दिए गए—(1) बम्बई, 1919; (2) पंजाब, 1919; (3) संयुक्त प्रान्त, 1919; (4) बंगाल, 1919; (5) बिहार और उड़ीसा, 1919; (6) मध्य प्रान्त, 1920; और (7) मद्रास, 1920।

उल्लिखित अधिनियमों एवं 1905 से 1921 तक चलने वाले देशव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की गति क्रमशः तीव्र होती चली गई। 1927 में आयोजित किए जाने वाले "अखिल भारतीय महिला-शिक्षा सम्मेलन" (All-India Women's Education Conference) में महिलाओं ने पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की माँग की। महात्मा गाँधी और डाक्टर अम्बेडकर की अनवरत चेष्टाओं के परिणामस्वरूप हरिजनों में जागृति उत्पन्न हुई और वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हुए। 1921 में प्रांतीय शिक्षा का संचालन-सूत्र भारतीय मन्त्रियों के हाथ में आ जाने से प्राथमिक शिक्षा को पुरस्कार से प्रोत्साहन मिला। इन सब कारणों ने संयुक्त रूप में प्राथमिक शिक्षा के प्रवाह को अबाध गति से प्रवाहित होने में योग दिया और उसका विकास दिन दूना, रात चौगुना होता चला गया।

किन्तु, विकास निरन्तर गतिशील रहने वाली प्रक्रिया नहीं है, उसमें स्थिरता आना प्रकृति का नियम है। प्राथमिक शिक्षा भी इस नियम का अपवाद न बन सकी। उसका विकास 1931 में अवरुद्ध हो गया और वह 1937 तक स्थिरता की दशा में पड़ी करवटें बदलती रही। इसके दो मुख्य कारण थे। **पहला,** 1931 से 1937 तक की अवधि, विश्वव्यापी आर्थिक अवसाद (Economic Depression) की अवधि थी, जिसका भारत पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। अतः भारत को अनिवार्य शिक्षा की व्ययपूर्ण योजनाओं को स्थगित करना पड़ा। **दूसरा,** 'हर्टाग समिति' (1929) का प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक सुझाव यह था कि उसे वास्तव में हितप्रद बनाने के लिए, उसकी संख्यात्मक वृद्धि पर अंकुश लगा दिया जाय और प्राथमिक विद्यालयों को ठोस बनाकर (Consolidation) उसकी गुणात्मक उन्नति की जाय। सरकार ने जनता के घोर विरोध के बावजूद 'समिति' के इस सुझाव को स्वीकार करके निम्न श्रेणी के प्राथमिक विद्यालयों को तोड़ दिया और प्राथमिक शिक्षा के विस्तार पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

वर्षों से स्थिरता की दशा में पड़ी हुई प्राथमिक शिक्षा को 1935 के 'भारत-सरकार-अधिनियम' से गतिशीलता का वरदान प्राप्त हुआ। इस अधिनियम के अनुसार 'प्रान्तीय स्वशासन' की स्थापना हुई और 6 प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने सत्तारूढ़ होकर प्राथमिक शिक्षा के विकास को सम्भव बनाया। उन्होंने अपने प्रान्तों को स्थानीय संस्थाओं को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देकर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने का प्रयत्न किया। उन्होंने ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की और बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान कीं। इस प्रकार, कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त होने पर प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के पथ पर एक बार फिर अवरोधमुक्त अभियान आरम्भ किया।

स्वतन्त्र भारत में अनिवार्य शिक्षा
(COMPULSORY EDUCATION IN FREE INDIA)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संसार के सभी प्रगतिशील देशों के समान भारत ने भी बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार किया।

इसीलिए, **'संविधान सभा'** (Constituent Assembly) ने जिसे देश का संविधान तैयार करने का कार्य सौंपा गया था, निम्नांकित शब्दों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निदेशक सिद्धान्त घोषित किया—**"राज्य इस संविधान के लागू किए जाने के समय से दस वर्ष के अन्दर सब बच्चों के लिए, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करेगा।"**

भारत-सरकार के निर्णय के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा—बेसिक शिक्षा होगी और सरकार इस शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए सन् 1950 से ही प्रयत्नशील है। वह राज्य-सरकारों को सम्पूर्ण व्यय का 34 प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप में देती है। शेष व्यय के ¾ भाग से अधिक की पूर्ति राज्य सरकारों द्वारा, 1/8 की स्थानीय संस्थाओं द्वारा और बाकी अन्य स्रोतों से की जाती है।[1] पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भी प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए विपुल धनराशियाँ व्यय की गई हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप, अब तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की जो प्रगति हुई है, उनकी विवेचना निम्नांकित है—

अनिवार्य शिक्षा की प्रगति[2]

विवरण	1950-51	1993-94
1. प्राथमिक स्कूलों की संख्या	1·20 लाख	572923
2. अपर प्राथमिक स्कूलों की संख्या	0·14 लाख	155707
3. कक्षा 1 से 5 तक दाखिला	19·2 लाख	1083 लाख
4. कक्षा 6 से 8 तक दाखिला	3·1 लाख	399 लाख
5. प्राथमिक स्कूलों में शिक्षक		17·03 लाख
6. अपर प्राथमिक स्कूलों में शिक्षक		10·80 लाख

शिक्षा के प्रसार के लिए इस स्तर के बावजूद प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में संवैधानिक आदेश को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है। दूसरे शब्दों में अभी तक इस लक्ष्य को पूरा नहीं किया जा सका है। इस लक्ष्य को अब तक प्राप्त क्यों नहीं किया जा सका है ? इसका क्या कारण है—प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार पथ में उपस्थित होने वाली समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ। हम इन समस्याओं एवं कठिनाइयों तथा इनके समाधान एवं निवारण की विधियों पर अग्रांकित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैं—

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 69.
2. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट, (1993-94), पृ० 169.

समस्याएँ एवं उनके समाधान
(PROBLEMS AND THEIR SOLUTIONS)

(1) समस्या—शिक्षा की दोषपूर्ण नीति : Faulty Policy of Education—सन् 1950 में क्रियान्वित किये जाने वाले भारतीय संविधान की 45वीं धारा के माध्यम से यह घोषणा की गई थी कि सरकार 10 वर्ष की अवधि में 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सब बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का प्रयास करेगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता देने के लिए **"अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा-परिषद्"** (All India Council for Elementary Education 1957) का निर्माण किया गया, केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य-सरकारों को वार्षिक सहायता-अनुदान दिया गया और पिछली सात पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा पर पर्याप्त धनराशि व्यय की गई। किन्तु इन सब प्रयासों के बावजूद 6-11 वय-वर्ग के 97.9 प्रतिशत बच्चों को और 11-14 वय-वर्ग के 55·1 प्रतिशत बच्चों को ही शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने का लक्ष्य था।[1] 48 वर्ष के उपरान्त भी निर्धारित लक्ष्य तक न पहुँचने का आधारभूत कारण है—केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकारों की दोषपूर्ण नीति।

सरकार की नीति दोषपूर्ण इसलिए है, क्योंकि वह वास्तविकता पर आधारित न होकर आदर्शवादिता पर अवलम्बित है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार ने बेसिक शिक्षा-प्रणाली को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के रूप में स्वीकार किया। उसने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों के लिए बेसिक शिक्षा को आदर्श माना। अतः उसने "पहली पंचवर्षीय योजना" में ही प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। किन्तु 'दूसरी योजना' की अवधि में ही उसको इस बात का अनुभव हो गया कि भारत जैसे विशाल देश में बेसिक शिक्षा-प्रणाली को प्रचलित करने में बहुत अधिक समय लगेगा। अतः सरकार ने "तीसरी पंचवर्षीय योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा" में यह घोषित किया—**"पूरी तरह से विकसित बुनियादी विद्यालयों को चलाने की दिशा में प्रगति होने में बहुत समय लगेगा।"**

बहुत समय क्यों लगेगा ? इसका कारण स्पष्ट है। प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने के लिए साज-सज्जा, प्रशिक्षित अध्यापकों और विशाल धनराशि की आवश्यकता है। इन तीनों चीजों को भारत जैसे निर्धन देश के लिए अल्प समय में जुटाना असम्भव है, आधारहीन आशा है। यह जानते हुए भी सरकार अपने आदर्श के पीछे दौड़ रही है, जो मृग-मरीचिका के समान आगे बढ़ता चला जा रहा है। इस बात का ज्ञान होने पर भी सरकार प्राथमिक शिक्षा पर व्यय कर रही है। इस प्रकार, सरकार अपने आदर्श के वशीभूत होकर भारतीय संविधान में लिखित लक्ष्य की प्राप्ति के सक्रिय कदम न उठाकर अपने उत्तरदायित्व की स्पष्ट अवहेलना कर रही है।

समाधान—शिक्षा की निश्चित नीति : Definite Policy of Education—इस समस्या का समाधान करने के लिए परम आवश्यक है कि सरकार को अपनी वर्तमान दोषपूर्ण नीति का परित्याग करके निश्चित नीति का निर्माण करने में लेशमात्र भी संकोच

1. *India*, 1990 p. 81.

नहीं करना चाहिए। उसकी सर्वोत्तम नीति यही हो सकती है कि वह पहले 6-14 वय-वर्ग के सब बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे। जब वह अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर ले, तब प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने या प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में रूपान्तरित करने का कार्य आरम्भ करे। यदि सरकार ने इस निश्चित नीति का अनुसरण नहीं किया, तो वह 'आठवीं पंचवर्षीय योजना' में विशाल धनराशि[1] व्यय करके भी निर्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में अनिवार्यतः विफल होगी।

(2) समस्या—शिक्षा का दोषपूर्ण प्रशासन : Faulty Administration of Education—भारत में शिक्षा—राज्य का विषय है और अधिकांश राज्यों में प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व—नगरपालिकाओं, जिला-परिषदों आदि स्थानीय संस्थाओं पर है। केन्द्र सरकार—आर्थिक सहायता के रूप में प्राथमिक शिक्षा का केवल आंशिक उत्तरदायित्व वहन करती है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में 4 मुख्य दोष प्रकट हो गये हैं, यथा—

पहला, सब स्थानीय संस्थाएँ अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रशासन करती हैं। परिणामतः देश में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में विचित्र बहुरूपता परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त, कुछ स्थानीय संस्थाओं ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है और कुछ इस दिशा में एक-दो कदम ही उठा पाई हैं। इस प्रसंग में **'कोठारी कमीशन'** ने लिखा है—**"निर्धन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं के ऊपर बहुधा अपूर्ण कार्य का सबसे अधिक भार है।"**

दूसरा, भारत की लगभग सभी स्थानीय संस्थाएँ अपनी अयोग्यता, अकर्मण्यता एवं अकिंचनता के लिए विख्यात हैं। या तो वह ऋण-ग्रस्त हैं या दरिद्रता के दावानल से प्रज्ज्वलित हो क्षीणकाय बन चुकी हैं। ऐसी संस्थाओं से प्राथमिक शिक्षा के सुप्रशासन की बात सोचना व्यर्थ है।

तीसरा, स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपनी लोकप्रियता में अभिवृद्धि करने के लिए अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तो कर देते हैं, पर धनाभाव के कारण विद्यालय निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस अनुपात में विद्यालयों की संख्या बढ़ी है, उस अनुपात में निरीक्षकों की संख्या नहीं बढ़ी है। ऐसी स्थिति में विद्यालयों का उपयुक्त निरीक्षण न होना और परिणामस्वरूप उनके प्रशासन में शिथिलता एवं अनियमितता का प्रवेश हो जाना स्वाभाविक ही है।

चौथा, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियमों का निर्माण परतन्त्र भारत में हुआ था। उस समय की और नवभारत की परिस्थितियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। किन्तु अधिनियमों में किसी प्रकार का संशोधन न किए जाने के कारण वे समयानुकूल नहीं रह गये हैं। इसके अतिरिक्त, कोई ऐसी केन्द्रीय संस्था नहीं है, जो स्थानीय संस्थाओं को उनके अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य करें। अतः प्रशासकीय प्रयोजन की दृष्टि से ये अधिनियम अर्थहीन और निष्प्रयोज्य समझे जाने लगे हैं।

1. *India*, 1981, p. 46.

समाधान—शिक्षा के प्रशासन में सुधार : Reform in Administration of Education—प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन-सम्बन्धी दोषों का निराकरण करने के लिए दो सुझाव दिये जा सकते हैं। **पहला** सुझाव यह है कि केन्द्रीय सरकार को यह स्वीकार करके कि नागरिकों को शिक्षित करने का भार राष्ट्र के ऊपर होता है, प्राथमिक शिक्षा के पुनीत कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए। इसे इस शिक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति का निर्माण करना चाहिए। प्राथमिक शिक्षा-विषयक अधिनियमों को समयानुकूल बनवाना चाहिए और निर्धन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं को प्राथमिक शिक्षा के प्रसार एवं प्रशासन के लिए मुक्त हृदय से सहायता-अनुदान देना चाहिए। सरकार यह कहकर कि भारत में शिक्षा—राज्य का विषय है, अपने को प्राथमिक शिक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं कर सकती है। तत्कालीन सरकार ने इस सम्बन्ध में अपने दायित्व को स्वीकार किया है और इस शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत व्यय करने का निर्णय किया है। साथ ही उसने नयी शिक्षा-नीति का निर्धारण एवं उसके संचालन का कार्य अपने हाथों में लिया है। इसी निर्णय के अनुसार इसने सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की और सन् 1992 में उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी किये हैं।

दूसरा सुझाव, जो **'कोठारी कमीशन'** ने दिया है, यह है कि भारत सरकार को एक विद्यालय-परिषद् (School Board) का निर्माण करके, उसे सम्पूर्ण देश की विद्यालय-स्तर की शिक्षा के सब कार्य सौंप देने चाहिए यथा सरकार द्वारा निर्धारित की जाने वाली शिक्षा-नीति का कार्यान्वयन, शिक्षा का विकास एवं नियोजन विद्यालयों को सहायता-अनुदान आदि।[1]

परन्तु किन्हीं कारणोंवश कोठारी कमीशन का उक्त सुझाव लागू न हो सका। सन् 1986 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की और शिक्षा के क्षेत्र में जन-सहभागिता पर बल दिया। कार्य-योजना, 1986 सभी स्तरों पर शिक्षा की आयोजना तथा प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण में लोगों की सहभागिता के महत्व पर बल दिया। विकेन्द्रीकरण का अभिप्राय है, जिला, उपजिला तथा पंचायत स्तरों पर निर्णय लेने में लोगों के चुने हुए प्रतिनिधियों की लोकतांत्रिक सहभागिता। इसके लिए सन् 1991 में संविधान में 72वाँ संशोधन किया गया। इसमें जिला, उप-जिला तथा पंचायत स्तरों पर लोकतान्त्रिक ढंग से चुने गये निकाय स्थापित करने की परिकल्पना की गई। संविधान की प्रस्तावित 11वीं अनुसूची में अन्य बातों के साथ-साथ पंचायती राज निकायों को निम्नलिखित अधिकार सौंपने का प्रावधान है—"प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ तथा गैर-औपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय और सांस्कृतिक क्रियाकलाप।"

संविधान संशोधन विधेयक के अन्तर्गत प्रत्येक पंचायत एक ग्राम शिक्षा समिति का गठन करेगी जो ग्राम स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में निर्धारित कार्यों के प्रशासन के लिए जिम्मेदार होगी। इन ग्राम शिक्षा समितियों की प्रमुख जिम्मेदारी व्यवस्थित रूप से घर-घर सर्वेक्षण करके और अभिभावकों के साथ समय-समय पर चर्चा करके ग्राम में सूक्ष्म स्तर की आयोजना तैयार करनी होगी। समिति यह भी प्रयास करेगी कि प्रत्येक परिवार में प्रत्येक बालक प्राथमिक शिक्षा में भाग ले।

1. *Kothari Commission Report*, 258-262.

यदि उक्त का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन हो गया तो कार्य योजना, 1992 के अनुसार इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ से पूर्व में ही हम निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

(3) समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम : Faulty Curriculum—प्राथमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम अनेक गम्भीर दोषों से परिपूर्ण है। यह संकीर्ण, कठोर, अरुचिकर एवं एकमार्गीय है। यह पूर्णतया साहित्यिक है और उसमें पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया जाता है। यह छात्रों को अपनी रचनात्मक शक्तियों एवं कुशलताओं का विकास करने और 'कार्य करके सीखने' का कोई अवसर नहीं देता है। वह समाज एवं विद्यालय में किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है, ग्रामीण बालकों की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करता है और स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित न होने के कारण उपयोगी नहीं है। अतः 'Hindustan Times' के एक लेख से निम्नांकित शब्द उद्धृत करना पूर्णतया उचित प्रतीत होता है—**"शिक्षा-विशेषज्ञों ने नगर-विद्यालयों के पाठ्यक्रम के विषय में समय-समय पर दुःख प्रकट किया है; ग्राम-विद्यालय के पाठ्यक्रम की दशा और भी अधिक शोचनीय है।"**[1]

समाधान—पाठ्यक्रम में सुधार : Reform in Curriculum—प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए दो सुझाव दिये जा सकते हैं। पहला सुझाव यह है कि प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान किया जाय। यही कारण है कि भारत सरकार ने प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को दोषमुक्त करने और उसकी गुणात्मक उन्नति करने के लिए प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने का निश्चय किया है। इससे वांछित लक्ष्य की प्राप्ति तो हो सकती है पर बेसिक शिक्षा की योजना इतनी व्ययपूर्ण है कि न तो उसे अभी तक सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया जा सका है और न निकट भविष्य में किये जाने की आशा की जा सकती है।

इस परिस्थिति में हमारा दूसरा सुझाव यह है कि जब तक बेसिक शिक्षा की योजना सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित न हो जाये, तब तक प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार किसी उपयोगी शिल्प या हस्तकार्य को स्थान दिया जाये। इसी बात को ध्यान में रखकर **'कोठारी कमीशन'** ने निम्नलिखित दो विचार व्यक्त किये हैं—

1. निम्न प्राथमिक स्तर पर छात्रों को उन कार्यों में भाग लेना चाहिए, जिनसे उनकी रचनात्मक एवं उत्पादन-कुशलता का विकास हो।

2. उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्रों को साधारण कलाओं एवं शिल्पों से सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।

अपने इन विचारों के आधार पर **'कोठारी कमीशन'** ने निम्न और उच्च प्राथमिक स्तरों पर 'कार्य-अनुभव' (Work Experience) और 'समाज सेवा' (Social Service) को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने का सुझाव दिया है।[2]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढाँचे पर एक सामान्य कोर के साथ-साथ अन्य लचीले घटकों पर आधारित एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की परिकल्पना

1. *The Hindustan Times*, 8th April, 1975.
2. *Kothari Commission Report*, pp. 187-188.

की गई है। सन् 1986 तथा 1992 की कार्य योजनाओं में शिक्षा के लिए बालकेन्द्रित दृष्टिकोण को अपनाने की परिकल्पना की गई है। इस परिपेक्ष्य में सभी बच्चों के नामांकन को बढ़ावा देने, तथा नामांकित बच्चों को 14 वर्ष की आयु तक स्कूलों में रोककर रखने तथा शिक्षा की कोटि में पर्याप्त सुधार लाने के प्रयासों पर बल दिया गया है। साथ ही स्कूल शिक्षा के सभी स्तरों पर एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढाँचा तैयार कराया। इस कार्य को सन् 1988 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने पूरा किया। इस पाठ्यक्रम में स्कूली बस्ते के बोझ को कम करने का प्रयास किया है। साथ ही प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम शिक्षण स्तर (Minimum Level of Learning—MLL) निर्धारित करने का प्रयास किया है।

(4) समस्या—प्राकृतिक कठिनाइयाँ : Natural Difficulties—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में प्राकृतिक कठिनाइयाँ विकट समस्या उपस्थित कर रही हैं। इन कठिनाइयों का सम्बन्ध मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों से है, जिनमें भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।[1] राजस्थान के रेतीले प्रदेश में जनसंख्या कम होने के कारण ग्राम एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित हैं। यही बात कश्मीर, गढ़वाल, अल्मोड़ा, हिमाचल प्रदेश आदि कम जनसंख्या वाले पर्वतीय प्रदेशों के बारे में कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त आसाम, मध्य प्रदेश और दक्षिणी भारत में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जो घने वनों से आच्छादित हैं और जहाँ की अल्प जनसंख्या यत्र-तत्र बिखरे हुए छोटे और सुदूर ग्रामों में निवास करती है।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—प्राकृतिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने और उनकी उपस्थिति में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए तीन सुझाव दिये जा सकते हैं। पहला आवागमन के सुरक्षित मार्गों का निर्माण करने और यातायात के सुविधाजनक साधनों को उपलब्ध बनाकर, उपरिअंकित कठिनाइयों को पराभूत किया जा सकता है। भारत जैसे भू-रचना वाले देश में यह कार्य असुगम अवश्य है, पर असम्भव नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि पिछली चार पंचवर्षीय योजना में सड़कों का निर्माण करके अनेक दूरस्थ ग्रामों को एक-दूसरे से सम्बद्ध कर दिया गया है। ऐसी आशा है कि आगामी पंचवर्षीय योजनाओं में सम्पर्क मार्गों के निर्माण द्वारा बालकों को विद्यालयों में जाने की सुविधा प्रदान की जा सकेगी।

आठवीं योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण को प्राथमिकता प्रदान की गई है। इसके लिये निम्नलिखित राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं—

1. बालिकाओं तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के व्यक्तियों सहित सभी बच्चों का सार्वभौम नामांकन।

2. एक किलोमीटर की पैदल दूरी की परिधि में सभी बच्चों के लिए प्राथमिक स्कूल उपलब्ध कराना।

3. बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों, ऐसे कार्यरत बच्चों तथा बालिकाओं, जो विद्यालयों में नहीं जा सकते, के लिए अनौपचारिक/गैर-औपचारिक (Non-formal) शिक्षा की व्यवस्था करना।

1. *India*, 1980, p. 11.

4. इस शिक्षा के लिए गैर-औपचारिक शिक्षा केन्द्रों की संख्या को 3·5 लाख तक बढ़ाने का प्रस्ताव किया।

5. अपर प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की सहभागिता बढ़ाने के लिये अतिरिक्त अवसरों हेतु पूर्व शर्त के रूप में प्राथमिक स्कूल से अपर प्राथमिक स्कूल के मौजूदा अनुपात 1 : 4 से 1 : 2 में सुधार।

6. पढाई को जारी रखने के लिये ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड की योजना को अपर प्राथमिक स्तर पर भी बढ़ाना। वर्ष 1987-88 से 1992-93 की अवधि में इस योजना को देश के 91·5 प्रतिशत ब्लॉकों में कार्यान्वित किया गया।

(5) समस्या—धन का अभाव : Dearth of Money—प्राथमिक शिक्षा के समक्ष धन के अभाव की समस्या बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भारत सरकार अन्य देशों की सरकारों की तुलना में शिक्षा पर सबसे कम धन व्यय करती है। जबकि रूस अपनी राष्ट्रीय आय का 7%, जापान 6%, अमरीका 4·7%, और इंगलैण्ड 4·5% शिक्षा पर व्यय करते हैं।

इसके विपरीत भारत सरकार वर्ष 1950-51 में अपनी राष्ट्रीय आय का केवल 1·2 प्रतिशत ही व्यय करती थी। परन्तु अब वह 3·9 प्रतिशत व्यय कर रही है। यद्यपि इस क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हुई है। फिर भी वह दूसरे देशों की तुलना में कम व्यय कर रही है।[1] धनाभाव की ऐसी संकीर्ण स्थिति में सम्पूर्ण भारत में अनिवार्य शिक्षा का प्रसार न होना, एक अनिवार्य निष्कर्ष है।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—अनिवार्य शिक्षा के कार्यक्रम के लिये धन की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान दिया जा सकता है—

पहला, भारत सरकार को अपनी सब योजनाओं में थोड़ी-थोड़ी बचत करके, प्राथमिक शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय में वृद्धि करनी चाहिए।

दूसरा, इस समय प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर सरकार के व्यय का अनुपात 1 : 5 है।[2] सरकार को जन-शिक्षा की गम्भीरता को समझकर, इस अनुपात को 5 : 1 कर देना चाहिए।

तीसरा, सरकार जिस धन का उपयोग प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने के लिए कर रही है, उसका प्रयोग पहले अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए करना चाहिए।

चौथा, दिनकर देसाई का सुझाव है कि चीन, रूस, मिश्र, जापान, जर्मनी एवं आस्ट्रेलिया के समान भारत में भी प्राथमिक शिक्षा के निम्न स्तर की अवधि—5 वर्ष के बजाय 4 वर्ष की कर देनी चाहिए और इस प्रकार बचने वाले धन से नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।[3]

1. *Development of Education in India, 1990-92 NIEPA and Department of Education, MHR, D New Delhi, India*, p. 12.
2. **Gunnar Myrdal :** *Asian Drama*, Vol. III, p. 1666.
3. **Dinkar Desai :** *Primary Education in India*. pp. 30-32.

पाँचवाँ, 1991 के भारत की 84·39 करोड़ जनसंख्या में 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चे 46·8 प्रतिशत थे।[1] परन्तु जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने बालकों की इस संख्या में वृद्धि कर दी है। बच्चों की इस अति विशाल संख्या के लिए सरकार अपनी सम्पूर्ण आर्थिक शक्ति का प्रयोग करके भी अल्प समय में अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कदापि नहीं कर सकती है। अतः यह आवश्यक है कि जनता इस कार्य में सरकार का हाथ बँटाए। जनता ने भारत-चीन और भारत-पाकिस्तान युद्धों के दौरान में जिस तत्परता और जिस आत्म-त्याग का परिचय दिया था, उसका एक अंश भी यदि उसमें अनिवार्य शिक्षा के प्रति हो, तो भारत के किसी भी बच्चे का जीवन शिक्षा के अभाव के कारण उतना हीन, अनाकर्षक एवं अरुचिकर नहीं रह जायेगा, जितना कि आज है।

छठवाँ, भारत सरकार को विदेशी शासकों की प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने की नीति का कुछ समय के लिये परित्याग कर देना चाहिए और इससे बचने वाले धन को सामान्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयोग करना चाहिए। इस सम्बन्ध में उसे **गोखले** के अग्रांकित वाक्य को अपने निर्देशक-सूत्र के रूप में स्वीकार करना चाहिए—**"शिक्षा की गुणात्मक उन्नति महत्त्वपूर्ण अवश्य है, पर उस पर बल तभी दिया जाना चाहिए, जब निरक्षरता का अन्त हो जाये।"**

"The quality of education is a matter of importance that comes only after illiteracy has been abolished." —**Gokhale's** *Speeches*, p. 65.

(6) समस्या—प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव : Dearth of Trained Teachers—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की वांछित संख्या उपलब्ध न होने के कारण एक जटिल समस्या उपस्थित हो गई है। यह समस्या—छात्र-संख्या निरन्तर होने वाली वृद्धि के कारण और भी ज्यादा जटिल हो गई है।

'कोठारी कमीशन' ने वर्ष 1985-86 तक प्राथमिक स्तर पर छात्र-संख्या की सम्भावित वृद्धि तालिका दी है और यह सुझाव दिया है कि इस स्तर पर शिक्षक एवं छात्रों का अनुपात 1 : 50 होना चाहिए।[2] इन बातों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि भविष्य में प्रतिवर्ष 2·4 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। प्राथमिक विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों में से 3 प्रतिशत या तो अवकाश ग्रहण कर लेते हैं या अध्यापन कार्य छोड़ देते हैं। इस प्रकार, देश को भविष्य में प्रतिवर्ष 3·26 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी।[3]

सन् 1965 के एक सर्वेक्षण के अनुसार सम्पूर्ण देश के प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए 28 लाख प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता थी।[4] किन्तु, सरकार के अथक प्रयास के बावजूद भी 1990-91 तक केवल 16 लाख 37 हजार शिक्षक प्राइमरी स्तर पर तथा 10 लाख 59 हजार उच्च प्राथमिक स्तर पर थे।[5]

1. *Manorama Year Book*, 1993 p. 394.
2. *Kothari Commission Report*, p. 161.
3. **S. N. Mukerji :** *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 100.
4. *The Eighteenth Year of Freedom*, p. 97.
5. *Development of Education in India* 1990-92, p. 12.

प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों के अभाव का सर्वप्रथम कारण यह है कि उनका वेतन इतना अल्प है कि नवयुवक—अध्यापन-कार्य के प्रति आकृष्ट नहीं होते हैं, और यदि किन्हीं परिस्थितियों-वश हो भी जाते हैं, तो अधिक आर्थिक लाभ के पद प्राप्त होने पर अध्यापन-कार्य से सदैव के लिए मुँह मोड़ लेते हैं।

नगरों की अपेक्षा ग्रामों के विद्यालयों में शिक्षकों का अधिक अभाव है। इसका कारण यह है कि नगरों में अतिरिक्त धनोपार्जन एवं मनोरंजन के जो साधन सुलभ होते हैं, उनके ग्रामों में कभी भूलकर भी दर्शन नहीं होते हैं। अतः नगर में अतिरिक्त धन का अर्जन करने वाला, सायंकाल के समय राष्ट्रीय राजपथ पर स्वच्छन्दता से विचरण करने वाला या किसी सिनेमाघरों में चित्रों एवं संगीत से अपने नेत्रों एवं कानों में तृप्त करने वाला नवयुवक शिक्षक—ग्राम में जाकर धूल फाँकने और आनन्दविहीन जीवन व्यतीत करने के लिए किसी भी शर्त पर तैयार नहीं होता है। यही कारण है कि नगरों की अपेक्षा ग्रामों में शिक्षकों का तिगुना अभाव है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षकों का अनुपात 2 : 6 है।[1]

अध्यापकों की तुलना में अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है एवं ग्रामों में और भी अधिक है। नगरों में इस अभाव का मुख्य कारण—अल्प वेतन है और ग्रामों में निवास-स्थान की असुविधा।

समाधान—अध्यापकों की पूर्ति : Supply of Teachers—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपायों को काम में लाया जा सकता है—

पहला, शिक्षकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि करके, अध्यापन-कार्य को आकर्षक बनाया जाय। सरकार ने इस दिशा में कदम उठाया है।

दूसरा, ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में उन्हीं क्षेत्रों/में निवास करने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों की नियुक्ति की जाय और उनको शहरी क्षेत्रों के अध्यापकों से अधिक वेतन दिया जाय। अध्यापिकाओं को निवास की विशेष सुविधाएँ दी जायें। यदि आवश्यक हो, तो उनका भत्ता भी दिया जाये और कम शैक्षिक योग्यता होने पर भी उनको नियुक्त किया जाय।

(7) समस्या—विद्यालयों की स्थापना : Establishment of Schools—प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक रूप प्रदान करने के लिए देश के विभिन्न भागों में विद्यालयों की स्थापना एक आवश्यक शर्त है। नगरों में तो इस शर्त को सरलता से पूरा किया जा सकता है, पर ग्रामों में नहीं। इसका कारण यह है कि भारत—ग्रामों का देश है और अनेक ग्राम—विद्यालय-विहीन एवं अत्यन्त अल्प जनसंख्या वाले हैं। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार, इस समय भारत में 5,57,117 पूर्ण रूप से बसे तथा 48,107 अर्द्ध बसे ग्राम हैं।[2] इनमें से 3,18,633 ग्राम ऐसे हैं, जिनकी जनसंख्या 500 से कम है।[3] एक सर्वेक्षण के अनुसार, 2,40,048 ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय नहीं हैं।[4]

1. *Second All-India Educational Survey*, p. 135.
2. *India*, 1983, p. 16.
3. *India*, 1980, p. 11.
4. *Second All-India Educational Survey*, p. 122.

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि भारत के लगभग 2 लाख ग्रामों में विद्यालय नहीं हैं, जिनमें से अधिकांश ग्राम 500 से कम जनसंख्या वाले हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ग्राम एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित हैं। न तो इतने विद्यालयों के निर्माण के लिए धन उपलब्ध हो सकता है और न 500 से कम जनसंख्या वाले ग्रामों में थोड़े-से बच्चों के लिए विद्यालय-निर्माण पर धन व्यय करना बुद्धिमानी का कार्य कहा जा सकता है। इन दोनों तथ्यों ने देश के प्रशासकों के समक्ष विकट समस्या उपस्थित कर दी है।

समाधान—स्थापना की योजना : Scheme of Establishment—लगभग 2 ½ लाख ग्रामों में विद्यालय-निर्माण के लिए धन जुटाना और छोटे तथा इधर-उधर बिखरे हुए ग्रामों में निवास करने वाले बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना—ये दोनों ही कार्य दुष्कर प्रतीत होते हैं। किन्तु, प्राथमिक विद्यालयों के निर्माण के लिए सरकार ने जितनी धनराशि निर्धारित की है, उसको निम्नांकित योजना के अनुसार व्यय करके विद्यालय-स्थापना की दिशा में बढ़कर कार्य किया जा सकता है।

प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना ऐसे केन्द्रीय भागों में की जाये, जहाँ से अन्य ग्राम कम-से-कम दूरी पर हों। इस प्रकार के ग्रामों में स्थापित किये जाने वाले विद्यालयों में अन्य ग्रामों के बच्चे सुगमता से पहुँचकर ज्ञान का अर्जन कर सकते हैं। भारत सरकार ने इस दिशा में निर्णायक कदम उठाया है। उसने निर्णय किया है कि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में विद्यालयों का निर्माण इस विधि से किया जायेगा कि किसी भी बालक के ग्राम से प्राथमिक विद्यालय 1·5 किलोमीटर और मिडिल स्कूल 5 किलोमीटर से अधिक नहीं होगा। सरकार को आशा है कि इस योजना के पूर्ण होने पर, 6-11 वय-वर्ग के 97 प्रतिशत और 11-14 वय-वर्ग के 47 प्रतिशत बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा मिल जायेगी।[1]

छठी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम बनाने के लिए निम्नांकित बातों पर बल दिया गया है—

1. मौजूदा सुविधाओं के प्रयोग का विस्तार करना, जिनमें स्कूल में पढ़ाई के घण्टों का समायोजन सम्मिलित है जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार एक दिन में तीन घण्टे से अधिक नहीं होंगे।

2. नई सुविधाओं की व्यवस्था, जो आर्थिक रूप से व्यवहार्य तथा शैक्षिक रूप से सुसंगत हों।

3. गैर औपचारिक शिक्षा (Non-formal education) प्रणाली को बढ़ावा देना। इसमें शाला-त्यागी बच्चों तथा काम में लगे बच्चों को शिक्षा देने पर बल दिया गया है।

4. औपचारिक तथा गैर-औपचारिक दोनों प्रणालियों में छात्रों को बनाये रखने पर जोर दिया जायेगा और छात्रों को प्रभावकारी कार्य दिया जायेगा।

5. बच्चों को समुचित प्रोत्साहन देना; जैसे—मध्यान्ह भोजन, स्कूल की वर्दी देना, शिक्षा प्राप्त करने की सामग्री मुफ्त देना तथा समय की कीमत के एवज में अनुसूचित जातियों के परिवारों की लड़कियों को मुआवजा देना।

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. I, p. 88.

पाँचवें अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वे, 1986 के अनुसार 94·5% ग्रामीण जनसंख्या के पास एक किलोमीटर पैदल रास्ते की दूरी में प्राइमरी स्कूल और तीन किलोमीटर पैदल रास्ते की दूरी में लगभग 83·98% ग्रामीण जनसंख्या के पास मिडिल स्कूल हैं। वर्ष 1990-91 में 5 लाख 58 हजार से अधिक प्राइमरी तथा एक लाख 46 हजार से अधिक मिडिल स्कूल थे। कार्य योजना, 1992 में यह परिकल्पना की गई कि 300 अथवा इसके अधिक जनसंख्या वाली 35 हजार से अधिक बस्तियों में और नये प्राइमरी स्कूल खोलने होंगे। साथ ही उनमें ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना को लागू करना होगा।

(8) समस्या—विद्यालय के भवन : Building of Schools—विद्यालयों की स्थापना में बहुत कुछ सम्बद्ध विद्यालय भवनों की समस्या है। सम्पूर्ण देश में सरकार और स्थानीय संस्थाओं द्वारा विद्यालयों के लिए विशेष रूप से निर्मित किये जाने वाले भवन केवल इतने हैं, जिनमें 50 प्रतिशत छात्र विद्या का अर्जन कर सकते हैं।[1] शेष विद्यालय विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थानों में चल रहे हैं। कुछ राज्यों में इनका संचालन मन्दिरों, गाँवों की चौपालों, किराये के मकानों और धनी पुरुषों के स्थान के थोड़े-से भागों में किया जा रहा है। कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जिनमें डेरों, झोंपड़ियों, खुले स्थानों या वृक्षों के नीचे शिक्षण-कार्य किया जा रहा है।[2]

विद्यालय भवनों की यह दुर्दशा इस बात का तकाजा करती है कि भारत के भावी नागरिकों के लिए नवीन विद्यालयों की सृष्टि की जाये। किन्तु यह कार्य लम्बे समय और लम्बी रकम की माँग करता है। ऐसी स्थिति में विवेक का आग्रह है कि एक ओर तो विद्यालय निर्माण के कार्य का सूत्रपात किया जाय और दूसरी ओर निम्नांकित उपायों द्वारा विद्यालय-भवनों की समस्या का समाधान किया जाये—

पहला, विद्यालय-भवनों के लिए ऐसे मन्दिरों, मस्जिदों, सरायों, धर्मशालाओं और व्यक्तिगत या सार्वजनिक स्थानों का चुनाव किया जाय जहाँ छात्रों को अधिकतम सुविधाएँ प्रदान की जा सकें और उनको शिक्षा देने के लिए इनका अधिक-से-अधिक उत्तम प्रयोग किया जाय। वैदिक काल और मुस्लिम-युग में इसी प्रकार के स्थानों में प्राथमिक विद्यालय चलते थे। चीन में तो प्राथमिक विद्यालय अब भी मन्दिरों से संलग्न हैं। जिस समय इंगलैण्ड में विद्यालय-भवनों का अभाव था, उस समय वहाँ बच्चों को रेल के पुलों के नीचे बैठाकर शिक्षा दी जाती थी।[3]

इन सब उदाहरणों से अनुप्राणित होकर, अनिवार्य शिक्षा के कार्य को स्थगित करने की बजाय पूर्ण उत्साह से प्रसार की दिशा में अग्रसर किया जाना चाहिए। यदि संयोगवश किसी स्थान में विद्यालयों के लिए भवन अप्राप्य हों, तो प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली या आधुनिक शान्ति-निकेतन पद्धति का अनुसरण करके, वृक्षों की छाया में बच्चों को ज्ञान अर्जन करने का अवसर प्रदान किया जाय।

आयरलैण्ड में तो कुछ ही समय पहले तक इसी पद्धति का अनुसरण किया जाता था। सारांश यह है कि उपयुक्त भवनों के निर्माण की प्रतीक्षा न करके, किसी

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow*, p. 105.
2. *Education in India*, 1958-59, Vol. I, p. 7.
3. Dinker Desai : *Primary Education in India*, p. 84.

सुविधाजनक स्थान पर भारत के बच्चों के मस्तिष्क को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने का अनवरत प्रयास किया जाय।

दूसरा, पारी-विधि (Shift-System) का प्रयोग करके न केवल विद्यालय भवनों, वरन् अध्यापकों के अभाव की समस्या भी बहुत सीमा तक सुलझाई जा सकती है। इस विधि के अनुसार एक ही विद्यालय-भवन को मध्यान्ह से पूर्व एवं मध्यान्ह के उपरान्त विभिन्न कक्षाओं के शिक्षण के लिए प्रयोग किया जाता है। फ्रांस, जापान, जर्मनी, पुर्तगाल, संयुक्त राज्य अमेरिका, आदि विश्व के अनेक देशों ने शिक्षा-प्रसार के प्रारम्भिक चरणों में इस विधि को प्रचलित किया था। चीन, लंका, मिश्र, टर्की, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया आदि देशों में यह विधि आज भी प्रचलित है।

तीसरा, जनता का सहयोग प्राप्त करके भी विद्यालय-भवनों के अभाव की बहुत-कुछ पूर्ति की जा सकती है। यदि सरकार—ग्राम-निवासियों को शिक्षण की सब सामग्री प्रदान कर दे, तो पहले शिक्षण-कार्य खुले स्थानों या वृक्षों के नीचे आरम्भ किया जा सकता है। उसके पश्चात् सरकार—भूमि एवं भवन-निर्माण की सामग्री की व्यवस्था करके, ग्राम-निवासियों को विद्यालय-भवन का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। **स्वर्गीय मौलाना अबुल कलाम आजाद** का सरकार को यह परामर्श था—**"हमें ग्राम-निवासियों से अपील करनी चाहिए कि यदि हम उनके लिए भवन-निर्माण सामग्री की व्यवस्था कर दें तो वे अपने निवास करने के गृहों के समान विद्यालय-भवनों का निर्माण करें।"**

(9) समस्या—अपव्यय व अवरोधन : Wastage and Stagnation—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन की भीषण समस्या है। 'एजूकेशन इन इण्डिया' (Education in India), 1964-65 के अनुसार बालकों में 58% तथा बालिकाओं में 64·7% अपव्यय था। **'कोठारी-कमीशन'** के अनुसार—निम्न प्राथमिक स्तर पर बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय क्रमशः 56% एवं 62% है और उच्च प्राथमिक स्तर पर यह अनुपात क्रमशः 24% एवं 34% है।[2] इसी प्रकार, जैसा कि **'कोठारी-कमीशन'** के प्रतिवेदन में अंकित है—अवरोधन, बालकों की कक्षा 1 में 40·3% कक्षा 4 में 21·7% और कक्षा 8 में 13·2% है। बालिकाओं की इन तीन कक्षाओं में अवरोधन क्रमशः 47·1%, 25·6% और 16·6% है।[3]

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—अपव्यय एवं अवरोधन का निवारण करने के लिए अग्रांकित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है—(1) पाठ्यक्रम में सुधार, (2) परीक्षा-प्रणाली में सुधार, (3) शिक्षा-व्यवस्था में सुधार, (4) विद्यालयों के अन्दर और बाहर के वातावरण में सुधार, (5) अभिभावकों की शिक्षा, (6) उत्तम विद्यालयों की व्यवस्था, (7) शिक्षण-विधियों की रोचकता, (8) सामाजिक समस्याओं का समाधान, (9) छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति, और (10) शिक्षा एवं जीवन में उचित सम्बन्ध की स्थापना।

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 103.
2. *Kothari Commission Report*, p. 157.
3. *Kothari Commission Report*, p. 156.

(10) समस्या—भाषाओं का बाहुल्य : Multiplicity of Languages—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में भाषाओं का बाहुल्य असाधारण अवरोध—उपस्थित कर रहा है। 'भारत' 1973 (p.17) के अनुसार—हमारे देश में 826 भारतीय एवं गैर-भारतीय भाषाएँ और 1,652 बोलियाँ (मातृभाषाएँ) बोली जाती हैं। देश के प्रशासकों तथा शिक्षाविदों के समक्ष समस्या यह है कि इतनी विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग करने वाले बालकों एवं बालिकाओं को किस भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय ?

भारतीय संविधान में जिन 15 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है, वे इस देश के अधिकांश निवासियों द्वारा बोली जाती हैं। अतः उनको शिक्षा का माध्यम बनाने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। किन्तु शेष, 811 भाषाओं को इस पद पर आसीन करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त, अन्य कठिनाई यह है कि भारत में ऐसी अनेक जातियाँ हैं, जिनका न तो कोई साहित्य है और न कोई बोली। इनमें उल्लेखनीय हैं—अनुसूचित एवं आदिम जातियाँ (Scheduled Castes and Tribes), जिनकी संख्या क्रमशः आठ करोड़ और 3·80 करोड़ है।[1] और निरधिसूचित आदिम जातियाँ (Denotified Tribes), जिनकी संख्या 40 लाख है।[2] ये सभी जातियाँ पिछड़ी हुई हैं और इनमें अभी तक शिक्षा का बहुत कम प्रसार हुआ है।

विशिष्ट विद्यालय : Special School—भारत के जिन भू-भागों में आदिम, अनुसूचित एवं पिछड़ी हुई जातियाँ निवास करती हैं, उनमें अनिवार्य शिक्षा का प्रसार करने का सर्वोत्तम उपाय है—विशिष्ट विद्यालयों या आश्रम स्कूलों की स्थापना। भारत सरकार इन विद्यालयों की स्थापना का कार्य उत्साहपूर्वक कर रही है। 6,000 से अधिक विद्यालयों एवं छात्रावासों का निर्माण कर चुकी है, और इनमें अध्ययन करने वाले छात्रों को पुस्तकों, लेखन-सामग्री आदि की सुविधाएँ भी प्रदान कर रही है।[3] उक्त सुविधाओं के अतिरिक्त, छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था है।

(11) समस्या—प्रेरणा का अभाव : Lack of Incentive—अनिवार्य शिक्षा के प्रचार में बाधा उपस्थित करने वाली अन्तिम समस्या है—प्रेरणा का अभाव। यह सर्वविदित तथ्य है कि ग्रामीण जनता निर्धन है और प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक विद्यालय नहीं है। निर्धन अभिभावक अपने बालकों को अपने ग्रामों के विद्यालयों में भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए कुछ ही समय के लिए भेजते हैं या बिल्कुल नहीं भेजते हैं। जहाँ तक उनको अन्य ग्रामों के विद्यालयों में भेजने का प्रश्न है, इसकी ये अभिभावक कभी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

इसका कारण यह है कि बालकों को विद्यालय जाने में और अभिभावकों को उनको भेजने में दो विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बालक प्रातःकाल भोजन करके अपने गृहों से चलते हैं और सायंकाल को वापिस आने पर ही भोजन के दर्शन करते हैं। इसका उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निर्धन अभिभावकों को अपने बालकों की पुस्तकों, लेखन-सामग्री एवं शिक्षा-सम्बन्धी अन्य व्यय का भार वहन

1. *India*, 1977 &78, p. 120.
2. *Fourth Five-Year Plan, A Draft Outline*, p. 383.
3. *India*, 1971-72, p. 135.

करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में न तो बालक-विद्यालय जाने के लिए उत्सुक रहते हैं और न अभिभावक उनको भेजने के लिए।

समाधान—सहायक सेवाएँ : Ancillary Services—उल्लिखित समस्या का समाधान करने के लिए विद्यालयों में सहायक सेवाओं की व्यवस्था की जानी अनिवार्य है। इन सेवाओं में निःशुल्क मध्यान्ह भोजन, पाठ्य-पुस्तकों, लेखन-सामग्री, चिकित्सा इत्यादि को स्थान दिया जाना चाहिए। ये सेवाएँ या सुविधाएँ ऐसी प्रबल प्रेरक शक्तियों का कार्य करेगी कि स्वयं बालक—विद्यालय जाने का आग्रह करेंगे और अभिभावक उन्हें भेजने के लिए तत्पर रहेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा प्रारम्भिक शिक्षा
(National Education Policy (1986) and Elementary Education)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में दो बातों पर बल दिया गया—

(अ) 14 वर्ष की अवस्था के समस्त बच्चों की विद्यालयों में भर्ती तथा उनका विद्यालय में टिके रहना, तथा।

(ब) शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार।

14 वर्ष की आयु पूरा करने वाले सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान, संविधान का एक नीति निदेशक तत्त्व है। वर्ष 1950 से इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ठोस प्रयास किये गये हैं। कुछ वर्षों में संस्थाओं की संख्या तथा उनके प्रकार तथा नामांकन में प्रभावी बढ़ोत्तरी हुई है। शिक्षा संस्थाओं के सर्वसुलभ प्रावधान को आंशिक तौर पर प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 5) पर प्राप्त कर लिया गया है। पाँचवें अखिल भारतीय शिक्षा सर्वे, 1986 के अनुसार, 94·5% ग्रामीण जनसंख्या के पास एक किलोमीटर पैदल रास्ते की दूरी पर स्कूल हैं, 3 किलोमीटर के पैदल रास्ते की दूरी पर लगभग 83·98% ग्रामीण जनसंख्या के पास मिडिल स्कूल हैं। प्राथमिक स्कूलों की संख्या वर्ष 1950-51 में 2·10 लाख से बढ़कर वर्ष 1985-86 में 5·29 लाख हो गई। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्कूलों की संख्या वर्ष 1950-51 में 13,600 से बढ़कर वर्ष 1985-86 में 1·38 लाख हो गई। 6 से 11 आयु वर्ग के बच्चों का कुल नामांकन वर्ष 1950-51 में 43·1% से बढ़कर वर्ष 1960-61 में 62·4% तथा 1970-71 में 76·4% तथा वर्ष 1980-81 में 80·5% तथा वर्ष 1985-86 में 85·0% हो गया। इसी तरह 11 से 14 आयु वर्ग के बच्चों का कुल नामांकन वर्ष 1950-51 में 12·9% से बढ़कर वर्ष 1985-86 में 48·3% हो गया।

प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वसुलभीकरण कुल मिलाकर अभी तक अप्रश्य लक्ष्य है तथा इसका काफी रास्ता अभी तय करना बाकी है। पढ़ाई बीच में छोड़कर जाने वाले बच्चों की दर काफी अधिक बनी हुई है। स्कूलों में बच्चों को रोके रखने की दर कम होना तथा अपव्यय विचारणीय विषय है। वर्ष 1985-86 में कक्षा 1 से 5 तक पढ़ाई बीच में छोड़कर जाने वाले बच्चों की दर 64·4% थी। लड़कियों की सहभागिता में वृद्धि होने के बावजूद, असमानता अभी भी विद्यमान है। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा में लड़कियों की सहभागिता वर्ष 1950-51 में 28·1% से बढ़कर वर्ष 1985-86 में 40·2% होने पर भी यह

प्रतिशतता 50% की सामान्य प्रतिशतता से अभी भी कम है। उच्च प्राथमिक कक्षाओं (6 से 8) में लड़कियों की सहभागिता कम है। यह वर्ष 1950-51 में 16·1% से बढ़कर 1985-86 में 35·1% हो गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति कार्य योजना में प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण को सर्वप्रथम प्राथमिकता दी गई है यथा इस सम्बन्ध में नये कार्यक्रम भी शुरू किये गये हैं।

सन् 1992 में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को संशोधित किया गया। सन् 1992 की कार्य योजना में निम्नलिखित पर बल दिया गया—

1. प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में पर्याप्त रूप से तीन बड़े कमरे तथा तीन शिक्षकों को उपलब्ध कराकर ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के कार्य-क्षेत्र को बढ़ाना। साथ ही इस योजना को उच्च प्राथमिक स्तर तक बढ़ाने का निर्णय लिया गया।

2. यह विशेष रूप से निर्धारित किया गया है कि भविष्य में भर्ती किये जाने वाले शिक्षकों में कम से कम 50% महिलाएँ होंगी।

3. प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के सम्बन्ध में यह परिकल्पना की गई कि इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ होने से पहले 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों को सन्तोषजनक कोटि की निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी।

4. सर्वसुलभ प्रारम्भिक शिक्षा को प्राप्त करने के लिए स्कूल प्रणाली से 18 करोड़ बच्चों को पढ़ाना होगा। इससे शिक्षक छात्र 1 : 40 के अनुपात के आधार पर वर्तमान 27 लाख शिक्षकों की संख्या को 45 लाख तक बढ़ाना होगा। छात्रों की संख्या में वृद्धि होने से अगले सात वर्षों में अतिरिक्त 11 लाख कमरों की आवश्यकता होगी।

5. निरौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा मुख्य रूप से उन बच्चों की, विशेषकर लड़कियों की शिक्षा की जरूरतों को पूरा करेगी जो कि औपचारिक विद्यालयों में भाग नहीं ले सकी हैं।

6. निरौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा (लड़के तथा लड़कियाँ) केन्द्रों की स्थापना तथा उन्हें चलाने के लिए राज्य सरकार को 75 : 25 के आधार पर सहायता दी जायेगी।

7. केवल लड़कियों के लिए अनौपचारिक/निरौपचारिक केन्द्रों का गठन तथा उन्हें चलाने के लिए राज्य सरकार को 90 : 10 के आधार पर सहायता दी जायेगी।

8. निरौपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना तथा उन्हें चलाने के लिए स्वैच्छिक एजेंसियों को शत-प्रतिशत सहायता दी जायेगी।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What steps should be taken to make primary education free and compulsory for all children upto the age of fourteen years in our country ? Why have we failed, so far, to achieve this goal ? Discuss.
   हमारे देश में चौदह वर्ष तक की आयु के सब बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने के लिए कौन-कौन-से पग उठाये जाने चाहिए ? इस लक्ष्य की प्राप्ति में हम अब तक क्यों असफल रहे हैं ? विवेचन कीजिए।
2. What are the main difficulties in the way of progress of free and compulsory education in India ? What suggestions has the Kothari Commission given to remove them ?

भारत में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की उन्नति के मार्ग में मुख्य कठिनाइयाँ क्या हैं ? कोठारी आयोग ने उनको सुलझाने के लिए क्या प्रस्ताव दिए हैं ?

3. "Our primary schools today are no more than mere sheep-yards." Comment critically giving reasons. Also give your suggestions in the light of the recommendations made from time to time by the various Education Commissions to improve the conditions of the Primary Schools in our country.
   "हमारे प्राथमिक शिक्षा के विद्यालय केवल भेड़-बकरियों के बाड़े जैसे बनकर रह गये हैं।" इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कारणों सहित कीजिए। देश में प्राथमिक शिक्षा की इस दुर्दशा के सुधार हेतु, विभिन्न शिक्षा-आयोगों द्वारा समय-समय पर दिए गए सुझावों के सन्दर्भ में अपने सुझाव दीजिए।
4. The target of free and compulsory education for all children upto the age of fourteen years as laid down in the constitution of India has not been achieved as yet. What are the general causes which impede the progress in this direction ? What would you suggest to achieve the target mentioned ?
   भारतीय संविधान में उल्लिखित प्रत्येक बालक एवं बालिका को चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने का लक्ष्य अभी तक पूरा नहीं हो सका है। इस दिशा में उन्नति को अवरुद्ध करने वाले सामान्य कारण क्या हैं ? उल्लिखित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आपके क्या सुझाव हैं ?
5. Write short notes on—(a) Gokhale's Bill, (b) Early efforts for compulsory education in India, and (c) Importance of Ancillary Services in Primary School.
   अग्रलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—(अ) गोखले का विधेयक, (ब) भारत में अनिवार्य शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास, और (स) प्राथमिक विद्यालयों में सहायक सेवाओं का महत्त्व।

24

माध्यमिक शिक्षा

SECONDARY EDUCATION

"If you want to feel the generations rushing to waste like rapids—yes, like rapids—you should put your heart and mind into a private school." —H. G. Wells.

विषय-प्रवेश

सैयदैन के शब्दों में[1]—"सारे संसार के शैक्षणिक क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा के आम ढर्रे के प्रति गहरा असन्तोष रहा है और वे काफी समय से यह अनुभव करते रहे हैं कि उनकी आमूल पुनर्रचना तत्काल आवश्यक है। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुत-से बहुमूल्य परिवर्तन हुए हैं और स्वयं हमारे देश में बुनियादी शिक्षक-पद्धति ने उसकी समस्याओं के प्रति एक बिल्कुल ही नया रवैया अपनाया है, पर माध्यमिक शिक्षा अभी कुछ समय पहले तक कुल मिलाकर गतिहीन तथा अपरिवर्तित रही है।"

हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा गतिहीन तथा अपरिवर्तित क्यों रही है और उसमें गतिशीलता तथा परिवर्तनशीलता का कब, क्यों एवं कैसे समावेश हुआ है—इन तथ्यों की जानकारी प्रदान करने के लिए हम अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं; यथा—

माध्यमिक शिक्षा—स्वतन्त्रता से पूर्व

(SECONDARY EDUCATION BEFORE INDEPENDENCE)

हम स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय शिक्षा के इतिहास में उन सीमा-चिन्हों का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्होंने हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात करके, उसके प्रसार में योग दिया एवं समय-समय पर उसके स्वरूप, संगठन आदि में परिवर्तन करने का प्रयास किया।

1. माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात—माध्यमिक शिक्षा को आधुनिक युग की देन स्वीकार किया जाता है। वैदिकयुगीन एवं मध्ययुगीन शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षा के केवल

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृ० 165-166।

दो ही स्तर थे—प्राथमिक एवं उच्च। भारत में माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात करने का श्रेय—यूरोपीय मिशनरियों को प्राप्त है। उन्होंने 18वीं शताब्दी के अन्त में इस देश के कुछ भागों में माध्यमिक स्कूलों की स्थापना की। उनके उदात्त उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करके, 19वीं शताब्दी के आरम्भ में कतिपय राष्ट्र-प्रेमी भारतीयों ने उनके चरण-चिन्हों का अनुगमन करके, माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना का कार्य आरम्भ किया। डॉ० एस० एन० मुकर्जी के अनुसार[1]—"माध्यमिक स्कूलों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य—धनी भारतीयों की अपने अंग्रेज शासकों की भाषा को सीखने की माँग की पूर्ति करना था।"

2. माध्यमिक शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था—माध्यमिक शिक्षा को अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भारत के अंग्रेज शासकों से समय-समय पर प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप उसने प्रगति के पथ पर अपनी यात्रा आरम्भ की। उसे यह प्रोत्साहन निम्नांकित 4 रूपों में प्राप्त हुआ—

(i) 1839 में कम्पनी के संचालकों ने अपने एक पत्र द्वारा फोर्ट सेन्ट जार्ज (मद्रास) के गवर्नर को यह आदेश दिया कि प्रशासन-कार्य में भारतीयों की सहायता प्राप्त करने के लिए उनको अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान की जाय।[2]

(ii) 1835 में लार्ड विलियम बैंटिक ने मैकॉले के "विवरण-पत्र" को स्वीकार करके, यह निश्चय किया कि शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला सम्पूर्ण धन, अंग्रेजी भाषा के माध्यम से चलाई जाने वाली कक्षाओं में अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान करने के लिए व्यय किया जाय।[3]

(iii) 1837 में अंग्रेजी को न्यायालय की भाषा बना दिया गया।

(iv) 1844 में लार्ड हार्डिज ने अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीयों के लिए कम्पनी की नौकरियों के द्वारा खोल दिये।

कम्पनी की इन नीतियों एवं निश्चयों के फलस्वरूप भारतीयों को अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए 1852 तक सम्पूर्ण भारत में 32 मान्यता प्राप्त स्कूलों का निर्माण हो गया।

3. 1854 का वुड का आदेश-पत्र—इस "आवेदन-पत्र" में माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित निम्नांकित 3 मुख्य बातें थीं—

(i) "आदेश-पत्र" में यह घोषणा की गई कि भारत के निवासियों को यूरोप के लेखकों की पुस्तकों और वहाँ के निवासियों द्वारा अर्जित किए जाने वाले ज्ञान से परिचित कराया जाय। इस घोषणा ने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में प्रशंसनीय योग दिया।

(ii) "आदेश-पत्र" ने विद्यालयों को आर्थिक सहायता देने के लिए "सहायता-अनुदान-प्रणाली" को प्रचलित करने का सुझाव दिया। इस सुझाव ने नवीन माध्यमिक स्कूलों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया।

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 111.
2. Letter from the Court of Directors to the Governor in Council of Fort St. George, September 26, 1830.
3. Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, pp. 1938-39.

(iii) "आदेश-पत्र" ने मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित किए जाने की आज्ञा दी। ये विश्वविद्यालय 1857 में स्थापित कर दिए गए और इनको मैट्रीकुलेशन की परीक्षा लेने का अधिकार दे दिया गया। इस अधिकार ने माध्यमिक शिक्षा पर विश्वविद्यालयों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर दिया। वे अपने हित को ध्यान में रखकर माध्यमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम, शिक्षा के माध्यम आदि के सम्बन्ध में नीति का निर्धारण करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक शिक्षा में दो दोष प्रकट हो गए। वह स्वतः पूर्ण इकाई नहीं रह गई और उसका एकमात्र उद्देश्य—छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए तैयार करना हो गया।

4. 1882 का हन्टर कमीशन—इस कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को अत्यधिक साहित्यिक होने के दोष से मुक्त करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों (Diversified Course) का सुझाव दिया। उसने यह विचार व्यक्त किया कि हाईस्कूल की शिक्षा को दो भागों में व्यक्त कर दिया जाय—'अ' कोर्स एवं 'ब' कोर्स ('A' Course & 'B' Course)। 'अ' कोर्स का उद्देश्य—छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए तैयार करना हो। 'ब' का उद्देश्य—छात्रों को व्यावसायिक एवं असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो। कमीशन के सुझाव एवं विचार के प्रति न तो सरकार ने ध्यान दिया और न जनता ने। फलतः माध्यमिक शिक्षा का अपने पूर्व रूप में प्रसार होता रहा और उस पर विश्वविद्यालयों का प्रभुत्व यथावत् बना रहा।

5. 1904 का भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम—इस अधिनियम से पूर्व विश्वविद्यालयों की मैट्रीकुलेशन परीक्षा में उन माध्यमिक स्कूलों के छात्र भी सम्मिलित हो सकते थे, जिनको विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त नहीं थी। इस अधिनियम ने विश्वविद्यालयों को केवल मान्यता-प्राप्त विद्यालयों के छात्रों को मैट्रीकुलेशन परीक्षा में सम्मिलित होने की आज्ञा देने का और मान्यता-सम्बन्धी नियमों का निर्माण करने का अधिकार प्रदान कर दिया। इसके दो प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर हुए। **पहला** माध्यमिक शिक्षा पर विश्वावेद्यालयों का पहले से अधिक कठोर नियन्त्रण स्थापित हो गया। **दूसरा,** अवांछनीय स्कूल, मान्यता प्राप्त न कर सकने के कारण बन्द हो गए और नए स्कूलों की स्थापना सोच-समझकर की जाने लगी।

विश्वविद्यालयों को अधिनियम द्वारा प्राप्त होने वाले अधिकार का बहुत समय तक उपभोग करने का अवसर नहीं मिला। इसका कारण यह था कि 1905 में राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गया, जिससे प्रभावित होकर भारतीयों ने विदेशी सरकार से राष्ट्रीय शिक्षा की ज़ोरदार माँग की। इस माँग की पूर्ति—सरकार द्वारा न की जाकर, शिक्षा-प्रेमी भारतीयों के द्वारा की गई। उन्होंने अनेक स्थानों में राष्ट्रीय विद्यालयों का शिलान्यास करके उनका संचालन करना आरम्भ कर दिया। ये विद्यालय अपने स्वरूप में माध्यमिक स्कूलों के समान थे, पर राष्ट्रीय शिक्षा पर बल देने के कारण उनसे पूर्णतया भिन्न थे।

6. 1917 का सैडलर कमीशन—यह कमीशन, माध्यमिक और विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोषों का अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जब तक माध्यमिक शिक्षा में आमूल परिवर्तन करके, उसका पुनर्संगठन नहीं किया जायगा, तब तक न तो

उसके दोष दूर होंगे और न उस पर आधारित विश्वविद्यालय शिक्षा के। माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने के लिए कमीशन ने 3 महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए—(i) माध्यमिक शिक्षा को विश्वविद्यालयों के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखा जाय; (ii) विश्वविद्यालयों से इण्टरमीडिएट कक्षाओं को पृथक करके, इण्टरमीडिएट कॉलेजों की स्थापना की जाय; और (iii) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित सब कार्यों को सम्पन्न करने के लिए, प्रत्येक प्रान्त में "माध्यमिक एवं इण्टरमीडिएट शिक्षा-परिषद्" का निर्माण किया जाय। माध्यमिक शिक्षा के विषय में इस प्रकार के सुझाव प्रथम बार दिये गये थे।

7. 1929 की हर्टाग समिति—इस समिति ने यह विचार प्रकट किया कि माध्यमिक शिक्षा की प्रगति तो अवश्य हुई है, पर इस पर मेट्रीकुलेशन-परीक्षा का आधिपत्य है। समिति ने यह विचार भी व्यक्त किया कि मेट्रीकुलेशन-परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की विशाल संख्या के कारण माध्यमिक शिक्षा में बहुत अधिक अपव्यय (Wastage) हो रहा है। अपव्यय को कम करने के लिए समिति ने पाठ्यक्रम में व्यावसायिक विषयों को स्थान दिए जाने की सिफ़ारिश की।

8. 1936-37 की वुड-एबट रिपोर्ट—इस रिपोर्ट में यह अंकित किया गया कि निम्न माध्यमिक कक्षाओं में अंग्रेज़ी के अध्ययन पर बल न दिया जाय और हाईस्कूल तक की सब कक्षाओं में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

9. 1944 की सार्जेण्ट रिपोर्ट—इस रिपोर्ट में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करने के लिए 3 अत्यन्त उपयोगी सुझाव दिए गए—(i) हाईस्कूल में केवल असाधारण योग्यता के विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाय; (ii) प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थी के लिए 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण करना अनिवार्य कर दिया जाय; और (iii) साहित्यिक एवं प्राविधिक (Academic & Technical)—दोनों प्रकार के हाईस्कूलों की स्थापना की जाय। यदि इन सुझावों को क्रियान्वित कर दिया गया होता, तो आज माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप ही भिन्न होता।

उपर्युक्त विवरण इस बात का साक्षी है कि स्वतन्त्रता से पूर्व माध्यमिक शिक्षा को रूपान्तरित करने और उसे वास्तविक जीवन के लिए उपयोगी बनाने के विचार से समय-समय पर आयोगों, समितियों आदि के द्वारा बहुमूल्य सुझाव दिए गए। किन्तु, विदेशी सरकार की उदासीनता के कारण न तो वह समय एवं परिस्थितियों के अनुकूल बनी और न उसके स्वरूप में ही कोई विशेष परिवर्तन हुआ। सन् 1943 में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए, **हैम्पटन** ने लिखा—**"थोड़े से महत्त्वपूर्ण अपवादों के अलावा आज का भारतीय हाईस्कूल वैसा ही है, जैसा कि वह 1904 में था, पर उससे थोड़ा-सा भिन्न अवश्य है, जैसा कि वह बहुत समय पहले 1884 में था।"**

"The Indian high school with a few notable exception is must the same today as it was in 1904, but little changed from what it was as far back as 1884."

—**H. V. Hampton :** *The Education System,* "Secondary Education", 1943, p. 31.

माध्यमिक शिक्षा—स्वतन्त्रता के पश्चात्

(SECONDARY EDUCATION AFTER INDEPENDENCE)

स्वतन्त्र भारत में नियुक्त की जाने वाली अग्रांकित समिति एवं आयोगों ने

माध्यमिक शिक्षा को गतिशील बनाने और उसको देश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है—

(1) 1948 की ताराचन्द समिति : Tarachand Committee—इस समिति ने माध्यमिक शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने के लिए यह सुझाव दिया कि बहु-उद्देशीय माध्यमिक स्कूलों की स्थापना की जाय।

(2) 1948-49 का राधाकृष्णन् कमीशन—इस कमीशन ने भारतीय शिक्षा-प्रणाली में माध्यमिक शिक्षा को सबसे निर्बल कड़ी बताया और उसमें सुधार किए जाने पर बल दिया। स्वयं **"कमीशन"** के शब्दों में—**"हमारी शिक्षा-व्यवस्था में हमारी माध्यमिक शिक्षा सबसे निर्बल कड़ी है और उसमें तत्काल सुधार किए जाने की आवश्यकता है।"**

"Our secondary education remains the weakest in our educational machinery and needs urgent reform."

—University Education Commission Report, p. 4.

(3) 1952-55 का मुदालियर कमीशन—इस कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को एकमार्गीय एवं उद्देश्यहीन बताया। उसने यह मत व्यक्त किया कि माध्यमिक शिक्षा केवल विश्वविद्यालय-शिक्षा की पृष्ठभूमि ही नहीं है, वरन् स्वतः पूर्ण भी है। उसने माध्यमिक शिक्षा को दोषमुक्त करने के लिए दो मुख्य सुझाव दिए—पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण एवं बहु-उद्देशीय माध्यमिक स्कूलों की स्थापना।

(4) 1964-66 का कोठारी कमीशन—इस कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा में सुधार करने के लिए नवीन संगठन; पाठ्यक्रम, व्यवसायीकरण आदि के विषय में अनेक उपयोगी सुझाव दिए। उसने यह विचार प्रकट किया कि माध्यमिक शिक्षा का व्यक्तियों के जीवन, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बन्ध होना चाहिए।

स्वतन्त्र भारत में उपर्युक्त समिति एवं आयोगों के सुझावों ने माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप को परिवर्तित करने पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनमें सबसे अधिक प्रभाव 'कोठारी कमीशन' पर पड़ा है, जिसके सुझावों को स्वीकार करके सम्पूर्ण देश में माध्यमिक शिक्षा की संरचना को समान रूप देने का निश्चय किया गया है। इस संरचना के अन्तर्गत 10 वर्ष की सामान्य शिक्षा, 2 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और 3 वर्ष का प्रथम डिग्री कोर्स रखा गया है।

नवोदय विद्यालय
(NAVODAYA VIDYALAYA)

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (1986) में किये गये संकल्प—गति-निर्धारक विद्यालय की स्थापना को पूरा करने के लिए नवोदय विद्यालय खोले जा रहे हैं। इन नवोदय विद्यालयों की स्थापना का मुख्य लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य किन्हीं सीमाओं के कारण शिक्षा से वंचित बालकों को गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराकर उनका सन्तुलित तथा बहुआयामी विकास करना है।

नवोदय विद्यालयों में कक्षा 6 से कक्षा 12 तक की पढ़ाई की व्यवस्था है। ये विद्यालय केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) से सम्बन्धित हैं। इन विद्यालयों में शिक्षा

पूर्णतः निःशुल्क है। छात्र-छात्राओं को आवास, भोजन, पुस्तकें, पाठ्य-सामग्री तथा गणवेश (Uniform) भी निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं।

माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण
(VOCATIONALIZATION OF SECONDARY EDUCATION)

शिक्षा के प्रस्तावित पुनर्गठन में व्यवस्थित और सुनियोजित व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम को दृढ़ता से क्रियान्वित करना बहुत ही जरूरी है। इससे व्यक्तियों के रोजगार पाने की क्षमता बढ़ेगी। आजकल कुशल कर्मचारियों की माँग और आपूर्ति में जो असन्तुलन है, वह समाप्त होगा और ऐसे छात्रों को एक वैकल्पिक मार्ग मिल सकेगा जो इस समय बिना किसी विशेष रुचि या उद्देश्य के उच्च शिक्षा की पढ़ाई किये जाते हैं।

व्यावसायिक शिक्षा अपने में शिक्षा की एक विशिष्ट धारा होगी जिसका उद्देश्य कई क्षेत्रों के चुने गये काम-धन्धों के लिये छात्रों को तैयार करना होगा। ये कोर्स आमतौर पर सेकण्डरी शिक्षा के बाद दिये जायेंगे लेकिन इस योजना को लचीला रखा जायेगा ताकि आठवीं कक्षा के बाद भी छात्र ऐसे कोर्स ले सकें। औद्योगिक संस्थान (ITI) भी व्यावसायिक शिक्षा के ढाँचे के अनुसार चलेंगे ताकि इनमें प्राप्त सुविधाओं का पूरा लाभ उठाया जा सके।

व्यावसायिक पाठ्यचर्या या सस्थाओं को स्थापित करने का दायित्व सरकार पर और सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के सेवा नियोजकों (एम्प्लायर्स) पर होगा। फिर भी सरकार स्त्रियों, ग्रामीण तथा जनजातियों के छात्रों तथा समाज के वंचित वर्गों की आवश्यकता पूरी करने के लिए विशेष कदम उठायेगी। विकलांगों के लिए भी समुचित कार्यक्रम चलाये जायेंगे।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के स्नातकों को ऐसे अवसर दिये जायेंगे जिनके फलस्वरूप वे पूर्व निर्धारित शर्तों के अनुसार व्यावसायिक विकास कर सकें, कैरियर में तरक्की पा सकें और सामान्य तकनीकी एवं उच्च स्तरीय व्यवसायों के कोर्सों में प्रवेश पा सकें।

नवसाक्षर लोगों, प्राथमिक शिक्षा पूरी किये हुए युवाओं, स्कूल छोड़ जाने वालों और रोजगार में या आंशिक रोजगार में लगे हुए व्यक्तियों के लिए भी अनौपचारिक लचीले और आवश्यकता पर आधारित व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम चलाये जायेंगे। इस सम्बन्ध में महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की अकादमिक धारा के स्नातक यदि चाहें तो उनके लिए उच्चस्तरीय व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रबन्ध किया जायेगा।

यह प्रस्ताव है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों का दस प्रतिशत सन् 1990 तक और 25 प्रतिशत सन् 1995 तक व्यावसायिक पाठ्यचर्या में आ जाये। इस बात के लिए कदम उठाये जायेंगे कि व्यावसायिक शिक्षा पाकर निकले हुए छात्रों में से अधिकतर को या तो नौकरी मिले या वे अपना रोजगार स्वयं कर सकें। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण नियमित रूप से किया जायेगा। माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रमों के विविधीकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकार अपने अधीन की जाने वाली भर्ती की नीति पर भी पुनः विचार करेगी।

माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की एक केन्द्र प्रायोजित योजना जिसे पर्याप्त धन उपलब्ध कराया गया था, फरवरी 1988 से लागू की गई। त्रिपुरा, दमन और द्वीव, दादरा और नागर हवेली तथा लक्ष्यद्वीप को छोड़कर शेष सभी राज्यों में इस स्कीम का कार्यान्वयन प्रारम्भ किया गया। वर्ष 1991-92 के अन्त में 44,000 स्कूलों में 1254 व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को मंजूरी दी गई जिससे +2 स्तर पर 6·27 लाख छात्रों को (कक्षा 11 तथा 12 में प्रति व्यावसायिक सेक्शन 25 छात्र की दर से) इस धारा की ओर उन्मुख किया गया। यह संख्या +2 स्तर पर नामांकित कुल छात्रों की 9·3% है। यद्यपि संख्या की दृष्टि से +2 स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा स्कीम का कार्यान्वयन स्पष्टतः पर्याप्त है परन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से अभी बहुत कुछ करना शेष है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के व्यवसायीकरण को प्राथमिकता क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने वर्ष 1990 में सात राज्यों में इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन का त्वरित मूल्यांकन किया। शिक्षा विभाग ने कार्यक्रम कार्यान्वयन सम्बन्धी आँकड़े एकत्र करने के लिए मैसर्स ओपर मेनन सिस्टम का उपयोग किया था। 19 राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों से सम्बन्धित वर्ष 1991 तक के आँकड़े प्राप्त किये जा चुके हैं। एक संगणकीकृत प्रबन्ध सूचना प्रणाली (Management Information System–MIS) विकसित की गयी ताकि जिला से लेकर केन्द्र तक विभिन्न स्तरों पर कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर सूचना उपलब्ध हो सके। प्रबन्ध सूचना प्रणाली जुलाई, 1992-93 से कार्यान्वित हो चुकी है। आठवीं योजना के दौरान मुख्य बल विद्यमान व्यावसायिक कार्यक्रम के समेकन और गुणवत्ता सुधार पर होगा। आठवीं योजना के अन्त तक +2 स्तर पर 2·62 लाख अतिरिक्त छात्रों को इस ओर उन्मुख करने के लिए सुविधाएँ देने का प्रस्ताव है। इस प्रकार कुल 8·89 लाख छात्रों या प्रतिशत की दृष्टि से +2 स्तर के कुल छात्रों के 11% को शामिल किया जाना है।

इस व्यावसायिक कार्यक्रम के राष्ट्रीय स्तर पर संस्तुत पाठ्यक्रम ढाँचे के निम्नलिखित घटक हैं—

1. भाषा	15-20%
2. सामान्य आधारभूत पाठ्यक्रम (इसमें पर्यावरण शिक्षा, ग्रामीण विकास तथा उद्यमशीलता विकास शामिल है)	10-15%
3. व्यावसायिक सिद्धान्त एवं व्यवहार (इसमें सेवाकालीन प्रशिक्षण भी शामिल है)	65-70%

(इसमें कृषि तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी पाठ्यक्रमों को भी शामिल किया गया है)

+2 व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त अधिकतर छात्रों को स्वरोजगार के लिए अवसर प्रदान करने की भी व्यवस्था की गई है। इनको लघु उद्योग स्थापित करने के लिए बैंकों से ऋणों के लिए व्यवस्था की जा रही है।

राष्ट्रीय खुला विद्यालय
(NATIONAL OPEN SCHOOL)

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने औपचारिक शिक्षा प्रणाली की पूर्ति हेतु सन् 1979 में एक राष्ट्रीय खुला विद्यालय अपने ढंग का नई दिल्ली में स्थापित किया। 23 नवम्बर, 1989 में इसको एक स्वायत्त सोसायटी के रूप में पंजीकृत किया। यह मानव संसाधन मन्त्रालय के शिक्षा विभाग से सम्बन्धित है। सन् 1990 में भारत सरकार ने इसको एक प्रस्ताव द्वारा उपाधि-पूर्व स्तर के कोर्स के लिये परीक्षा तथा प्रमाण देने की सत्ता सौंप दी। यह विद्यालय अब ग्रामीण/शहरी/स्त्री/अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के बच्चों/रोजगारों में लगे व्यक्तियों/बीच में विद्यालय छोड़ जाने वाले युवाओं आदि के लिये +2 तक की शिक्षा की व्यवस्था कर रहा है। राष्ट्रीय खुले विद्यालय ने 'सबके लिये शिक्षा' (Education for all) प्रदान करने के लिये 341 विद्यालय स्थापित किये हैं जो इस कार्य में उसकी सहायता करते हैं। ये विद्यालय मान्य विद्यालय (Accredited schools) कहलाते हैं। इनमें 302 सामान्य शिक्षा तथा 39 व्यावसायिक शिक्षा के हैं। वर्ष 1994-95 से राष्ट्रीय खुला विद्यालय ने कृषि तथा प्राविधिक कोर्सों की व्यवस्था करने का संकल्प किया है। वर्ष 1993-94 में इस विद्यालय ने सेकण्डरी तथा सीनियर सेकण्डरी के लिए 60 हजार छात्रों को प्रवेश देने का लक्ष्य निर्धारित किया है। वर्ष 1993-94 में इसने 56000 छात्रों की परीक्षा मई, 1993 में ली थी। यह विद्यालय पुस्तकों का प्रकाशन भी करता है। इसने वर्ष 1993-94 में 25 लाख से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन किया जो 500 से अधिक प्रकाशन थे। विद्यालय ने इन पुस्तकों को अपने छात्रों को वितरित किया।

शैक्षिक टैक्नॉलॉजी कार्यक्रम
(EDUCATIONAL TECHNOLOGY PROGRAMME)

शिक्षा में व्यापक गुणात्मक सुधार लाने के लिये चौथी योजना अवधि के दौरान सन् 1972 में शैक्षिक टैक्नॉलॉजी कार्यक्रम शुरू किया गया। योजना के अन्तर्गत राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण (NCERT) में शैक्षिक टेक्नॉलॉजी कक्ष स्थापित करने के लिये शत-प्रतिशत सहायता प्रदान की गई। इन्सैट के आगमन के साथ एन० सी० ई० आर० टी० में एक केन्द्रीय शैक्षिक टैक्नॉलॉजी संस्थान (Central Institute of Educational Technology–CIET) और छः राज्यों—आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, उडीसा तथा उत्तर प्रदेश में राजकीय शैक्षिक टैक्नॉलॉजी संस्थान (State Institute of Educational Technology–SIET) स्थापित किये गये। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये शैक्षिक टैक्नॉलॉजी योजना में संशोधन किया गया। इसका उद्देश्य शैक्षिक दूरदर्शन तथा श्रवण कार्यक्रम निर्माण सुविधाओं को सशक्त करना और सातवीं योजना अवधि के दौरान प्राथमिक विद्यालयों को एक लाख रंगीन टेलीविजन तथा पाँच लाख रेडियो-कम-कैसेट प्लेयर की सप्लाई करके सुविधाओं का विस्तार करना था। कार्यक्रम तैयार करने का कार्य केन्द्रीय शैक्षिक टैक्नॉलॉजी संस्थान

तथा सभी छः राजकीय शैक्षिक टैक्नॉलॉजी संस्थाओं में शुरू हो गया। शैक्षिक सत्र 1988-89 से यह कार्य इनकी जिम्मेदारी हो गई।

शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं[1]—

क्रम	विवरण	1987-88 to 1989-90	1990-91	1991-92	1992-93	कुल योग
1.	इस योजना के अन्तर्गत आने वाले राज्य / संघ शासित प्रदेश	31	32	32	32	32
2.	वितरित किये गये टी० वी० सैट	24,897	6,232	6,000	3,600	40,729
3.	रेडियो - कम-कैसेट प्लेयरों का वितरण	1,55,222	72,883	28,453	25,058	2,81,616
4.	इस योजना पर व्यय	46·84 करोड़	14·57 करोड़	14·00 करोड़	14·00 करोड़	89·41

विज्ञान शिक्षा
(SCIENCE EDUCATION)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1886) में व्याख्यातित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु केन्द्र ने 1987-8 में विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा में सुधार लाने की शुरूआत की जिससे विज्ञान शिक्षा का स्तर सुधरे तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Temper) को बढ़ावा मिले। इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों में 'साइंस किट' उपलब्ध कराने, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान प्रयोगशालाओं को आधुनिक बनाने तथा अधिक उपकरण तथा सामग्री जुटाने, विज्ञान की शिक्षा के लिये जिला संसाधन केन्द्र खोलने ... एवं गणित के शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण देने के लिये राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को आर्थिक सहायता दी जाती है। इस योजना में विज्ञान की शिक्षा के क्षेत्र में ... परियोजनाएँ (Projects) बनाने और संसाधन सम्बन्धी मदद जुटाने के काम में स्वयंसेवी संगठनों को भी सहायता देना शामिल है। इस योजना की विशेष उपलब्धियाँ अग्र प्रकार हैं—

1. *Annual Report*, 1993-94, p. 47-48.

क्र० सं०	विवरण	सातवीं योजना	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	योग
1.	व्यय की गई धनराशि (करोड में)	80·03	20·59	18·98	24·94	22·11	166·65
2.	राज्यों/संघ शासित प्रदेशों की संख्या	30	24	12	14	15	32
3	विद्यालयों की संख्या जिनको इस योजना के अन्तर्गत लिया गया है।						
	(अ) उच्च प्राथमिक विद्यालय (साइंस किट)	42,398	5,791	7,880	11,678	5,000	72,747
	(ब) सेकण्डरी/हायर सेकण्डरी (पुस्तकालय सहायता)	16,382	3,843	3,671	5,179	2,350	31,425
	(स) सेकण्डरी/हायर सेकण्डरी विद्यालय (प्रयोगशाला सहायता)	15,073	3,981	3,783	5,849	2,950	31,636
4.	उन संस्थाओं की संख्या जिन्हें जिला संसाधन केन्द्रों की स्थापना हेतु सहायता दी गई	115	57	26	—	—	198

अन्तर्राष्ट्रीय मैथेमेटिकल ओलम्पियाड
(INTERNATIONAL MATHEMATICAL OLYMPIAD)

विद्यालय स्तर पर गणित के प्रतिभाशाली छात्रों की पहचान करने तथा उन्हें प्रोत्साहित करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मैथेमेटिकल ओलम्पियाड आयोजित किया जाता है। भारत इसमें सन् 1989 से भाग ले रहा है। प्रत्येक प्रतिभागी देश को आठ सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल भेजने का अधिकार है। इसमें 6 माध्यमिक विद्यालय के छात्र तथा एक दल का नेता और एक उपनेता शामिल होता है। भारत ने सन् 1991 तथा 1993 के ओलम्पियाडों में कई मैडल प्राप्त किये हैं। सम्भवतः 1996 का ओलम्पियाड भारत में होगा।

विद्यालयी शिक्षा को पर्यावरण उन्मुख बनाना
(ENVIRONMENTAL ORIENTED TO SCHOOL EDUCATION)

सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में पर्यावरण के संरक्षण को एक मूल्य स्वीकार किया गया था। अतः विद्यालयी शिक्षा को पर्यावरण उन्मुख बनाने के लिये केन्द्र ने वर्ष 1988-89 में एक योजना शुरू की ताकि शैक्षिक कार्यक्रमों तथा स्थानीय पर्यावरण के बीच तालमेल बिठाया जा सके। इस योजना के अन्तर्गत राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों तथा स्वयंसेवी संगठनों को पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिये शत-प्रतिशत सहायता दी जाती है। इस योजना के कार्यों में पाठ्यक्रम तथा उसके अलावा सामग्री की समीक्षा, सामान्य जानकारी की किताबें/पोस्टर/दृश्य पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम सहगामी सामग्री की समीक्षा, विद्यालयों द्वारा विभिन्न स्मारकों के अध्ययन, साज-सम्भाल का काम सम्भालना और आस-पड़ौस की पारिस्थितिकीय समस्याओं का अध्ययन शामिल है। इस परियोजना की उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं—

क्रम संख्या	विवरण	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	योग
1.	राज्यों/संघ शासित प्रदेशों में संचालन	8	9	17	10	25
2.	स्वीकृत परियोजनाओं की संख्या	6	9	1	5	21
3.	व्यय की गई धनराशि	2 करोड़	1·81 करोड	1·80 करोड़	1·24 करोड	6·85 करोड

कार्य योजना, 1992 तथा माध्यमिक शिक्षा
(PROGRAMME OF ACTION, 1992 AND SECONDARY EDUCATION)

इस कार्य योजना में निम्नलिखित बातों पर बल दिया गया—

1. इसमें विशेषकर विज्ञान, व्यावसायिक तथा वाणिज्य के विषयों में लड़कियों,

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की अधिक भागीदारी पर बल दिया गया है।

2. इसमें माध्यमिक शिक्षा बोर्डों को पुनर्गठित करने तथा उन्हें स्वायत्तता प्रदान करने पर बल दिया गया है।

देश-भर के बोर्डों की वर्तमान स्थिति तथा उनके स्तर का अध्ययन करने तथा माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के लिए बोर्डों को एक प्रभावी साधन के रूप में बदलने के लिये योजना तैयार करने हेतु एक कार्यदल का गठन किया जायेगा। इस कार्यदल में राज्यों/संघ शासित प्रदेशों, राज्य शिक्षा बोर्डों तथा अन्य सम्बन्धित संस्थाओं का उचित प्रतिनिधित्व होगा। यह कार्यदल मार्च, 1993 तक अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देगा और राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को सलाह दी जावेगी कि वे आठवीं योजना अवधि के दौरान इसकी सिफारिशों को लागू करें।

3. इसमें परिकल्पना की गयी है कि यथासम्भव सीमा तक माध्यमिक स्तर की संस्थाओं में संगणक साक्षरता का प्रावधान किया जायेगा ताकि बच्चों को उभरते हुए प्रौद्योगिकी के युग में प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक संगणक दक्षता से सुसज्जित किया जा सके।

4. परीक्षा सुधार की एक व्यापक योजना लागू करना। इस योजना में परीक्षा सुधार के लिए निम्नलिखित पर बल दिया जायेगा—

(i) सतत् व्यापक मूल्यांकन को लागू करना।

(ii) मूल्यांकन की नई तकनीकी में शिक्षकों का अनुस्थापन।

(iii) शैक्षिण परीक्षण सेवा (Educational Testing Service) की स्थापना।

5. माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की भौतिक तथा मूलभूत ढाँचा सम्बन्धी सुविधाओं में महत्त्वपूर्ण सुधार करना।

6. उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में पाठ्यक्रमों में विविधता का प्रावधान करना।

7. माध्यमिक स्तर के लिये सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा की विद्यमान प्रणाली की नये सिरे से समीक्षा करना और एक संशोधित शिक्षा प्रणाली तैयार करना और इसे लागू करना।

8. सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण को संस्थात्मक रूप प्रदान करना।

9. माध्यमिक स्कूलों के लिये पाठ्यक्रम, शैक्षिक सामग्री और उपस्कर के क्षेत्र में शोध और विकास के कार्य में लगी शैक्षिक संस्थाओं और निकायों को सुदृढ़ बनाना।

10. शैक्षिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर बल दिया जायेगा।

(i) कक्षा-कक्षों के कार्यकलापों में सुधार लाने के लिये संचार प्रौद्योगिकी का विकास किया जायेगा।

(ii) शैक्षिक रेडियो/टी० वी० का प्रयोग।

(iii) दृश्य-श्रव्य कैसेट सेवा का प्रयोग।

(iv) इंटरेक्टिव लर्निंग के लिए संगणक (Computer) का प्रयोग।

11. माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में कार्य-अनुभव, मूल्याधारित शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, कला शिक्षा तथा स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा को स्थान प्रदान किया जायेगा। साथ ही इन विषयों में सेवारत शिक्षकों के लिये विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रावधान किया जायेगा।

माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति
(PRESENT POSITION OF SECONDARY EDUCATION)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में इस बात पर बल दिया गया कि "माध्यमिक शिक्षा की सुलभता को विस्तृत किया जायेगा ताकि वर्तमान समय में जिन क्षेत्रों को शामिल नहीं किया गया है, उन्हें शामिल किया जा सके।" वर्ष 1987-88 से 1990-91 की अवधि के दौरान माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्कूलों तथा छात्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस अवधि के दौरान माध्यमिक स्तर पर 16·8 प्रतिशत तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 17·6 प्रतिशत वृद्धि हुई है। वर्ष 1990-91 में माध्यमिक स्तर पर कुल नामांकन में से 33·4% लड़कियाँ थीं और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर इनका नामांकन 32% था। इस वृद्धि के साथ-साथ माध्यमिक शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिये भी कदम उठाये गये। इन महत्त्वपूर्ण कदमों का विवेचन पिछले अनुच्छेदों में किया गया। भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की कार्य योजना, 1986 में परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुकूल संशोधन किया और कार्य-योजना 1992 प्रस्तुत की गई। इसके अनुकूल केन्द्र तथा राज्यों ने कार्य करना प्रारम्भ किया। इस कार्य-योजना के अनुकूल माध्यमिक शिक्षा को आधुनिक प्रौद्योगिकी के युग के अनुकूल बनाने पर बल दिया गया। माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण, विज्ञान-शिक्षा के गुणात्मक सुधार, योग शिक्षा, संगणक शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा, पर्यावरण उन्मुख शिक्षा आदि को सम्मिलित किया गया। वर्ष 1993-94 में माध्यमिक शिक्षा की स्थिति इस प्रकार थी—

वर्ष	हाई/हायर सेकण्डरी/ इण्टर कॉलेजों की संख्या	छात्रों की संख्या	शिक्षकों की संख्या
1993-94	88411	33,49,687	14·05 लाख

समस्याएँ व उनके समाधान
(PROBLEMS AND THEIR SOLUTIONS)

स्वतन्त्र भारत में माध्यमिक शिक्षा का विकास तीव्र गति से हुआ है। किन्तु इस विकास का सम्बन्ध केवल उसकी संख्यात्मक वृद्धि से है, गुणात्मक उन्नति से नहीं। समय-समय पर किये जाने वाले प्रयासों के बावजूद न तो उसकी संरचना में कोई विशेष परिवर्तन हुआ है और न उसकी उपयोगिता में कोई विशेष अभिवृद्धि। वह हमारी शिक्षा-व्यवस्था की अब भी सबसे निर्बल कड़ी है। वह वास्तविक जीवन से असम्बद्ध है। वह उन मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति कोई ध्यान नहीं देती है, जिनकी पूर्ति प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रौढ़ जीवन में चाहता है। इस प्रकार, हमारी प्रचलित माध्यमिक शिक्षा में

अनेक दोषों और समस्याओं का समावेश हो गया। हम कुछ प्रमुख समस्याओं और उनके समाधान पर निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैं—

(1) समस्या—उद्देश्यहीनता : Aimlessness—हमारी माध्यमिक शिक्षा की उद्देश्यहीनता एक स्वयं-सिद्ध सत्य है। वस्तुतः इस शिक्षा का जो उद्देश्य, पराधीन भारत में था, वही स्वाधीन भारत में भी है। माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने वाले भारतीय छात्रों के केवल दो उद्देश्य होते हैं—उच्च शिक्षा की किसी संस्था में प्रवेश पाना या कोई छोटी-मोटी नौकरी प्राप्त करना।

उपर्युक्त दो उद्देश्यों में से किसी एक की प्राप्ति के लिए विद्यार्थीगण अपने सुख एवं स्वास्थ्य की आहुति देकर पुस्तकों की विषय-सामग्री को कण्ठस्थ करने में अपना समय व्यतीत करते हैं और उनके अभिभावक अपने सुख एवं स्वास्थ्य पर धन व्यय न करके, उसे उनको दे देते हैं। किन्तु, जिन विद्यार्थियों को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफलता मिलती है, वे एवं उनके अभिभावक दोनों ही निराशा का शिकार बनकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

समाधान—निश्चित उद्देश्य : Definite Aims—माध्यमिक शिक्षा को उपकारी एवं गुणकारी बनाने के लिए उसके उद्देश्यों को सतर्कता से निश्चित किया जाना परम आवश्यक है। उपयुक्त उद्देश्यों के अभाव में उसका सफल और सार्थक होना असम्भव है। यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य किस आधार पर निर्धारित किये जाने चाहिए ? इस विषय में **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** का परामर्श है[1]—**"माध्यमिक शिक्षा स्वयं में पूर्ण होनी चाहिए और उसे छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए तैयार करना चाहिए। उसे कुछ छात्रों को जीवन में प्रवेश करने के लिए और दूसरों को विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के लिए तैयार करना चाहिए।"**

'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' ने भारत की वर्तमान आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किए हैं, वे भी उपयुक्त हैं।

(2) समस्या—छात्र-अनुशासनहीनता : Student Indiscipline—वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक नवीन जटिल समस्या—देशव्यापी छात्र-अनुशासनहीनता की है। इसके लिए छात्रों पर दोषारोपण करना, उनके प्रति असीम अन्याय करना है। इसका कारण यह है कि अनुशासनहीनता के लिए छात्र नहीं, वरन् अनेक शैक्षिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारण उत्तरदायी हैं। इन कारणों में सबसे अधिक गम्भीर हैं—अनुपयुक्त पाठ्यक्रम, दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली, उद्देश्यहीन शिक्षा, सहशिक्षा का प्रचलन, जातीय पक्षपात, आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन, छात्रों के प्रति अध्यापकों की उदासीनता, राजनीतिक दलों का छात्रों को प्रोत्साहन, कामोद्दीपक चलचित्र, अश्लील गीत इत्यादि। इन सब कारणों के फलस्वरूप छात्रों में अनुशासनहीनता की इतनी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है कि छात्र-वर्ग, समाज के भाल पर कलंक की कालिमा को प्रतिदिन अधिक ही अधिक गहरा करता चला जा रहा है। यदि इस समस्या का तुरन्त

1. S. N. Mukerji : *op cit.*, p. 114.

समाधान नहीं किया गया तो वह असाध्य रोग बनकर हमारे देश के लिए दारुण दुःख का कारण बन सकती है।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—देश में सर्वत्र विद्यमान, छात्र अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए 6 उपायों का सुझाव दिया जा सकता है। **पहला,** माध्यमिक शिक्षा को दोषमुक्त करके, समयानुकूल बनाया जाय, ताकि वह वयस्क-जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। **दूसरा,** छात्रों को अनुशासन का महत्त्व बताकर, उनके हृदय में अनुशासन के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा की भावना जाग्रत की जाय। **तीसरा,** छात्रों एवं शिक्षकों में पारस्परिक प्रेम एवं आदर की भावना जाग्रत करके, उनमें मधुर सम्बन्धों की स्थापना की जाय। **चौथा,** एक कानून बनाकर छात्रों को राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया जाय। **पाँचवाँ,** सरकार द्वारा कामुक गीतों और चलचित्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। **छठवाँ,** **हुमायूँ कबीर** के अनुसार—**"विद्यालयों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा में नैतिक सामग्री को समाविष्ट करने का प्रयास किया जाय।"**.

"An Attempt should be made to introduce an ethical content in instruction imparted in schools."

—**Humayun Kabir** : *Letters on Discipline*, p. 2.

(3) समस्या—धन का अभाव : Dearth of Money—माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के मार्ग में धनाभाव ने प्रायः एक अज्ञेय अवरोध उपस्थित कर दिया है। भारत के अधिकांश माध्यमिक स्कूल धनाभाव के कारण अपने छात्रों का शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास करने में पूर्णतया सफल नहीं होते हैं। धनाभाव का मुख्य कारण यह है कि ये स्कूल बहुत कुछ छात्रों से प्राप्त होने वाले शुल्क से चलते हैं। 25 प्रतिशत से अधिक व्यक्तिगत माध्यमिक स्कूलों को सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती है।[1] सरकार की आर्थिक सहायता के अभाव में किसी भी स्कूल का कुशलतापूर्वक कार्य करना असम्भव है। यह सहायता इसलिए और अधिक आवश्यक है, क्योंकि स्कूलों को राज्य द्वारा छात्रों के लिए अधिक-से-अधिक पाठ्य-विषयों की शिक्षा और सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों की व्यवस्था करने के लिए बाध्य किया जाता है। जब तक इन कार्यों के लिए स्कूलों को सहायता-अनुदान के रूप में सरकार से पर्याप्त धन नहीं मिलेगा, तब तक उनमें कार्यक्षमता का अभाव अनिवार्य रूप से बना रहेगा।

समाधान—निश्चित आर्थिक नीति : Definite Financial Policy—माध्यमिक स्कूलों की धनाभाव की समस्या का समाधान करने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा निश्चित आर्थिक नीति का अनुसरण किया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में 'अन्तर्राष्ट्रीय टीम'[2] और 'माध्यमिक शिक्षा आयोग'[3] के अग्रलिखित सुझाव लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं—

1. **S. N. Mukerji** : *op. cit.*, p. 159.
2. *Report of the International Team*, pp. 105-121.
3. *Secondary Education Commission Report*, p. 227.

1. केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारों को पारस्परिक सहयोग से माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन तथा उसकी नीतियों का निर्माण करना चाहिए। साथ ही उसके संचालन का दायित्व अपने कन्धों पर लेना चाहिए।

2. विद्यालयों को अपनी गुणात्मक उन्नति करने के लिए सरकार से समय-समय पर अतिरिक्त सहायता-अनुदान मिलना चाहिए।

(4) समस्या—निर्देशन का अभाव : Absence of Guidance—भारत के अनेक माध्यमिक स्कूलों में निर्देशन कार्यक्रमों का अभाव है। इन स्कूलों में निर्देशन न केवल छात्रों की दृष्टि से, वरन् शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यों की दृष्टि से भी आवश्यक है। छात्रों की दृष्टि से इसलिए आवश्यक है, क्योंकि अपरिपक्व मस्तिष्क वाले होने के कारण वे अपनी क्षमताओं के अनुकूल पाठ्य-विषयों का चयन करने में असमर्थ होते हैं। त्रुटिपूर्ण चयन का परिणाम होता है—परीक्षा में उनकी असफलता और असफलता—अपव्यय का कारण बनती है। जहाँ तक शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यों का प्रश्न है, निर्देशन उनको अपने छात्रों की अभिरुचियों एवं योग्यताओं का ज्ञान प्रदान करता है, जिससे सत्पन्न होकर वे उनकी शैक्षिक प्रगति में अधिक योग दे सकते हैं।

समाधान—निर्देशन की व्यवस्था : Provision for Guidance—'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' की सिफारिश के अनुसार भारत के 13 राज्यों में निर्देशन-सेवाओं (Guidance Services) की व्यवस्था कर दी गई है, जिनसे लगभग 3,000 माध्यमिक स्कूलों के छात्र, शिक्षक एवं प्रधानाचार्य लाभान्वित हो रहे हैं।[1] अतः हम कह सकते हैं कि अब तक छात्रों को निर्देशन प्रदान करने की दिशा में जो कार्य किया गया है, वह केवल नाममात्र के लिए है। आवश्यकता इस बात की है कि भारत के प्रत्येक हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी स्कूल के छात्रों के लिए निर्देशन-सेवाओं को सुलभ बनाया जाय। **"कोठारी कमीशन"** ने इस बात पर बल देते हुए लिखा है—

"अन्तिम लक्ष्य—सब माध्यमिक स्कूलों में पर्याप्त निर्देशन सेवाओं को आरम्भ करना चाहिए।"

(5) समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम : Defective Curriculum—लगभग एक शताब्दी पूर्व निर्मित किया जाने वाला पाठ्यक्रम अब भी सम्पूर्ण देश में लगभग कुछ परिवर्तनों के साथ माध्यमिक स्कूलों में प्रचलित है। समयानुकूल न होने के कारण उनकी उपयोगिता नष्ट हो गई है और उनमें अनेक गम्भीर दोष प्रकट हो गए हैं। **'माध्यमिक शिक्षा आयोग'** के अनुसार, उनका उल्लेख निम्नांकित क्रम में किया जा सकता है[2]—

1. पाठ्यक्रम—पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक है।
2. पाठ्यक्रम—नीरस, बोझिल एवं परम्परागत है।
3. पाठ्यक्रम—संकुचित एवं एकमार्गीय (Unilateral) है।
4. पाठ्यक्रम—किशारों की विभिन्न रुचियों एवं आवश्यकता को पूर्ण नहीं करता है।

1. **S. N. Mukerji** : *op. cit.*, p. 153.
2. *Secondary Education Commission Report*, p. 61.

5. पाठ्यक्रम पर परीक्षा का पूर्ण प्रभुत्व है।

6. पाठ्यक्रम में प्राविधिक व्यावसायिक विषयों का अभाव है।

7. पाठ्यक्रम का छात्रों के वातावरण और वास्तविक एवं सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पाठ्यक्रम के उपर्युक्त दोषों के कारण छात्रों का जो अहित होता है, उस पर प्रकाश डालते हुए, **'माध्यमिक शिक्षा आयोग'** ने लिखा है—**"जब छात्र स्कूल छोड़ते हैं, तब वे समाज से असामंजस्यता का अनुभव करते हैं और वे उसमें अपने स्थान को विश्वास एवं कुशलता से ग्रहण नहीं कर पाते हैं।"**

"When student pass out of school, they feel ill-adjusted and cannot take their place confidently and competently in the community."

—Secondary Education Commission Report, p. 18.

समाधान—विविध व व्यावसायिक पाठ्यक्रम : Diversified and Vocational Courses—पाठ्यक्रम के दोषों का निवारण इस बात को ध्यान में रखकर किया जा सकता है कि सब बालकों के लिए समान पाठ्यक्रम नहीं हो सकता है। उसमें विभिन्न वर्गों के छात्रों की अभिवृत्तियों, अभिरुचियों एवं सभी आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्य-विषयों का समावेश किया जाना आवश्यक है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि उसमें देश की तत्कालीन माँगों की पूर्ति करने के लिए पाठ्य-विषयों को स्थान दिया जाय। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर **'मुदालियर कमीशन'** ने विविध पाठ्यक्रमों (Diversified Courses) का और **'कोठारी कमीशन'** ने व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (Vocational Courses) का सुझाव दिया है। संक्षेप में, पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में इन दोनों कमीशनों के विचार निम्नलिखित हैं—

1. पाठ्यक्रम के समस्त विषयों में अन्तःसम्बन्ध होना चाहिए।

2. पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।

3. छात्रों को अपनी क्षमताओं, योग्यताओं एवं अभिरुचियों के अनुसार विषयों का चयन करने के लिए पाठ्यक्रम में विविध विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए।

4. देश को औद्योगिक एवं व्यावसायिक कर्मों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए और उनके लिए कुशल कार्यकर्त्ताओं की प्राप्ति को सुगम बनाने के लिए पाठ्यक्रम में व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए।

5. **'मुदालियर कमीशन'** ने विविध विषयों में इनको विशेष महत्त्व दिया है—कृषि-विज्ञान, गृह-विज्ञान, मानव-विज्ञान, ललितकलाएँ और प्राविधिक एवं वाणिज्यिक विषय।

6. **'कोठारी कमीशन'** ने माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण के लिए इन विषयों पर विशेष बल दिया है—जीव-विज्ञान, गृह विज्ञान, भूगर्भ-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, समाज-सेवा और कार्य-अनुभव।

सन् 1988 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पाठ्यक्रम के मुख्य क्षेत्रों सहित प्रमुख लक्ष्यों एवं सिफारिशों को ध्यान में

रखकर, **"प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम—एक ढाँचा"** संशोधित संस्करण निकाला। इसमें शिक्षा की विषय-वस्तु तथा प्रक्रिया के विभिन्न घटकों को समग्र रूप में तथा माध्यमिक स्तर तक विभिन्न विषय क्षेत्रों का उल्लेख किया है। यह ढाँचा एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा तैयार की गयी विभिन्न विषयों की मार्गदर्शी रूपरेखाओं, पाठ्यक्रमों तथा पाठ्य-पुस्तकों और अन्य शैक्षिक सामग्रियों का आधार है। इस ढाँचे के अनुसार माध्यमिक शिक्षा, जो सामान्य शिक्षा का अन्तिम चरण होता है, की विषय-वस्तु पाठ्यक्रम के निम्नलिखित क्षेत्रों को ध्यान में रखकर तैयार की जायेगी—

1. भाषा (मातृभाषा, हिन्दी, अंग्रेजी),
2. गणित,
3. विज्ञान,
4. सामाजिक विज्ञान (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र),
5. कार्य-अनुभव,
6. कला शिक्षा,
7. स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा,
8. मूल्य आधारित शिक्षा,
9. जनसंख्या शिक्षा,
10. पर्यावरण उन्मुख शिक्षा।

उपर्युक्त पाठ्यक्रम आज की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होगा। छात्र अपने जीवन को समझने में समर्थ हो सकेंगे। साथ ही मूल्यों के ह्रास को रोकने के लिए आगामी जीवन में कदम उठाने में समर्थ हो सकेंगे।

(6) दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली : Defective System of Examination—भारत में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली कितनी दोषपूर्ण है, इसका अनुमान **'राधाकृष्णन् कमीशन'** के अग्रांकित शब्दों से सहज ही लगाया जा सकता है—**"लगभग आधी शताब्दी से परीक्षा को भारतीय शिक्षा का एक निकृष्टतम तत्त्व स्वीकार किया गया है।"**

"For nearly half a century, the examination has been recognized as one of the worst features of Indian Education."

—Radhakrishnan Commission Report, p. 328.

परीक्षा को एक निकृष्टतम तत्त्व समझे जाने का कारण है, उसमें दोषों की प्रचुरता। इन दोषों में सर्वप्रथम दोष यह है कि सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर मेट्रीकुलेशन परीक्षा का अखण्ड आधिपत्य है। प्रत्येक हाई और हायर सेकण्डरी स्कूल की कार्य-क्षमता, प्रत्येक अध्यापक की शिक्षण-दक्षता और प्रत्येक छात्र की बौद्धिक योग्यता की केवल एक ही कसौटी है—परीक्षा। जहाँ तक छात्रों का सम्बन्ध है, यह कसौटी उनके लिए अभिशाप बन गई है, क्योंकि इसने उनमें अपराध की प्रवृत्ति को इतना सबल बना दिया है कि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए किसी भी प्रकार का अनुचित कार्य करने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करते हैं।

'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने परीक्षा के उपर्युक्त दोषों की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकृष्ट किया है। उनका मत है कि बाह्य एवं आन्तरिक, दोनों परीक्षाओं का एकाकी

उद्देश्य—छात्रों की मानसिक एवं साहित्यिक उपलब्धियों की जाँच करना है। वे छात्रों के विकास के अन्य पक्षों की जाँच नहीं करती हैं, और यदि करती हैं, तो अप्रत्यक्ष एवं अविश्वसनीय रूप में। **'आयोग'** ने इसे परीक्षा का अत्यन्त प्राचीन एवं संकुचित कार्य बताया हैं। उनका कहना है कि 20वीं शताब्दी में परीक्षा के अर्थ और विस्तार में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। उसका कार्य केवल छात्रों के मानसिक एवं साहित्यिक विकास की जाँच करना नहीं है, वरन् उसके चतुर्मुखी विकास की भी जाँच करना है।

'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने बलपूर्वक घोषित किया है कि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली द्वारा छात्रों की मानसिक एवं साहित्यिक उपलब्धियों की माप में विश्वसनीयता का अभाव है। इसका कारण यह है कि प्रचलित निबन्धात्मक प्रकार के प्रश्नों के मूल्यांकन में परीक्षक के मनोभावों का मूर्धन्य स्थान है। अतः उसके द्वारा प्रदान किये जाने वाले अंकों को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। इन तर्कों के आधार पर, **'माध्यमिक शिक्षा आयोग'** ने अपने निष्कर्ष को निम्नांकित वाक्य में लेखबद्ध किया है—

"उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय ली जाने वाली परीक्षाएँ हमको विद्यार्थियों की मानसिक उपलब्धियों का भी ठीक मूल्यांकन करने में सहायक नहीं हैं।"

समाधान—परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन : Change in Examination System—'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' द्वारा इंगित किये जाने वाले परीक्षा-प्रणाली के दोषों से चिन्तित होकर, भारत-सरकार ने उनका निवारण करने का निर्णय किया। इस उद्देश्य से, उसने सन् 1958 में 'केन्द्रीय परीक्षा यूनिट' (Central Examination Unit) की नियुक्ति की। इस 'यूनिट' के प्रशिक्षित मूल्यांकन अधिकारियों ने मूल्यांकन की नवीन-धारणा के अनुसार परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन किये जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

मूल्यांकन की नवीन धारणा के अनुसार, मूल्यांकन की विधियाँ ऐसी होनी चाहिए, जिनसे छात्रों के बहुरंगी विकास के सम्बन्ध में पूर्णतया सत्य प्रमाण उपलब्ध हो। यह तभी सम्भव है जब ये विधियाँ—विश्वसनीय, वस्तुपरक एवं व्यावहारिक (Reliable, Objective and Practicable) हों। मूल्यांकन की इस नवीन धारणा की व्याख्या करते हुए, **'कोठारी कमीशन'** ने लिखा है—**'मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली का अभिन्न अंग है एवं शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यह छात्र की अध्ययन की आदतों एवं अध्यापक की शिक्षण-विधियों पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। इस प्रकार, मूल्यांकन न केवल शैक्षिक उपलब्धि के मापन में, अपितु उसमें सुधार करने में भी सहायता देता है।"**

'मुदालियर कमीशन' द्वारा अपने परिपक्व अनुभव एवं **'कोठारी कमीशन'** के मूल्यांकन की नवीन धारणा के आधार पर समकालीन माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1. माध्यमिक शिक्षा के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् केवल एक सार्वजनिक परीक्षा ली जाय।

2. परीक्षा में वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्न पूछे जायें और वे पाठ्यक्रम के अधिक-से-अधिक क्षेत्र पर आधारित किए जायें।

3. आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) को व्यापक बनाकर, उनके द्वारा छात्रों के सभी पक्षों का मूल्यांकन किया जाय।

4. बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं में छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन—अंकों में न किया जाकर; प्रतीकों (Symbols) में किया जाय।

5. बाह्य परीक्षाओं द्वारा छात्रों की उपलब्धियों का अन्तिम मूल्यांकन करते समय, आन्तरिक जाँचों और नियतकालिक जाँचों (Periodical Tests) को उचित महत्त्व दिया जाय।

(7) समस्या—शिक्षण का निम्न स्तर : Low Standard of Teaching—वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक विकट समस्या—शिक्षण का निम्न स्तर है। पिछले कुछ वर्षों से माध्यमिक शिक्षा की संरचना (Pattern) को नवीन स्वरूप प्रदान करने के लिए, उसका पुनर्गठन किया जा रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसके उद्देश्यों, पाठ्य-विधियों एवं कार्यक्रमों में अनेक परिवर्तन किए गये हैं। परिणामतः आज के माध्यमिक स्कूल 10 या 10 वर्ष पहले के माध्यमिक स्कूल नहीं हैं, उनको अनेक नवीन कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं। उनकी सफलता मुख्यतः दो बातों पर निर्भर है—उपयुक्त शिक्षण-विधियाँ एवं उत्साही शिक्षक।

जहाँ तक शिक्षण-विधियों का प्रश्न है, वे सर्वथा अनुपयुक्त हैं। इसका कारण यह है कि प्रचलित शिक्षण-विधियाँ केवल कुछ सीमा तक छात्रों का मानसिक विकास करती हैं। वे निर्जीव, नीरस एवं अमनोवैज्ञानिक होने के कारण न तो छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रतिक्रिया करती हैं और न उनके समस्त गुणों का विकास करने में सहायता देती हैं। जहाँ तक उत्साही शिक्षकों का प्रश्न है, उनकी उपलब्धि की सुदूर भविष्य में भी आशा नहीं है। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए **"माध्यमिक शिक्षा-आयोग"** ने लिखा है—**"हमें इस बात से अत्यधिक दुःख हुआ कि शिक्षकों की सामाजिक स्थिति, वेतन और कार्य की दशाएँ अत्यन्त असन्तोषजनक हैं। वास्तव में, हमारा सामान्य विचार यह है कि समग्र रूप में उनकी स्थिति पहले से बहुत अधिक खराब है।"**

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestion—वर्तमान माध्यमिक स्कूलों में शिक्षण-स्तर को समुन्नत बनाने के लिए दो सुझाव दिए जा सकते हैं—शिक्षण की विधियों एवं शिक्षक स्थिति में सुधार। शिक्षण-विधियों के सुधार के सम्बन्ध में 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने जो सुझाव दिए हैं, वे प्रशंसनीय हैं और उनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

1. शिक्षण-विधियों में 'क्रिया-पद्धति' (Activity Method) एवं 'योजना पद्धति' (Project Method) का प्रमुख स्थान होना चाहिए।

2. शिक्षण-विधियों को छात्रों को व्यक्तिगत प्रयासों से ज्ञान का अर्जन करने और उसे प्रयोग करने का अवसर देना चाहिए।

3. शिक्षण-विधियों को छात्रों में कार्य को प्रेम, कुशलता, ईमानदारी और पूर्ण रूप से करने की शक्तिशाली इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए।

4. शिक्षण-विधियों को छात्रों की वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रति ध्यान देना चाहिए और सभी को प्रगति करने के समान अवसर देने चाहिए।

सारांश में, **'माध्यमिक शिक्षा-आयोग'** ने प्रगतिशील शिक्षण-विधियों (Dynamic Methods of Teaching) का समर्थन किया है। उनका मत है कि ये विधियाँ—सक्रिय एवं स्फूर्तिपूर्ण होने के कारण प्रचलित नीरस एवं निर्जीव विधियों से कहीं अधिक उत्तम हैं।

(8) समस्या—तीन भाषाओं का अध्ययन : Study of Three Languages—सरकार की भाषा-सम्बन्धी नीति ने माध्यमिक शिक्षा में एक अवांछनीय समस्या उपस्थित कर दी है। कुछ सीमा तक इस नीति का सूत्रपात 'मुदालियर अयोग' ने किया। उसने यह सुझाव दिया कि निम्न और उच्च माध्यमिक स्तरों पर छात्रों द्वारा दो भाषाओं का अध्ययन किया जाय। 'कोठारी आयोग' ने इस सुझाव में संशोधन करके, यह विचार प्रकट किया कि निम्न माध्यमिक स्तर पर 3 भाषाओं का और उच्च माध्यमिक स्तर पर 2 भाषाओं का अध्ययन किया जाय। भारत-सरकार ने इन दोनों आयोगों के विचारों के आधार पर 'त्रिभाषा-सूत्र' (Three Language Formula) प्रतिपादित किया है। उसने अपनी 'राष्ट्रीय शिक्षा-नीति' (National Education Policy) में स्पष्ट कर दिया है कि माध्यमिक स्तर पर छात्रों के लिए 3 भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य है। ये भाषाएँ इस प्रकार है[1]—

1. हिन्दी-भाषी राज्यों में—हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा, जिसमें दक्षिण की कोई भाषा होनी चाहिए।

2. अहिन्दी-भाषी राज्यों में—हिन्दी, क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी।

'मुदालियर' और 'कोठारी' आयोगों के अनुसार, माध्यमिक स्तर पर छात्रों को भाषाओं के अतिरिक्त लगभग 7 और विषयों का अध्ययन करना अनिवार्य है। इस प्रकार, 3 भाषाओं सहित कुल विषयों की संख्या लगभग 10 हो जाती है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र साधारणतः 11-17 वय-वर्ग के होते हैं। इस वय-वर्ग के बच्चों के लिए 10 विषयों का पाठ्यक्रम निस्सन्देह रूप से अत्यधिक बोझिल है। अतः उसमें अन्य विषयों के साथ-साथ भाषाओं की संख्या में भी कमी की जानी आवश्यक है।

समाधान—दो भाषाओं का अध्ययन : Study of Two Languages—माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की आयु एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, उचित तो यही जान पड़ता है कि उनके लिए दो भाषाओं का अध्ययन बहुत काफी है। तीन भाषाओं के अध्ययन से दुष्परिणाम हो सकते हैं। या तो वे इनका अधूरा अध्ययन करें, या इनका पूर्ण अध्ययन करने के लिए अन्य विषयों का अधूरा अध्ययन करें। ये दोनों ही बातें स्पष्ट रूप से उसके हित के प्रतिकूल हैं। दो भाषाओं का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से निर्धारित किया जाना चाहिए—

1. हिन्दी-भाषी राज्यों में—हिन्दी और एक आधुनिक भारतीय भाषा।

2. अहिन्दी-भाषी राज्यों में—मातृभाषा और हिन्दी।

हम सरकार के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि 3 भाषाओं में से एक अंग्रेजी होनी चाहिए। हाँ, यदि छात्र चाहें, तो वैकल्पिक विषय के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन

1. *Government Resolution on National Policy of Education*, dated 24th of July, 1968.

कर सकते हैं। हम यह स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी—विश्व की महत्त्वपूर्ण भाषा है, पर हम यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिए अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। सम्भवतः इसकी पृष्ठभूमि में यह धारणा है कि अंग्रेजी का अध्ययन न करने से भारत, औद्योगिक या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पीछे रह जाय। पर यह धारणा निराधार है। रूस, जर्मनी और जापान के उदाहरण हमारे सामने हैं, वहाँ अंग्रेजी का गौण स्थान है फिर भी, ये देश किसी दृष्टि से संसार के किसी भी देश से पीछे नहीं हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को स्थान न दिया जाय और छात्रों के लिए केवल दो भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य बनाया जायेगा। अंग्रेजी के विषय में हमारी यह धारणा महात्मा गाँधी के अग्रांकित विचार पर आधारित है—**"आज अंग्रेजी निस्सन्देह रूप से विश्व की भाषा है। अतः मैं इसे विद्यालय के पाठ्यक्रम में नहीं, वरन् विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में द्वितीय वैकल्पिक भाषा का स्थान दूँगा।"**

"English is today admittedly the world language, I would, therefore accord it a place as second optional language, not in the school but in the university course." —**M. K. Gandhi :** *Basic Education*, p. 112.

(9) समस्या—गैर-सरकारी स्कूलों की अत्यधिक वृद्धि : Immense Increase in Non-Government Schools—गैर-सरकारी माध्यमिक स्कूलों के अन्तर्गत 3 प्रकार के स्कूलों को स्थान दिया गया है; यथा—

1. निकाय स्कूल (Schools Run by Local Boards),
2. स्वसंचालित स्कूल (Schools Run by Private Bodies),
3. अमान्यता-प्राप्त व्यक्तिगत स्कूल (Unrecognized Private Schools)।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में शिक्षा-प्रसार की आड़ में इन तीनों प्रकार के स्कूलों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। हम इनका संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं; यथा—

1. निकाय स्कूल—भारत में नगरपालिकाओं, म्यूनिसिपल बोर्डों और शिक्षा परिषदों द्वारा संचालित किये जाने वाले माध्यमिक स्कूल 12·0 प्रतिशत हैं।[1] इनकी कार्य-कुशलता पर असन्तोष प्रकट करते हुए, **'माध्यमिक शिक्षा-आयोग'** ने लिखा है—**"यद्यपि हम इनकी कार्य-कुशलता के बारे में कोई अनुचित वक्तव्य नहीं देना चाहते हैं, तथापि हमारे पास यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि इन स्कूलों में सुधार करने की अत्यधिक आवश्यकता है।"**

2. स्वसंचालित स्कूल—भारत में ये स्कूल 69·2 प्रतिशत हैं।[2] इनकी दशा, निकाय स्कूलों से कहीं अधिक शोचनीय है। ये जातीय वर्गों, धार्मिक संस्थाओं, राजनीतिक दलों, सेठ-साहूकारों आदि की व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं, इनकी आय के निश्चित साधन हैं। इनमें कार्य करने वाले शिक्षकों को सरकार द्वारा निर्धारित वेतन से कहीं कम वेतन मिलता है

1. *Kothari Commission Report*, p. 250.
2. *Ibid.*

26

शिक्षक-शिक्षा

TEACHER EDUCATION

> "Investment in teacher education can yield very rich dividends, because the financial resources required are small when measured against resulting improvements in the education of millions."
>
> —Kothari Commission Report.

विषय-प्रवेश

भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण संसार में शिक्षण को एक उदात्त व्यवसाय माना गया है। मानव-इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाया है। समस्त युगों के समस्त धार्मिक नेताओं और समाज-सुधारकों ने इस व्यवसाय को अंगीकार करके, इसके गौरव में अभिवृद्धि की है। बुद्ध, ईसा, गाँधी, सुकरात, मुहम्मद, कनफ्यूशियस—ये सभी सच्चे अर्थ में मानव-जाति के शिक्षक थे। उन्होंने अपने समय के सामान्य व्यक्तियों द्वारा जीवन में स्वीकार किये जाने वाले मानदण्डों का साहस और ईमानदारी से विश्लेषण किया और उनको उच्चतर जीवन के आदर्श एवं कल्पना से परिचित कराया। उनकी महानता इस बात में है कि वे अपनी इस कल्पना को साकार बनाने में तन-मन से जुटे रहे और उन्होंने इस कार्य में विलीन होकर, स्वयं अपने व्यक्तित्व की गहराइयों में लोकोत्तर शक्तियाँ खोज निकालीं।

हमारे इस युग के शिक्षक भी इन महात्माओं के चरण-चिन्हों का अनुगमन करके अपने देश एवं राष्ट्र के लिए अधिक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। इसलिए आज के शिक्षक को बालकृष्ण जोशी का परामर्श है—**"शिक्षक को अपने को केवल श्रमजीवी नहीं समझना चाहिए, जिसका कार्य 10 बजे आरम्भ होता है और 4 बजे समाप्त होता है, जब वह अपने पैरों की धूल झाड़कर, जीविका प्रदान करने वाली विद्यालय रूपी फैक्ट्री से बाहर जा सकता है।"**

शिक्षक के उदात्त व्यवसाय के विषय में इन थोड़े-से शब्दों के बाद हम शिक्षक-शिक्षा के उद्‌भव एवं विकास का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिक्षक-शिक्षा का उद्‌भव व विकास

(ORIGIN AND DEVELOPMENT OF TEACHER EDUCATION)

स्वतन्त्र भारत में जिसे 'शिक्षक-शिक्षा' की संज्ञा दी गई है, उसे उससे पूर्व 'शिक्षक-प्रशिक्षण' कहा जाता था। शिक्षक-प्रशिक्षण का उद्‌भव प्राचीन भारत में माना जाता है। उस समय से आज तक इसका विकास 4 अस्पष्ट चरणों में हुआ है; यथा[1]—

1. छात्राध्यापक-पद्धति (Pupil-Teacher System)।
2. शिष्यता-पद्धति (System of Apprenticeship)।
3. शिक्षक-प्रशिक्षण (Teacher Training)।
4. शिक्षक-शिक्षा (Teacher-Education)।

हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत शिक्षक-शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण के उद्‌भव एवं विकास पर विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं।

प्राचीन काल में शिक्षक-प्रशिक्षण

प्राचीन भारत में शिक्षा केवल उच्च वर्गों के व्यक्तियों तक ही सीमित थी। अतः सामान्य रूप से शिक्षकों के पास कम छात्रों का होना स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति में वे अपने छात्रों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देते थे और उनकी सम्पूर्ण शिक्षा उनके शिक्षकों के व्यक्तिगत निर्देशन में होती थी। परन्तु, कुछ-शिक्षकों की ख्याति एवं कुशलता के कारण उनके पास ज्ञानार्जन के लिए इतने अधिक छात्र आते थे कि उनके लिए प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत रूप से निर्देशन करना असम्भव था। अतः वे शिक्षण-कार्य में छात्रों की सहायता एवं सहयोग प्राप्त करते थे। ये छात्र शिक्षण-कार्य किस प्रकार करते थे, इस विषय में **डॉ० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय** ने लिखा है[2]—**"आचार्य या गुरु सबसे ऊपर के वर्गों के छात्रों को पढ़ाते थे। ये विद्यार्थी अपने से निम्न वर्ग के छात्रों को सिखाते थे और वे अपने से नीचे वालों को।"**

उच्च कक्षाओं में अग्रिम छात्रों या नायकों (Monitors) द्वारा निम्न कक्षाओं के छात्रों को शिक्षा देने की यह प्रणाली—'कक्षा-नायकीय पद्धति' (Monitorial System) कहलाती थी। इस-पद्धति में शिक्षा-सिद्धान्त नामक विषय का कोई स्थान नहीं था। किन्तु, जिन नायकों को शिक्षण-कार्य सौंपा जाता था, उनको कुछ समय के पश्चात् शिक्षण-विधियों एवं विद्यालय-संचालन का पर्याप्त व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता था। अतः उन्हें स्वतन्त्र रूप से अध्यापन करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता था।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में शिक्षक-प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं था। इसके विपरीत, उसमें व्यावहारिक शिक्षण (Practical Teaching) की प्रधानता थी और 'करके सीखना' (Learning by Doing) विधि को अपनाया जाता था। प्राचीन भारत में इसी को शिक्षक-प्रशिक्षण का अप्रत्यक्ष आरम्भ माना जाता है।

---

1. S. N. Mukerji : *Education in India Today & Tomorrow*, pp. 362 & 365.
2. **डॉ० श्रीधर मुखोपाध्याय** : भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल), पृ० 41।

मुस्लिम काल में शिक्षक-प्रशिक्षण

भारत में मुस्लिम काल को शैक्षणिक अन्धकार का युग माना जाता था। इस काल में अकबर के अतिरिक्त और किसी भी मुसलमान शासक ने शिक्षा में विशेष रुचि की अभिव्यक्ति नहीं की। लगभग सभी मुस्लिम शासकों के दो प्रमुख उद्देश्य थे—इस्लाम-धर्म का प्रचार करना और हिन्दुओं को मुसलमान बनाना। अतः मुस्लिम काल में शिक्षक-प्रशिक्षण नाम की कोई योजना नहीं थी।

शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रारम्भिक प्रयास

भारत में शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में डेन मिशनरियों ने पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। उन्होंने सन् 1716 में ट्रानक्यूबर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए सर्वप्रथम नॉर्मल स्कूल स्थापित किया, यहाँ के प्रशिक्षित शिक्षकों को प्राथमिक विद्यालयों में नियुक्त किया जाता था। तदुपरान्त, उन्होंने सन् 1793 में सीरामपुर में एक और नॉर्मल स्कूल की स्थापना की। उनके उत्कृष्ट उदाहरण से प्रभावित होकर मद्रास, बम्बई और कलकत्ता की 'शिक्षा-परिषदों' (Educational Societies) ने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षण-संस्थाओं का निर्माण किया। इन प्रशिक्षण-संस्थाओं और डेन मिशनरियों के नॉर्मल स्कूलों में प्राचीन काल से चली आने वाली कम खर्चीली 'छात्राध्यापक पद्धति' (Pupil-Teacher System) का प्रयोग किया जाता था।

इस पद्धति के अनेक नामकरण हुए हैं, यथा—मद्रास-पद्धति, मॉनीटर-पद्धति, लेकास्ट्रियन पद्धति, ग्लासगो पद्धति, पेस्टालॉजी पद्धति इत्यादि। यह पद्धति कम खर्चीली होने के साथ-साथ अल्प समय में शिक्षकों के अभाव की पूर्ति के लिए अमोघ औषधि थी। यह पद्धति—भारत में चिरकाल से प्रचलित 'कक्षा-नायकीय पद्धति' ही का परिमार्जित एव रूपान्तरित स्वरूप थी। अतः हम कह सकते हैं कि भारत ने विश्व के अनेक देशों को शिक्षण-प्रशिक्षण की प्रथम विधि प्रदान की।

ब्रिटिश-काल में शिक्षक-प्रशिक्षण, 1801-1882

ब्रिटिश-काल में सन् 1801 से 1882 तक गैर-सरकारी संगठनों ने शिक्षक प्रशिक्षण के लिए श्लाघनीय कार्य किया। परन्तु उनका यह कार्य—प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण तक ही सीमित था।

सन् 1815 में बम्बई की 'देशी शिक्षा-परिषद्' (Native Education Society) ने 24 शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया और उनको प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रान्त के विभिन्न भागों में प्रबन्धकों (Organisers) के रूप में भेजा।

सन् 1819 से बंगाल में 'कलकत्ता-विद्यालय-परिषद्' (Calcutta School Society) का निर्माण हुआ। इस 'परिषद्' ने छात्राध्यापक-पद्धति के अनुसार शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ किया। सन् 1825 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने इस 'परिषद्' के कार्य को बल-प्रदान करने के लिए 500 रु० मासिक सहायता-अनुदान देने की घोषणा की।

सन् 1826 में मद्रास के गवर्नर, सर टॉमस मुनरो (Sir Thomas Munro) के प्रस्ताव के अनुसार, मद्रास नगर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये 'केन्द्रीय स्कूल' (Central School) की स्थापना की।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी शिक्षकों के प्रशिक्षण की दिशा में कुछ कदम उठाए। उदाहरणार्थ—बम्बई में शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए 'नार्मल स्कूल' स्थापित किया गया और अगले 10 वर्षों में बंगाल के विभिन्न भागों में नॉर्मल स्कूलों का शिलान्यास किया गया। उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में आगरा, मेरठ और बनारस में क्रमशः सन् 1852, 1856 और 1857 में नॉर्मल स्कूलों की स्थापना की गई।

सन् 1854 के 'वुड के आदेश-पत्र' (Wood's Despatch) ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक प्रान्त में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए ट्रेनिंग स्कूलों और कक्षाओं का शीघ्र ही शिलान्यास किया जाय। 'आदेश-पत्र' में कम्पनी के संचालकों ने यह इच्छा व्यक्त की कि छात्रों को प्रशिक्षण-काल में छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को उत्तम वेतन देकर, शिक्षा के व्यवसाय को आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाय।[1]

लार्ड स्टैनले ने अपने 'आदेश-पत्र' में शिक्षक-प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार करने और प्रशिक्षण-संस्थाओं को सहायता-अनुदान दिए जाने का आदेश दिया। अतः उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार करने में अदम्य उत्साह का परिचय दिया। फलस्वरूप, सन् 1881-82 तक सम्पूर्ण देश में 106 नॉर्मल स्कूलों की स्थापना हो गई। इन स्कूलों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों की संख्या 3,886 थी और इनका वार्षिक व्यय लगभग 4 लाख रुपये था।[2]

इन प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्रों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रारम्भ में 'कक्षा-नायकीय पद्धति' अथवा 'छात्राध्यापक-पद्धति' (Pupil-Teacher System) का प्रयोग किया। किन्तु, कुछ समय के पश्चात् 'शिष्यता-पद्धति' (System of Apprenticeship) का अनुसरण किया जाने लगा। इस पद्धति में छात्र को एक निश्चित अवधि के लिए किसी अनुभवी शिक्षक का शिष्य बना दिया जाता था। बम्बई प्रान्त में यह अवधि 3 वर्ष की थी और इस अवधि में प्रत्येक छात्र को 3 रु० से 5 रु० तक मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी। इस अवधि में शिक्षण का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् छात्रों को कुछ समय तक 'जिला ट्रेनिंग कॉलेज' (District Training College) में प्रशिक्षण दिया जाता था। उसके पश्चात् ही उनको पूर्ण रूप से प्रशिक्षित माना जाता था और उनको प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों के रूप में नियुक्त होने का अधिकार प्राप्त हो जाता था।

जहाँ तक माध्यमिक स्कूलों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण का सम्बन्ध था, इस ओर अति अल्प ध्यान दिया गया। सन् 1882 तक सम्पूर्ण देश में केवल दो प्रशिक्षण संस्थाओं का शिलान्यास हुआ—सन् 1856 में मद्रास में 'गवर्नमेण्ट नॉर्मल स्कूल' का और सन् 1877 में 'लाहौर ट्रेनिंग स्कूल' का। इन संस्थाओं में स्नातकों और उपस्नातकों—दोनों को एक ही कक्षा में प्रवेश दिया जाता था। इनमें प्रदान किया जाने वाला प्रशिक्षण निम्न कोटि का था, क्योंकि छात्राध्यापकों को शिक्षण के अभ्यास एवं सिद्धान्तों से अवगत नहीं कराया जाता था। कुछ समय के उपरान्त मद्रास के नॉर्मल स्कूल में प्रशिक्षण के अभ्यास का प्रबन्ध कर दिया गया था।[3]

---

1. *Wood's Despatch*, Para 67.
2. *Hunter Commission Report*, Para 134.
3. *Stanley's Despatch*, para 23.

ब्रिटिश-काल में शिक्षक-प्रशिक्षण, 1882-1947

(1). हण्टर कमीशन, 1882—'हण्टर कमीशन' अथवा 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ने प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिए[1]—

1. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए नॉर्मल स्कूलों की स्थापना इस प्रकार की जाय कि वे सम्पूर्ण देश के प्राथमिक विद्यालयों की माँग की पूर्ति कर सकें।

2. प्रत्येक विद्यालय-निरीक्षक के क्षेत्र में कम-से-कम एक नॉर्मल स्कूल का निर्माण किया जाय।

3. नॉर्मल स्कूलों को सफल बनाने के लिए, विद्यालय-निरीक्षकों द्वारा उनमें रुचि ली जाय और उनके कुशल संचालन का प्रबन्ध किया जाय।

4. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए ट्रेनिंग स्कूलों और ट्रेनिंग कॉलेजों की स्थापना इस प्रकार की जाय कि वे सम्पूर्ण देश में फैल जाएँ।

5. स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण एवं पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाय।

'हण्टर कमीशन' के सुझावों के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अन्त तक 133 नॉर्मल स्कूलों, 50 ट्रेनिंग स्कूलों और 6 ट्रेनिंग कॉलेजों (मद्रास, लाहौर, कुरसांग, जबलपुर, इलाहाबाद और राजमुन्दरी) की स्थापना की गई।[2]

(2) शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, 1904—इस 'प्रस्ताव' ने शिक्षक-प्रशिक्षण के समस्त पक्षों की समुचित व्यवस्था पर बल दिया और निम्नांकित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया[3]—

1. भारतीय शिक्षा-सेवा (Indian Education Service) में योग्य, अनुभवी एवं उच्च प्रशिक्षण-प्राप्त व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जाय।

2. माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाले ट्रेनिंग कॉलेजों की साज-सज्जा को कला-महाविद्यालयों (Art Colleges) की साज-सज्जा से कम महत्त्व न दिया जाय।

3. स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए प्रशिक्षण की अवधि क्रमशः 1 वर्ष और 2 वर्ष निश्चित की जाय।

4. प्रशिक्षण के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

5. प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज से एक उत्तम 'अभ्यासात्मक स्कूल' (Practising School) सम्बद्ध किया जाय।

6. ट्रेनिंग कॉलेजों और माध्यमिक स्कूलों में सम्बन्ध स्थापित किया जाय, ताकि प्रशिक्षित शिक्षक सीखी हुई विधियों का व्यावहारिक प्रयोग कर सकें।

1. *Hunter Commission Report*, paras 2 & 3.
2. **S. N. Mukerji** : *Op cit.*, p. 368.
3. *Government Resolution on Education Policy* 1904, para 39.

उपरिवर्णित सिद्धान्तों ने शिक्षक-प्रशिक्षण आन्दोलन में नवीन शक्ति का संचार कर दिया और उनको मूर्त रूप दिये जाने पर चार महत्त्वपूर्ण परिणाम दृष्टिगोचर हुए—(1) प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि, (2) स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए पृथक पाठ्यक्रमों का आयोजन, (3) स्नातकों एवं उपस्नातकों के प्रशिक्षण के लिए क्रमशः 1 वर्ष और 2 वर्ष का कार्यक्रम और (4) प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से अभ्यासात्मक स्कूल की संलग्नता।

(3) लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति—विद्या-प्रेमी लार्ड कर्जन ने शिक्षा के प्रसार के लिए प्रान्तीय सरकारों को सहायता-अनुदान देने की प्रथा आरम्भ की। इस प्रथा के फलस्वरूप 5 वर्ष की अवधि में ट्रेनिंग कॉलेजों का शिलान्यास हुआ; यथा—(1) एस० टी० कॉलेज, बम्बई, 1906, (2) डेविड हेयर ट्रेनिंग कॉलेज, कलकत्ता, 1908, (3) पटना ट्रेनिंग कॉलेज, 1908, (4) ढाका ट्रेनिंग कॉलेज, 1910, और (5) स्पेन्स ट्रेनिंग कॉलेज, जबलपुर, 1911।

(4) शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव 1913—इस 'प्रस्ताव' ने अग्रांकित नीति निर्धारण करके, शिक्षक-प्रशिक्षण के विकास में अतिशय योग दिया—**"शिक्षा की आधुनिक प्रणाली में किसी भी शिक्षक को उस समय तक शिक्षण-कार्य करने की अनुमति प्रदान न की जाय, जब तक कि उसके पास तत्सम्बन्धी प्रमाण-पत्र न हों।"**

(5) सैडलर कमीशन, 1919—'सैडलर कमीशन' अथवा 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' ने शिक्षक-प्रशिक्षण के विषय में निम्नलिखित सुझाव देकर, उसकी विकास-प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की—

1. प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाए।
2. प्रशिक्षित-सम्बन्धी शोध-कार्य की व्यवस्था की जाए।
3. प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षा-विभाग की स्थापना की जाय।
4. इण्टर और बी० ए० के पाठ्यक्रमों में शिक्षा विषय को सम्मिलित किया जाय।
5. प्रयोगात्मक कार्य के लिए प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज से 'प्रदर्शन-स्कूल' (Demonstration School) सम्बद्ध किया जाय।

(6) हर्टाग समिति, 1929—इस 'समिति' ने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण में सुधार करने के लिए अनेक उपयोगी सुझाव दिए; यथा—

1. शिक्षकों की सामान्य शिक्षा के स्तर का उन्नयन किया जाय।
2. शिक्षक-प्रशिक्षण की अवधि में वृद्धि की जाय।
3. प्रशिक्षण-संस्थाओं में योग्य एवं कुशल शिक्षकों की नियुक्ति की जाय और उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि की जाय।
4. विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों के लिए शिक्षा-सम्मेलनों एवं अभिनवन पाठ्यक्रमों के कार्यक्रम आरम्भ किए जाएँ।
5. योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-कार्य के प्रति आकर्षित करने के लिए, शिक्षकों की कार्य करने की दशाओं में सुधार किया जाय।

उपरिलिखित आयोगों, प्रस्तावों और समिति के सुझावों के परिणामस्वरूप शिक्षक-प्रशिक्षण की दशा एवं सुविधाओं में क्रमशः उन्नति होती चली गई। सन् 1947 में अर्थात् स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में तीन प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ थीं; यथा—

(1) **नॉर्मल स्कूल : Normal School**—इनमें प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की थी और मिडिल पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में पुरुष एवं महिला नॉर्मल स्कूलों की संख्या क्रमश. 346 एवं 236 थी और उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों एवं छात्राओं की संख्या क्रमशः 22,435 एवं 8,896 थी।[1]

(2) **माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालय : Secondary Training Schools**—इनमें मिडिल स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 या 2 वर्ष की थी और हाईस्कूल एवं इण्टर पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में ट्रेनिंग स्कूलों एवं उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः 649 एवं 38,773 थी।[2]

(3) **प्रशिक्षण महाविद्यालय : Training Colleges**—इनमें हाईस्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की थी और स्नातकों एवं परस्नातकों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में ट्रेनिंग कॉलेजों एवं उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः 15 एवं 3,262 थी।[3]

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से भारतीय शिक्षा अपने विस्तार के मार्ग पर अति द्रुत गति से अग्रसर हो रही है। फलस्वरूप, शिक्षा के अनेक क्षेत्रों के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। सम्भवतः इसीलिए हमारे देश की शिक्षा की पुनर्रचना में शिक्षक-प्रशिक्षण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। उसकी कमियों और गुणात्मक उन्नति के उपायों को इंगित करने के लिए शिक्षा-आयोगों की नियुक्ति की गई है, उसे सफल एवं सार्थक बनाने के लिए विविध कार्यक्रमों का समारम्भ किया गया है, और उसकी धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया है।

शिक्षक-शिक्षा की नवीन धारणा

(New Concept of Teacher Education)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश के शिक्षाशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों ने 'शिक्षक-प्रशिक्षण' को नवीन रूप प्रदान करके, उसको अधिक व्यापक बनाया और उसको 'शिक्षक-शिक्षा' (Teacher-Education) का नया जामा पहनाया।

'शिक्षक-शिक्षा' की इस नवीन धारणा के निर्माण मे निम्नलिखित कारकों ने विशेष योग दिया[4]—

1. अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा-महारथी किलपैट्रिक के अनुसार—**"सर्कस में काम करने वाले नटों और पशुओं को प्रशिक्षण दिया जाता है, पर शिक्षकों को शिक्षा दी जाती है।"**

1. डॉ० महेशचन्द्र सिंघल : भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, पृ० 240।
2. NCERT: *Indian Year-Book of Education*, 1964.
3. NCERT : *The Second National Survey of Secondary Teacher Education in India*, p. 14.
4. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 371.

2. स्वतन्त्रता से पूर्व प्रशिक्षण द्वारा शिक्षण में जिन धारणाओं और व्यवहार के प्रतिमानों का निर्माण किया जाता था, उनकी उपयोगिता—स्वतन्त्र भारत के लिए नष्ट हो गई थी।

3. शिक्षक-प्रशिक्षण की धारणा में परिवर्तन करके ही उसे भारत की जनतन्त्रीय मान्यताओं के अनुकूल बनाया जा सकता था।

4. स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा के दार्शनिक एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों का निर्माण, भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा, न कि विदेशियों द्वारा किया जा रहा था। अतः इसकी धारणा में परिवर्तन किया जाना आवश्यक था।

5. स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार करने के लिए प्रशिक्षण में सुधार किया जाना अनिवार्य था। अतः शिक्षक को प्रशिक्षण देने के बजाय उस शिक्षा देने की आवश्यकता थी।

6. बेसिक शिक्षा की नवीन विचारधारा के अनुसार, शिक्षक को छात्रों एवं समुदाय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। अतः शिक्षक को प्रशिक्षण के बजाय शिक्षा दी जानी आवश्यक है।

7. शिक्षक-प्रशिक्षण की विचारधारा में सम्पूर्ण जगत् में अति तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। इस विचारधारा के अनुसार, शिक्षक-प्रशिक्षण की तुलना में शिक्षक-शिक्षा अधिक व्यापक है।

8. शिक्षक-शिक्षा—जीवन के सब क्षेत्रों को प्रभावित करती है एवं बालकों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित है। अतः केवल कला-शिक्षण का प्रशिक्षण—शिक्षक को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार नहीं कर सकता है।

9. **'राधाकृष्णन् कमीशन'** ने शिक्षक-प्रशिक्षण की धारणा में यह कहकर परिवर्तन करने की आवश्यकता पर बल दिया—**"सच्ची शिक्षा केवल कुछ पाठों को पढ़ना और स्मरण करना ही नहीं है, वरन् जीवनयापन एवं उद्देश्यपूर्ण कार्यों में भाग लेना भी है।"**

भारत में प्रचलित प्रशिक्षण-संस्थाएँ

(Training Institutions Prevelent in India)

डॉ० एस० एन० मुकर्जी के अनुसार[1]—मोटे तौर पर इस समय हमारे देश में निम्नलिखित प्रकार की शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं—

1. पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण-सस्थाएँ (Pre-Primary Training Institutions)।
2. नॉर्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण-विद्यालय (Normal or Primary Training Schools)।
3. उपस्नातकों के लिए माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालय (Secondary Training Schools for Undergraduates)।
4. स्नातकों के प्रशिक्षण-महाविद्यालय (Training Colleges for Graduates)।
5. शिक्षा के प्रादेशिक कॉलेज (Regional Colleges of Education)।
6. शिक्षा के राज्य-संस्थान (State Institutes of Education)।
7. पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्र (Correspondence Course Centres)।
8. विशेषज्ञ प्रशिक्षण-केन्द्र (Training Centres for Specialists)।

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 372.

1. पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण-संस्थाएँ—इनमें पूर्व-प्राथमिक बच्चों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की है, पर गुजरात और महाराष्ट्र ऐसे कुछ राज्यों में 2 वर्ष की है। इनमें हाईस्कूल और अपर प्राइमरी पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता है।

पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम हैं; यथा—नर्सरी, मॉण्टेसरी, किण्डरगार्टन, पूर्व-बेसिक, हेपी एजूकेशन आदि। हमारे देश में यह प्रशिक्षण अभी अपनी शैशवावस्था में है। इसीलिए, इस प्रशिक्षण की संस्थाओं की संख्या अत्यन्त अल्प है। ये संस्थाएँ दो प्रकार की हैं—राजकीय और स्वसंचालित (Private)। अधिकांश संस्थाएँ स्वसंचालित हैं और उनको राज्यों से सहायता-अनुदान प्राप्त होता है।

2. नॉर्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण-विद्यालय—इनमें प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें सह-शिक्षा प्रचलित नहीं है। अतः पुरुषों और स्त्रियों के लिए पृथक् प्रशिक्षण-संस्थाएँ हैं। ये संस्थाएँ—राज्य-सरकारों, स्थानीय बोर्डों, व्यक्तिगत प्रबन्धकों आदि के द्वारा संचालित की जाती हैं।

इस समय भारत में 2 प्रकार के प्राथमिक विद्यालय हैं—बुनियादी और गैर-बुनियादी। इसलिए, इन विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए दो प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ भी हैं—

1. नॉर्मल स्कूल—इनमें हाईस्कूल पास छात्रों को गैर-बुनियादी स्कूलों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है और प्रशिक्षण के पश्चात् उनको 'सीनियर टीचर्स सर्टिफिकेट' प्रदान किया जाता है।

2. बेसिक ट्रेनिंग स्कूल—इनमें अपर प्राइमरी छात्रों को बुनियादी स्कूलों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है और प्रशिक्षण के पश्चात् उनको 'बेसिक टीचर्स सर्टिफिकेट' प्रदान किया जाता है।

दोनों प्रकार की संस्थाओं में प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की है।

3. उपस्नातकों के लिए माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालय—इनमें मिडिल स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें प्रशिक्षण की अवधि कुछ राज्यों में 1 वर्ष की और कुछ में 2 वर्ष की है। इनमें उपस्नातकों अर्थात् हाईस्कूल एवं इण्टर पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता है।

माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सफल छात्रों को विश्वविद्यालयों या राज्य के शिक्षा-विभागों द्वारा सर्टिफिकेट या डिप्लोमा दिए जाते हैं, जिनके विभिन्न राज्यों में विभिन्न नाम हैं। उदाहरणार्थ—बड़ौदा, बम्बई, गुजरात, कर्नाटक और पूना विश्वविद्यालय 1 वर्ष के प्रशिक्षण के 'T. D.' (Teachers Diploma) देते हैं। सागर, नागपुर और जबलपुर विश्वविद्यालय 2 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद 'Dip. T' (Diploma of Teaching) देते हैं। उड़ीसा राज्य का शिक्षा विभाग 2 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद 'C. T.' (Certificate of Teaching) देता है। महाराष्ट्र राज्य का शिक्षा-विभाग 1 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद 'S.T.C.' (Secondary Teaching Certificate) देता है।

4. स्नातकों के लिए प्रशिक्षण-महाविद्यालय—इनमें हाईस्कूलों और हायर सेकण्डरी स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की

है और स्नातकों एवं परास्नातकों को प्रवेश दिया जाता है। इनमें सहशिक्षा प्रचलित है, किन्तु पुरुषों एवं महिलाओं के लिए पृथक् प्रशिक्षण-संस्थाएँ भी हैं। इनमें अध्ययन करने वाले छात्राध्यापकों को बी० टी० या बी० एड० की उपाधि, डिप० ए० का डिप्लोमा या एल० टी० का प्रमाण-पत्र दिया जाता है। इनका संचालन—राज्यों के शिक्षा-विभागों या विश्वविद्यालयों द्वारा किया जाता है। कुछ प्रशिक्षण-महाविद्यालय स्वतन्त्र इकाइयाँ हैं और कुछ प्रशिक्षण कक्षाएँ—कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत शिक्षा-विभाग हैं।

5. शिक्षा के प्रादेशिक कॉलेज—'मुदालियर कमीशन' का एक सुझाव यह था कि कृषि, वाणिज्य, गृह-विज्ञान, ललित कलाओं आदि की शिक्षा के लिए बहुउद्देशीय विद्यालयों (Multipurpose Schools) की स्थापना की जाय। परम्परागत प्रशिक्षण-कॉलेजों द्वारा इन विषयों की शिक्षा देने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता था। यह अनुभव करके भारत-सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय ने बहुउद्देशीय विद्यालयों के शिक्षकों को व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक विषयों (Practical or Scientific Subjects) में प्रशिक्षण देने के लिए जुलाई, 1963 में प्रादेशिक शिक्षा-महाविद्यालयों (Regional College of Education) की स्थापना की। इन रीजनल कॉलेजों की स्थितियाँ एवं प्रादेशिक सीमाएँ इस प्रकार हैं—

(i) **रीजनल कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन, भोपाल**—यह कॉलेज पश्चिमी प्रदेश, अर्थात् गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के लिए है।

(ii) **रीजनल कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन, मैसूर**—यह कॉलेज दक्षिणी प्रदेश अर्थात् मद्रास, केरल, मैसूर और आन्ध्र प्रदेश के लिए है।

(iii) **रीजनल कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन, भुवनेश्वर**—यह कॉलेज पूर्वी प्रदेश, अर्थात् नेफा, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मनीपुर और पश्चिमी बंगाल के लिए है।

(iv) **रीजनल कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन, अजमेर**—यह कॉलेज उत्तरी प्रदेश, अर्थात् दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, जम्मू व काश्मीर, उत्तर-प्रदेश और हिमाचल प्रदेश के लिए है।

रीजनल कॉलेजों के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. बहु-उद्देशीय स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना।

2. शिक्षण की प्रचलित विधियों में सुधार करना, नवीन विधियों को खोजना और उनको क्रियान्वित करना।

3. प्रसार-सेवाओं (Extension Services) के लिए प्रादेशिक केन्द्रों के रूप में कार्य करना।

4. एक "आदर्श-प्रदर्शन बहु-उद्देशीय विद्यालय" (Model Demonstration Multi-purpose school) का संगठन एवं विकास करना।

5. कृषि, शिल्प (Craft), विज्ञान, वाणिज्य, गृह-विज्ञान और ललितकलाओं की शिक्षा देने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना।

6. बहु-उद्देशीय स्कूलों में कार्य करने वाले व्यावहारिक विषयों (Practical Subjects) के शिक्षकों के लिए 'सेवाकालीन शिक्षा' (In-Service Education) की व्यवस्था करना।

7. अपने क्षेत्र में स्थित बहु-उद्देशीय स्कूलों से सम्बन्धित शिक्षकों, प्रशासकों एवं सुपरवाइजरों के लिए 'सेवाकालीन शिक्षा' एवं 'क्षेत्रीय कार्य' (Field Work) की व्यवस्था करना।

रीजनल कॉलेजों के कार्यक्रम अथवा पाठ्यक्रम (Courses) निम्नलिखित हैं—

1. सेवाकालीन शिक्षा का अल्पकालीन कोर्स।
2. बी० एड० का ग्रीष्मकालीन एवं पत्राचार-कोर्स।
3. विज्ञान के शिक्षकों के लिए 4 वर्ष का कोर्स।
4. प्रौद्योगिकी (Technology) के शिक्षकों के लिए 4 वर्ष का कोर्स।
5. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के बाद शिक्षा में 4 वर्ष का एकीकृत (Integrated) कोर्स।[1]
6. शिल्प-अध्यापकों (Craft Teachers) के लिए निम्नलिखित 3 प्रकार के विशेष कार्य—(i) 1 वर्ष का डिप्लोमा कोर्स, (ii) 2 वर्ष का डिप्लोमा कोर्स, (iii) 2 वर्ष का डिग्री कोर्स।
7. निम्नलिखित में से प्रत्येक में 1 वर्ष का कोर्स—(i) कृषि, (ii) विज्ञान, (iii) वाणिज्य, (iv) प्रौद्योगिकी, (v) ललितकलाएँ (केवल भोपाल और भुवनेश्वर के कॉलेजों में), और (vi) गृह-विज्ञान (केवल मैसूर और अजमेर के कॉलेजों में)।

6. शिक्षा के राज्य संस्थान—'तीसरी पंचवर्षीय योजना' में भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य और दिल्ली में 'शिक्षा के राज्य-संस्थान' की स्थापना की गई। इन संस्थाओं के व्यय का पूर्ण भार—भारतीय शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा वहन किया जाता है। इन संस्थाओं के 5 मुख्य कार्य हैं—(i) शिक्षा का विस्तार करना, (ii) पुस्तकों का प्रकाशन करना, (iii) शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, (iv) शिक्षा-सम्बन्धी शोधकार्य करना और (v) क्षेत्रीय कार्य करना।[2]

'प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के अध्ययन दल' ने सुझाव दिया है कि शिक्षा के राज्य-संस्थानों को निम्नलिखित कार्यों का भार भी सौंपा जाना चाहिए[3]—

1. प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित निरीक्षकों और शिक्षकों को शिक्षा देने वाले अध्यापकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
2. प्राथमिक विद्यालयों से सम्बन्धित शिक्षा की समस्याओं की खोज करना, शिक्षण-विधियों के विषय में अनुसन्धान करना और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में शोधकार्य करना।
3. बुनियादी और गैर-बुनियादी प्राथमिक प्रशिक्षण-संस्थाओं के कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन करना।

1. 'शिक्षा में चार-वर्षीय डिग्री कोर्स' (Four-Year Degree Course in Education) सर्वप्रथम पंजाब राज्य के कुरुक्षेत्र, विश्वविद्यालय में सन् 1960 में आरम्भ किया गया था।
2. **S. N. Mukerji** : *op. cit.*, p. 377.
3. *Report of the Study Group on the Training of Elementary Teachers in India*, p. 37.

7. पत्राचार पाठ्यक्रम-केन्द्र—हमारे देश के शिक्षक-प्रशिक्षण से सम्बन्धित एक अत्यन्त दुष्कर समस्या—विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों की है।

इन अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विभिन्न राज्यों में विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा रहा है; यथा—आन्ध्र में बी० एड० का 5 माह का और मद्रास में 4 माह का संक्षिप्त पाठ्यक्रम, जोधपुर विश्वविद्यालय में 2 ग्रीष्मकालीन अवकाशों का पाठ्यक्रम और उत्तर-प्रदेश में 3 मास का सेवाकालीन-प्रशिक्षण।

उपर्युक्त विधियों में से किसी ने भी अप्रशिक्षित शिक्षकों की समस्या का समाधान नहीं किया है। इस तथ्य से अवगत होने के कारण भारत-सरकार ने 'पत्राचार-विद्यालयों एवं पाठ्यक्रमों' की योजना का निर्माण किया और सन् 1962 में दिल्ली में 'पत्राचार-पाठ्यक्रम-निदेशालय' (Directorate of Correspondence Courses) की सृष्टि की।

इस 'निदेशालय' के परामर्श को स्वीकार करके, सन् 1965 में माध्यमिक स्कूलों में सेवारत अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए 5 स्थानों पर 'पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्रों' की स्थापना की गई—दिल्ली का 'सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन' और मैसूर, भोपाल, अजमेर तथा भुवनेश्वर के शिक्षा के रीजनल कॉलेज। इनके अतिरिक्त इस समय 20 से अधिक विश्वविद्यालयों में बी० एड० के लिए पत्राचार-पाठ्यक्रम चल रहे हैं। साथ ही एम० डी० विश्वविद्यालय, रोहतक तथा कोटा ओपन यूनीवर्सिटी, कोटा 45 हजार से अधिक छात्रों को पत्राचार-पाठ्यक्रम के माध्यम से बी० एड० के लिए तैयार कर रही है। इन स्थानों पर आरम्भ किए जाने वाले पत्राचार-पाठ्यक्रमों की मुख्य विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं[1]—

1. पत्राचार कोर्स की अवधि साधारण प्रशिक्षण की अवधि से अधिक है। साधारण प्रशिक्षण की अवधि लगभग 10 माह की है। किन्तु, पत्राचार कोर्स की अवधि रीजनल कॉलेजों में 14 माह की और सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन में 16 माह की है।
2. पत्राचार-कोर्स का लाभ, विद्यालयों में कार्य करने वाले वही शिक्षक उठा सकते हैं, जो स्नातक एवं परस्नातक हों और जिनको शिक्षण का अनुभव हो। रीजनल कॉलेजों के कोर्स के लिए अनुभव की अवधि 5 वर्ष की है और सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन के कोर्स के लिए 3 वर्ष की है।
3. पत्राचार-कोर्स समाप्त करने वाले शिक्षकों को बी० एड० की उपाधि प्रदान की जाती है।
4. पत्राचार-कोर्सों और ट्रेनिंग कॉलेजों के कोर्सों में कोई अन्तर नहीं है।
5. प्रशिक्षण-काल में शिक्षकों को कुछ समय 'पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्रों' में व्यतीत करना पड़ता है। समय की यह अवधि—रीजनल कॉलेजों में दो ग्रीष्मकालीन अवकाशों में 6-6 सप्ताह और केन्द्रीय शिक्षा-संस्थान (Central Institute of Education) में एक ग्रीष्मकालीन अवकाश में 8 सप्ताह की है।
6. उक्त अवधि में शिक्षकों को प्रशिक्षण से सम्बन्धित विभिन्न कार्य करने पड़ते हैं; यथा—शिल्प-कार्य, शारीरिक शिक्षा, ट्यूटोरियल कार्य, वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का प्रयोग, श्रव्य-दृश्य-सामग्री का प्रयोग, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में भाग आदि।

1. **S. N. Mukerji** : *op. cit.*, p. 385-86.

प्राथमिक विद्यालयों के अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए पत्राचार-पाठ्यक्रम की योजना तैयार हो चुकी है। इसे लगभग सभी राज्यों ने स्वीकार कर लिया है। राजस्थान के 'राज्य-शिक्षा-संस्थान' ने इस योजना के अनुसार कार्य करना भी आरम्भ कर दिया है।

8. विशेषज्ञ-प्रशिक्षण-केन्द्र—इन केन्द्रों का उद्देश्य—व्यक्तियों को विशेष विषयों में प्रशिक्षण देना है। इस समय भारत में निम्नांकित विषयों के प्रशिक्षण-केन्द्र हैं—(1) शारीरिक शिक्षा, (2) ललित कलाओं की शिक्षा, (3) गृह-विज्ञान की शिक्षा, (4) शिल्प की शिक्षा, (5) भाषा-अध्यापकों की शिक्षा, और (6) विज्ञान की शिक्षा। हम इनमें से कुछ मुख्य विषयों के प्रशिक्षण-केन्द्रों का विवरण उपस्थित कर रहे हैं; यथा—

(i) शारीरिक शिक्षा : Physical Education—यह शिक्षा स्नातक और स्नातकोत्तर दोनों स्तरों पर दी जाती है। दोनों स्तरों पर इस शिक्षा की अवधि 1 वर्ष की है। इस समय भारत में शारीरिक शिक्षा के 55 प्रशिक्षण-केन्द्र हैं, जिनमें से मुख्य हैं—(1) गवर्नमेण्ट कॉलेज ऑफ फिजिकल एजूकेशन, पटियाला और (2) लक्ष्मीबाई कॉलेज ऑफ फिजिकल एजूकेशन, ग्वालियर।

(ii) ललित कलाओं की शिक्षा : Aesthetic Education—इन कलाओं की प्रशिक्षण देने वाली मुख्य संस्थाएँ हैं—(1) कला-क्षेत्र अडयार (मद्रास)—नृत्य, (2) टीचर्स कॉलेज ऑफ म्यूजिक, मद्रास—संगीत; (3) बड़ौदा विश्वविद्यालय—संगीत व चित्रकला, (4) सर जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स, बम्बई—ड्राइंग; (5) गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्ट्स, लखनऊ—कला; (6) विश्वभारती, शान्ति-निकेतन—नृत्य, संगीत व चित्रकला, और (7) इन्स्टीट्यूट ऑफ आर्ट्स एजूकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली—कला शिल्प।

(iii) गृह-विज्ञान : Home Science—गृह-विज्ञान के प्रशिक्षण की व्यवस्था महिलाओं के लिए है। इसके मुख्य प्रशिक्षण-केन्द्र हैं—(1) बड़ौदा विश्वविद्यालय; (2) लेडी इरविन कॉलेज, दिल्ली; (3) शिक्षा के चारों रीजनल कॉलेज; (4) डोमेस्टिक साइंस ट्रेनिंग कॉलेज, हैदराबाद; (5) एस० एन० डी० टी० वीमेन्स यूनीवर्सिटी बम्बई; और (6) गवर्नमेण्ट कॉलेज ऑफ होम साइन्स फॉर वीमेन, इलाहाबाद।

(iv) भाषा अध्यापकों की शिक्षा : Education of Language Teacher—भाषा-अध्यापकों को विभिन्न भाषाओं में प्रशिक्षण देने के लिए देश के विभिन्न स्थानों में केन्द्र की स्थापना की है। अंग्रेजी की शिक्षा के लिए विभिन्न राज्यों में 11 संस्थाएँ हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हैदराबाद का 'सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ इंगलिश' है। हिन्दी की शिक्षा के लिए हिन्दी और अहिन्दी—दोनों क्षेत्रों में 26 संस्थान हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध आगरा का 'केन्द्रीय हिन्दी संस्थान' है। इसी प्रकार, देश के विभिन्न स्थानों में उर्दू, अरबी, तमिल, कन्नड, संस्कृत, मलयालम आदि भाषाओं में प्रशिक्षण देने के केन्द्र हैं।

शिक्षा आयोग व शिक्षक-शिक्षा

(EDUCATION COMMISSIONS AND TEACHER EDUCATION)

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा के विस्तार एवं सुधार के विषय में निम्नांकित आयोगों के विचार एवं सुझाव सराहनीय है—

(1) राधाकृष्णन् आयोग—इन 'आयोग' ने शिक्षक-शिक्षा के विषय में अग्रांकित विचार प्रकट किए हैं—

1. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाना चाहिए।
2. शिक्षा-सिद्धान्त (Theory of Education) के पाठ्यक्रम लचीले और स्थानीय वातावरण के अनुकूल होने चाहिए।
3. पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा कक्षा-शिक्षण के अभ्यास पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
4. शिक्षण के अभ्यास के लिए केवल उपयुक्त विद्यालयों का ही चयन किया जाना चाहिए।
5. छात्राध्यापकों के कार्य का मूल्यांकन करने में उसकी शिक्षण की सफलता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. प्रशिक्षण-संस्थाओं के अधिकांश अध्यापकों को विद्यालयों में पढ़ा चुकने का पर्याप्त अनुभव होना चाहिए।
7. प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों द्वारा मौलिक कार्य—अखिल भारतीय स्तर पर किया जाना चाहिए।
8. एम० एड० डिग्री प्राप्त करने के लिए केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिन्हें कुछ वर्षों का शिक्षण का अनुभव हो।

(2) मुदालियर आयोग—इस 'आयोग' ने शिक्षक-शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं[1]—

1. प्रशिक्षण संस्थाएँ केवल दो प्रकार की होनी चाहिए—(i) माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के लिए। इनकी प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की होनी चाहिए। (ii) स्नातकों के लिए। इनकी प्रशिक्षण की अवधि अभी 1 वर्ष की होनी चाहिए, पर कुछ समय के उपरान्त 2 वर्ष की कर दी जानी चाहिए।
2. छात्राध्यापकों को एक या एक से अधिक अतिरिक्त पाठ्य-क्रियाओं (Extra-Curricular Activities) में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
3. छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको प्रशिक्षण काल में राज्य द्वारा उपयुक्त शिष्यवृत्तियाँ (Stipends) दी जानी चाहिए।
4. ट्रेनिंग कॉलेजों में अभिनवन पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) विशेष विषयों में संक्षिप्त-सघन पाठ्यक्रमों (Short Intensive Courses), कार्यशालाओं में व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshops) और व्यावसायिक सम्मेलनों (Professional Conferences) की नियमित रूप से व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण-काल के लिए पूर्ण वेतन पर अवकाश दिया जाना चाहिए।
6. अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने के लिए अल्पकालीन प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

3. कोठारी कमीशन (1964-66)—'आयोग' ने अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है—**"शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा का ठोस कार्यक्रम अनिवार्य है।"**

---

[1] *Mudaliar Commission Report*, p. 194.

शिक्षक-शिक्षा के उपर्युक्त महत्त्व को ध्यान में रखते हुए 'आयोग' ने पहले शिक्षक-शिक्षा के दोषों का उल्लेख किया है और उसके बाद इस शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में अपने विचारों को लेखबद्ध किया है; यथा—

(1) शिक्षक-शिक्षा के दोष : Defects of Teacher Education—'आयोग' के मतानुसार, शिक्षक-शिक्षा के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं—

1. प्रशिक्षण-संस्थाओं का कार्य—निम्न या साधारण कोटि का है।
2. प्रशिक्षण-संस्थाओं में योग्य अध्यापकों का अभाव है।
3. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में नवीनता, सजीवता एवं वास्तविकता का अभाव है।
4. प्रशिक्षण-संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले प्रशिक्षण अधिकांश रूप से परम्परागत हैं।
5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में सिखाई जाने वाली शिक्षण-विधियाँ घिसी-पिटी हैं और शिक्षा के वर्तमान उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता नहीं देती हैं।
6. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं है।
7. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं और विश्वविद्यालय के साहित्यिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अध्यापक-शिक्षा के उपरिवर्णित दोषों का निराकरण करने के लिए 'आयोग' ने जो सुझाव दिये हैं, उनमें से निम्नांकित महत्त्वपूर्ण हैं—

(2) शिक्षक-शिक्षा की पृथकता का अन्त : Removal of Isolation of Teacher Education—**'आयोग' का कथन है—"अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, उसे एक ओर विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से और दूसरी ओर विद्यालय-जीवन एवं शिक्षा-सम्बन्धी नवीनतम विचारों के सम्पर्क में लाया जाना परम आवश्यक है।"** इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, 'आयोग' ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं—

1. 'शिक्षा' विषय को विश्वविद्यालयों के बी० ए० एवं एम० ए० के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
2. कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों में अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रमों के विकास, अध्ययन एवं अनुसन्धान के लिए 'शिक्षा-विभागों' (School of Education) की स्थापना की जानी चाहिए।
3. सब प्रशिक्षण-संस्थाओं में 'प्रसार-सेवा-विभाग' (Extention Service Department) का निर्माण किया जाना चाहिए।
4. प्रशिक्षण-काल में अध्यापकों के शिक्षण-अभ्यास के लिए केवल मान्यता प्राप्त स्कूलों का ही चयन किया जाना चाहिए।
5. प्रशिक्षण संस्थाओं एवं उनसे सम्बद्ध शिक्षण-अभ्यास (Teaching Practice) के स्कूलों के अध्यापकों को समय-समय पर एक-दूसरे के स्थान पर कार्य करना चाहिए।

6. विभिन्न प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं की पृथकता का अन्त करने के लिए सबको 'ट्रेनिंग कॉलेजों' की संज्ञा दी जानी चाहिए और उनको अपने क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।
7. सब राज्यों में 'कॉम्प्रीहेन्सिव कॉलेजों' (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जानी चाहिए और उनमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
8. प्रत्येक राज्य में 'अध्यापक-शिक्षा की राज्य-परिषद्' (State Board of Teacher Education) का निर्माण किया जाना चाहिए, जिस पर सब क्षेत्रों एवं स्तरों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

(3) प्रशिक्षण की अवधि : Period of Training—'आयोग' ने विभिन्न प्रशिक्षण-स्तरों की अवधि के विषय में निम्नलिखित विचार अंकित किए हैं—

1. प्राथमिक विद्यालयों के उन अध्यापकों के लिए, जिन्होंने सेकण्डरी स्कूल कोर्स पास किया है, प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की होनी चाहिए।
2. माध्यमिक विद्यालयों के उन अध्यापकों के लिए, जो स्नातक हैं, प्रशिक्षण की अवधि अभी तो 1 वर्ष की होनी चाहिए, पर कुछ समय के पश्चात् 2 वर्ष की कर दी जानी चाहिए।
3. शिक्षा में स्नातकोत्तर (M. Ed.) पाठ्यक्रम की अवधि 1½ वर्ष की होनी चाहिए।

(4) प्रशिक्षण-संस्थाओं की उन्नति : Improvement in Training Institutions—'आयोग' ने प्रशिक्षण-संस्थाओं की गुणात्मक उन्नति करने के लिए निम्नांकित सिफारिशें की हैं—

1. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों के पास शिक्षा की उपाधि (Degree in Education) के अतिरिक्त दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ (Post-Graduate Degree) होनी चाहिए।
2. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों में 'डाक्टर' (Doctorate) की उपाधियाँ वाले शिक्षकों की संख्या उचित अनुपात में होनी चाहिए।
3. गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र ऐसे विषयों को शिक्षा देने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए, चाहे उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त न किया हो।
4. प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से एक प्रयोगात्मक (Experimental) विद्यालय संलग्न होना चाहिए।
5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको ऋण एवं छात्रवृत्तियों के रूप में आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
6. वर्तमान प्रशिक्षण-संस्थाओं के पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि में सुधार किया जाना चाहिए, क्योंकि उनकी दशा अत्यधिक असन्तोषजनक है।
7. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय स्थानों पर 'ग्रीष्मकालीन संस्थाओं' (Summer Institutes) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

8. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं के अध्यापकों के पास या तो 'शिक्षा' में एम० ए० (M. A. In Education) की उपाधि होनी चाहिए, या बी० एड० (B. Ed.) की उपाधि के साथ-साथ कोई स्नातकोत्तर (M. A., M. Sc.) उपाधि होनी चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में शिक्षा की गुणवत्ता तथा इसका स्तर सुधारने में शिक्षकों के महत्त्व को स्वीकार किया गया। उनके स्तर को उन्नत बनाने के लिये कार्य योजना, 1986 तैयार की गई। इसके तहत वर्ष 1987-88 में शिक्षक-शिक्षा की पुनः संरचना तथा पुनर्गठन के लिये एक केन्द्रीय प्रायोजित योजना संचालित की गई। आठवीं योजना के दौरान कार्यान्वयन के लिए वर्ष 1993-94 में इसको संशोधित किया गया। इस संशोधित योजना के मुख्य लक्ष्य इस प्रकार हैं—

1. बुनियादी, माध्यमिक तथा प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्रों में शुरू की गई विभिन्न कार्य-नीतियों तथा कार्यक्रमों की सफलता के लिये मूलस्तर पर शैक्षिक एवं संसाधन सम्बन्धी सहायता प्रदान करना, तथा

2. सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण का संस्थानीकरण करना।

उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निम्नलिखित कदम उठाये गये—

(अ) आठवीं योजना के अन्त तक, मौजूदा प्राथमिक शिक्षक शिक्षा संस्थानों के उचित स्तरोन्नयन अथवा नये संस्थानों की स्थापना के माध्यम से 450 जिला संस्थानों की स्थापना करना।

जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान : District Institutes of Education and Training—आठवीं योजना के अन्त तक 450 ऐसे संस्थान स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। अब तक 363 जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान संचालित हो गये हैं। इन संस्थानों को उत्तम कोटि की पूर्व-सेवा (Pre-service) तथा सेवाकालीन (In-service) प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये स्थापित किया गया है। ये संस्थान प्राथमिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा-प्रणालियों को संसाधन सहायता प्रदान करती है। साथ ही ये संस्थान प्राथमिक स्कूलों के शिक्षको और प्रौढ़ शिक्षा व गैर-औपचारिक (Non-formal) शिक्षा के कार्मिकों को प्रशिक्षण एवं संसाधन प्रदान कर रहे हैं। ये संस्थान वर्ष 1993-97 के दौरान प्राथमिक स्कूलों के 4·5 लाख शिक्षकों को विशेष अनुस्थापन कार्यक्रम प्रदान करेंगे जिससे ये शिक्षक ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड की सामग्री का प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित हो सकें। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षकों को शिक्षा के न्यूनतम स्तर की कार्य-नीति के प्रति उन्मुख करना। इसमें भाषा, गणित तथा पर्यावरण अध्ययन पर बल दिया जायेगा।

(ब) माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा को उन्नत बनाने के लिये माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा संस्थानों को शिक्षक-शिक्षा कॉलेजों के रूप में परिवर्तित किया जा रहा है। अब तक 31 शिक्षक-शिक्षा कॉलेज (College of Teacher Education-CTE) स्थापित किये जा चुके हैं। ये कॉलेज माध्यमिक स्कूल प्रणाली को प्रशिक्षण और स्रोत सम्बन्धी सहायता प्रदान करते हैं।

(स) माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा के स्तरोन्नयन हेतु शिक्षक-शिक्षा कॉलेजों को उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थानों के रूप में परिवर्तित करने के लिये कदम उठाये गये हैं।

वर्ष 1992-93 में 10 उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान (Institute Advanced Study of Education-IASE) स्थापित करने की संस्तुति की गई। ये संस्थान माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा प्रणाली को स्रोत सम्बन्धी सहायता प्रदान करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद्
(NATIONAL COUNCIL OF TEACHER EDUCATION)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह कहा गया है कि राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को प्रत्यापित करने तथा पाठ्यचर्या व पद्धतियों के बारे में दिशा-निर्देश प्रदान करने के लिये आवश्यक संसाधन तथा क्षमता उपलब्ध कराई जायेगी। राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को शिक्षक-शिक्षा प्रणाली के मार्ग-दर्शन में सक्षम बनाने के लिये राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन के लिये 1986 में तैयार की गई कार्य योजना (Plan of Action-POA) में इसे संवैधानिक दर्जा प्रदान करने की परिकल्पना की गई। इसको संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिये सन् 1993 में एक अधिनियम बनाया गया। यह अधिनियम 'The National Council for Teacher Education Act, 1993' के नाम से पुकारा जाता है। इस परिषद् का मुख्यालय दिल्ली में स्थापित किया गया। इस एक्ट ने परिषद् को यह भी अधिकार प्रदान किया कि वह अपने क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित कर सकती है। परिषद् ने निम्नलिखित क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये हैं—

1. उत्तरी क्षेत्रीय कार्यालय, जयपुर।
2. पश्चिमी क्षेत्रीय कार्यालय।
3. दक्षिणी क्षेत्रीय कार्यालय।
4. पूर्वी क्षेत्रीय कार्यालय।

इस अधिनियम द्वारा परिषद् में निम्नलिखित को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है—

1. भारत सरकार द्वारा नियुक्त चेयरमैन।
2. भारत सरकार द्वारा नियुक्त वाइस चेयरमैन।
3. भारत सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य-सचिव (Member Secretary)।
4. शिक्षा विभाग में भारत सरकार का सचिव, पदेन सदस्य।
5. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का चेयरमैन या उसके द्वारा मनोनीत सदस्य, पदेन सदस्य।
6. राष्ट्रीय शैक्षिक आयोजन एवं प्रशासन (नीपा) का निदेशक, पदेन सदस्य।
7. आयोजन आयोग का (शिक्षा) सलाहकार, पदेन सदस्य।
8. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) का चेयरमैन, पदेन सदस्य।
9. शिक्षा-विभाग में भारत सरकार का वित्त सलाहकार, पदेन सदस्य।
10. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् का सदस्य-सचिव, पदेन सदस्य।
11. क्षेत्रीय समितियाँ (पूर्वी, उत्तरी, दक्षिणी तथा पश्चिमी) के चेयरमैन, पदेन सदस्य।

12. शिक्षा या प्रशिक्षण के क्षेत्र के 13 व्यक्ति जिनको भारत सरकार द्वारा इस प्रकार नियुक्त किया जायेगा—

(i) 4 शिक्षा संकाय तथा प्रोफेसर,

(ii) माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा का एक विशेषज्ञ,

(iii) तीन पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षक शिक्षा के विशेषज्ञ,

(iv) दो प्रौढ़ शिक्षा एवं गैर-औपचारिक (Non-formal) शिक्षा के विशेषज्ञ तथा

(v) तीन प्राकृतिक विज्ञानों, समाज विज्ञानों, भाषाशास्त्री, व्यावसायिक शिक्षा कार्य-अनुभव, शैक्षिक तकनीकी तथा विशेष शिक्षा के विशेषज्ञ।

13. भारत सरकार द्वारा नियुक्त तीन संसद सदस्य जिनमें से दो लोकसभा तथा एक राज्य सभा का सदस्य।

14. भारत सरकार द्वारा नियुक्त तीन सदस्य जो प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूल के सदस्यों में से होंगे।

15. भारत सरकार द्वारा नियुक्त 9 सदस्य राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों के प्रतिनिधि होंगे।

परिषद् के कार्य : Functions of Council—अधिनियम द्वारा परिषद् के निम्नलिखित प्रमुख कार्य निर्धारित किये गये हैं—

1. शिक्षक-शिक्षा से विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सर्वेक्षण एवं अध्ययन करना।

2. शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न उपयुक्त कार्यक्रमों की भारत तथा राज्य सरकारों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा स्वीकृत संस्थाओं को संस्तुति करना।

3. देश में शिक्षक-शिक्षा का विकास, नियन्त्रण तथा समन्वय करना।

4. शिक्षक की नियुक्ति, ट्यूशन, फीस, आदि के सम्बन्ध में मार्ग-निर्देश प्रदान करना।

5. स्वीकृत संस्थाओं की जवाबदेही के लिये मानदण्ड एवं मूल्यांकन पद्धति का निर्धारण करना।

6. शिक्षक-शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकने के लिये आवश्यक कदम उठाना।

7. शिक्षक विकास कार्यक्रमों के लिये नवीन संस्थाओं की स्थापना करना।

8. शिक्षक-शिक्षा के विभिन्न कोर्सों के लिये प्रवेश नियमों, अभ्यार्थियों की चयन-प्रक्रिया, कोर्स की अवधि का निर्धारण, कोर्स की विषय-वस्तु आदि का निर्धारण करना।

9. शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की स्वीकृति या सम्बद्धीकरण (Recognition) से सम्बन्धित नियमों का निर्धारण करना आदि।

राममूर्ति समिति तथा शिक्षक-शिक्षा

(RAMAMURTI COMMITTEE AND TEACHER EDUCATION)

राममूर्ति समिति के अनुसार वर्तमान शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम सिद्धान्त-उन्मुख है, यह विद्यालय, कॉलेज तथा विश्वविद्यालय एवं समुदाय से पृथक है। इस कार्यक्रम में शिक्षण-अभ्यास के लिये बहुत कम समय दिया गया है। यह परम्परागत एवं रूढ़िबद्ध है

शिक्षण-अभ्यास विद्यालयों की वास्तविक स्थितियों से सम्बद्ध नहीं है। शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के पास अपने प्रदर्शन या मॉडल स्कूल नहीं हैं। शिक्षकों की शिक्षा के लिये सेवाकालीन शिक्षक शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था नहीं है। इस कार्यक्रम में मूल्याकन पद्धति बड़ी ही दोष-पूर्ण है। समिति ने शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रम को सुधारने के हेतु निम्नलिखित संस्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं—

1. शिक्षक-शिक्षा की संस्थाओं में छात्रों का चयन मात्र विश्वविद्यालय अंकों या ग्रेडों पर नहीं किया जाना चाहिए वरन् यह अभिरुचि (Abstitude) तथा उपलब्धि पर आधारित होना चाहिए।

2. प्रशिक्षण कार्यक्रम दक्षता-आधारित (Competance Based) होना चाहिए।

3. सिद्धान्त तथा अभ्यास स्थिति पूरक होना चाहिए।

4. प्रशिक्षण कार्यक्रम में भावात्मक पक्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाना चाहिए जिससे छात्रों में व्यवसाय के प्रति अभिरुचि, समाज के प्रति जागरुकता तथा मूल्यों का विकास हो सके।

5. सेवाकालीन तथा रिफ्रेसर कोर्स शिक्षकों की विशिष्ट आवश्यकताओं पर आधारित होने चाहिए। ये कोर्स शिक्षक के भावी विकास पर आधारित किये जाने चाहिए।

6. प्रत्येक शिक्षक को उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुकूल सेवाकालीन कोर्स अवश्य प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

7. शिक्षक-शिक्षा की प्रथम उपाधि पत्राचार शिक्षा के द्वारा प्रदान नहीं की जानी चाहिए।

8. समिति ने शिक्षक-प्रशिक्षण की इण्टर्नशिप का मॉडल इस प्रकार दिया है—

इण्टर्नशिप	परम्परागत
1. दीर्घ अवधि।	1. लघु अवधि।
2. सेवाकालीन।	2. पूर्व-सेवाकालीन (Pre-service)।
3. सेवा करते समय शिक्षक के समस्त कार्यों में प्रशिक्षित करना।	3. संस्था में मात्र शिक्षण-अभ्यास।
4. सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों को व्यावहारिक रूप में प्रदान करना।	4. मुख्यतः सैद्धान्तिक।
5. वास्तविकता-आधारित (Reality-based)।	5. आदर्शोन्मुख।
6. अनुभवाश्रित (Experience based)।	6. निर्देश-आधारित (Instruction based)।
7. आगमनात्मक (Inductive)।	7. निगमनात्मक (Deductive)।
8. कम-व्ययी (Low-cost)।	8. अधिक व्ययी (High cost)।

9. समिति ने विषय-वस्तु के तीनों पक्षों, ज्ञान, कौशल तथा अभिरुचि पर बल दिया है। इसको अग्र तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है-

PROCESS	ज्ञान	कौशल	अभिरुचि
सैद्धान्तिक निर्देश	लघु अवधि		
व्यावहारिक-कार्य		मध्यावधि	
क्षेत्रीय कार्य अनुभव			दीर्घ अवधि

10. समिति ने शिक्षक-शिक्षा के शिक्षकों में नेतृत्व क्षमता का होना आवश्यक माना है। इसके लिए उनमें निम्नलिखित गुणों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए—

(i) स्वतन्त्र चिन्तन एवं कार्य करने की योग्यता।
(ii) प्रचलित जनमत के विरुद्ध कार्य करने की योग्यता।
(iii) लोगों का उदाहरण तथा उपदेश दोनों रूप से नेतृत्व करने की योग्यता।
(iv) सृजनात्मक कार्य करने की क्षमता।
(v) प्राप्त करने का संकल्प।
(vi) जबावदेही का संकल्प आदि।

सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा
(IN-SERVICE TEACHER-EDUCATION)

सेवाकालीन शिक्षा का अर्थ—शिक्षक-शिक्षा के दो पक्ष हैं। पहला, व्यक्ति को प्रशिक्षण-संस्था में प्रशिक्षण देकर, शिक्षक के रूप में तैयार किया जाता है। दूसरा, शिक्षक को सेवाकाल में शिक्षा-सम्बन्धी नवीन तथ्यों, विधियों, सिद्धान्तों आदि से परिचित कराके, उसकी व्यावसायिक दक्षता एवं कुशलता में वृद्धि की जाती है। शिक्षा के इस पक्ष को 'सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा' की संज्ञा दी गई है।

सेवाकालीन शिक्षा का महत्त्व व आवश्यकता—शिक्षा-आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। अतः सच्चा शिक्षक वही व्यक्ति हो सकता है, जो स्वयं अपने सम्पूर्ण जीवन को विद्यार्थी बना रहता है। जो व्यक्ति अपने 9 या 10 माह के प्रशिक्षण के पश्चात् फिर कभी कुछ सीखने का प्रयत्न नहीं करता है, वह सच्चा शिक्षक कहलाने का अधिकारी नहीं है। अतः आवश्यक है कि वह अपने सम्पूर्ण शिक्षण-काल में अपने ज्ञान में वृद्धि और उसका परिमार्जन करता रहे। यह तभी सम्भव है, जब उसे सेवाकालीन शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध हों। इस शिक्षा के महत्त्व एवं आवश्यकता के सम्बन्ध में आपके अवलोकनार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं; यथा—

1. राधाकृष्णन् कमीशन[1]—"यह विलक्षण बात है कि हमारे विद्यालय-शिक्षक 24 या 25 वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले ही उन विषयों के सम्बन्ध में सब कुछ सीख लेते हैं, जो उनको पढ़ाने होते हैं और उसके पश्चात् उनकी सब भावी शिक्षा—अनुभव पर छोड़ दी जाती है।"

1. *Radhakrishnan Commission Report*, p. 152.

2. मुदालियर कमीशन[1]—"शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्यक्रम चाहे जितना भी उत्तम क्यों न हो, पर यह स्वयं उत्तम शिक्षक का निर्माण नहीं कर सकता है। यह प्रशिक्षण—न्यूनतम अनुभव वाले शिक्षक को पर्याप्त आत्म-विश्वास से अपने शिक्षण-कार्य को आरम्भ करने की क्षमता प्रदान करता है। शिक्षक अपने कार्य में अधिक कुशलता केवल व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों के फलस्वरूप ही प्राप्त कर सकता है। सेवाकाल की इस स्थिति में प्रशिक्षण-संस्थाओं को शिक्षक की सहायता करनी चाहिए।"

3. कोठारी कमीशन—"ज्ञान के समस्त क्षेत्रों में होने वाली तीव्र प्रगति और शिक्षा के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों में होने वाले निरन्तर विकास के कारण शिक्षण-व्यवसाय में सेवाकालीन शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है।"

"The need of in-service education is most urgent in the teaching profession, because of the rapid advance in all fields of knowledge and continuing evolution of pedagogical theory and practice."

—**Kothari Commission Report**, p. 84.

4. राममूर्ति समिति—राममूर्ति समिति ने संस्तुति की है कि सेवाकालीन शिक्षा का संगठन एवं उसके नियोजन का दायित्व **शिक्षा-संकुलों** (Education Complexes) को सौंपा जाना चाहिए। ये शिक्षा-संकुल संसाधनों की सहायता जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों (DIET'S), राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (State Council of Education Research and Training—SCERT) तथा शिक्षक-शिक्षा कॉलेजों से प्राप्त करेंगे। शिक्षा-संकुल विद्यालयों तथा जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के बीच सम्प्रेषण द्वारा के रूप में प्रभावी कार्य करेंगे। समिति ने सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा को सतत् शिक्षक-शिक्षा के रूप में ग्रहण किया है।

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986—राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सेवाकालीन शिक्षा की परिकल्पना उन सभी शिक्षकों के लिये की गई है चाहे वे प्रशिक्षित हो या अप्रशिक्षित। यह प्रशिक्षण प्रत्येक शिक्षक के लिये आवश्यक होगा। वर्तमान परिस्थितियों में सेवाकालीन शिक्षा की आवश्यकता की अनुभूति की गई क्योंकि राष्ट्रीय लक्ष्यों में परिवर्तन, औद्योगीकरण की बढ़ती प्रकृति, विद्यालयी पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण हो रहा है। इस कारण सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण का दायित्व राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् पर होगा और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् इस क्षेत्र में निम्नांकित कार्य करेगी—

1. प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित करना।
2. शिक्षक-प्रशिक्षण के लिये विविध विषयों पर अधुनातन तकनीकी पर आधारित साहित्य तैयार करना।
3. शैक्षिक संसाधनों का प्रचार एवं प्रसार करना।
4. सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम का सतत् मूल्यांकन करना।
5. सेवाकालीन सभी कार्यक्रमों को श्रव्य-दृश्य संसाधनों से परिपूर्ण रखना।
6. सेवारत शिक्षकों के लिए **दूरस्थ शिक्षा** (Distance Education) की भी व्यवस्था करना।

1. *Mudaliar Commission Report*, p. 137.

दूरस्थ शिक्षा : Distance Education—दूरस्थ शिक्षा में इन्सेट 1-बी उपग्रह की सहायता से देश के समस्त अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित व्यक्तियों को शिक्षित करने का कार्य करना। इस विधि में रेडियो, टी० वी०, टेलीफोन, ऑडियो कैसेट आदि के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से परामर्श उपलब्ध कराने के लिये निम्नांकित विधियों को लागू किया जा रहा है—

(i) पत्राचार परामर्श (Correspondence Counselling)।
(ii) श्रव्य कैसेट परामर्श (Audio-Cassette Counselling)।
(iii) टेलीफोन परामर्श (Telephone Counselling)।
(iv) व्यक्तिगत सम्पर्क कार्यक्रम (Personal Contact Programme)।
(v) प्रत्यक्ष वार्ता परामर्श (Face to Face Counselling)।

कोटा मुक्त विश्वविद्यालय ने बी० एड० प्रशिक्षण का कार्यक्रम दूरस्थ विधि से प्रारम्भ किया है।

सेवाकालीन शिक्षा की विधियाँ—**'मुदालियर कमीशन'** (p. 137) ने सेवाकालीन शिक्षा के लिए निम्नांकित विधियों का सुझाव दिया है—

1. विचार-गोष्ठियाँ (Seminars)।
2. अभिनवन-पाठ्यक्रम (Refresher Courses)।
3. व्यावसायिक सम्मेलन (Professional Conferences)।
4. कार्यशालाओं में व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshop)।
5. विशेष विषयों में संक्षिप्त-गहन पाठ्यक्रम (Short Intensive Courses in Special Subjects)।

सेवाकालीन शिक्षा की अवधि—शिक्षकों को सेवाकालीन शिक्षा कब और कितने समय तक प्राप्त होनी चाहिए, इस विषय में **'कोठारी कमीशन'** का मत है[1]—**"प्रत्येक शिक्षक को अपने सेवाकाल में प्रति 5 वर्ष के पश्चात् कम-से-कम 2 या 3 माह की सेवाकालीन शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए।"**

समस्याएँ व उनके समाधान
(PROBLEMS AND THEIR SOLUTIONS)

डॉ० मुकर्जी का कथन है—"पिछले कुछ वर्षों में शिक्षक-शिक्षा का तीव्र विकास हुआ है, पर उसकी वर्तमान स्थिति किसी भी प्रकार सन्तोषजनक नहीं है। इस विकास के साथ-साथ उनमें अनेक समस्याएँ उपस्थित हो गई हैं।"

नीचे की पंक्तियों में हम शिक्षक-शिक्षा की मुख्य समस्याओं और उनके समाधान के उपायों पर विचार कर रहे हैं; यथा—

(1) समस्या—प्रवेश के मानदण्डों में विविधता : Diversity in Admission Criteria—शिक्षक-शिक्षा की बहुरंगी समस्याओं में से एक समस्या—प्रशिक्षण-संस्थाओं के मानदण्डों में विविधता है। इन मानदण्डों में इतनी विलक्षण विविधता है कि कभी-कभी उनके कारण परेशानी के अलावा हार्दिक दुःख भी होता है। इसका कारण यह है कि

1. *Kothari Commission Report*, p. 624.

अनेक प्रशिक्षण-संस्थाओं के प्रवेशार्थियों के चुनाव के 2 मुख्य आधार हैं—धन और सिफारिश। ऐसी स्थिति में निम्न योग्यताओं के व्यक्तियों का चुनाव तो हो जाता है, जबकि उच्च मानसिक योग्यताओं एवं शिक्षण में अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति—प्रवेश पाने से वंचित रह जाते हैं।

प्रशिक्षण-संस्थाओं में निम्नकोटि के व्यक्तियों के प्रवेश के दो भयंकर परिणाम उभर कर सामने आ गए हैं—छात्र-अनुशासनहीनता में वृद्धि और शिक्षा एवं शिक्षण के स्तरों में अधिक गिरावट। अतः प्रशिक्षण के लिए अयोग्य व्यक्तियों का चुनाव—शिक्षाविदों के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। इस प्रसंग में डॉ० सैयदैन ने लिखा है[1]—"जब तक लोगों में अध्यापक बनने की इच्छा थी और प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या, माँग से अधिक नहीं थी, तब तक परिस्थिति उतनी उग्र और संकटमय नहीं थी, जितनी कि आज है। अब एक ओर तो वर्तमान प्रशिक्षण-कॉलेजों में भर्ती होने का प्रयत्न करने वालों की संख्या बहुत अधिक है और दूसरी ओर सभी योग्य तथा प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए काफी नौकरियाँ नहीं हैं इसीलिए, उचित लोगों को चुनने की समस्या स्वयं इन लोगों के हित में और अध्यापन-वृत्ति के हित में भी महत्त्वपूर्ण बन गई है।"

समाधान—प्रवेश के मापदण्डों का निर्धारण : Determination of Admission Criteria—भारतीय शिक्षा की पुनर्रचना में शिक्षक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण है, पर शिक्षण का कार्य सभी व्यक्ति नहीं कर सकते हैं। अतः प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रबन्धकों एवं प्रधानाचार्यों द्वारा स्वनिर्मित मानदण्डों के प्रयोग का समय बीत चुका है। अब इन मापदण्डों का प्रयोग न केवल भारतीय शिक्षा के पुनर्संगठन वरन् देश के भावी नागरिकों और स्वयं देश के लिए महान् संकट का कारण है। अतः यह अति आवश्यक है कि प्रवेश के मापदण्ड निर्धारित किये जायें और उनको बिना किसी अपवाद के प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था द्वारा प्रयोग किया जाय। इन मानदण्डों को निर्धारित करने के लिए डॉ० सैयदैन के 2 सुझाव उल्लेखनीय हैं; यथा[2]—

1. प्रत्येक राज्य की प्रशिक्षण-संस्थाएँ और शिक्षा-विभाग संयुक्त रूप में प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् यह सर्वेक्षण करें कि उनके राज्य के लिए कितने प्रशिक्षित शिक्षकों की माँग है। इसी माँग के आधार पर विभिन्न स्तरों की प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश दिया जाय।

2. इस समय प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के लिए जिन अव्यवस्थित विधियों का प्रयोग किया जा रहा है, उनके स्थान पर ऐसे मानदण्ड निर्धारित किये जायें, जिनसे छात्रों के नैतिक एवं मानसिक गुणों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाय।

डॉ० सैयदैन के दूसरे सुझाव के अनुसार दिल्ली के 'सेण्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ ऐजूकेशन' ने छात्रों के चयन के लिये एक योजना तैयार की है। इस योजना में 4 साक्षात्कार (प्राचार्य, उपप्राचार्य, अध्यापक-मण्डल एवं स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा), 5 परीक्षाएँ (Tests), (रुचि-परीक्षा, बुद्धि-परीक्षा, अभिवृत्ति-परीक्षा, सामान्य ज्ञान-परीक्षा एवं संवेदनशीलता-परीक्षा) और एक सामूहिक विचार-विमर्श को स्थान दिया गया है।[3]

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ 272।
2. के० जी० सैयदैन : पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 272-273।
3. E. A. Pires : *Better Teacher Education*, p. 81.

प्रशिक्षण-संस्थाओं द्वारा इस योजना को स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि इसमें एक प्रवेशार्थी के चयन-सम्बन्धी तथ्यों को एकत्र करने में 4 घण्टे का समय लगता है। अतः आवश्यक है कि इसमें केवल निम्नांकित 4 बातों को स्थान देकर, इसे संक्षिप्त बनाया जाय—रुचि-परीक्षा, बुद्धि-परीक्षा, भाषा में लिखित परीक्षा और अध्यापक मण्डल का साक्षात्कार।

(2) समस्या—सिद्धान्त व व्यवहार में पृथकता : Divorce between Theory and Practice—शिक्षक-शिक्षा पर लगाए जाने वाले इन आरोपों का खण्डन नहीं किया जा सकता है कि सिद्धान्त और व्यवहार के बीच कोसों की दूरी है, आकाश-पाताल का अन्तर है। प्रशिक्षण-काल में छात्राध्यापकों को जिन सिद्धान्तों का ज्ञान प्रदान किया जाता है, उनका विद्यालय में कार्य करने की वास्तविक परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, जिन परिस्थितियों में वे अपने विद्यालयों में कार्य करते हैं, उनमें वे प्रशिक्षण-संस्थाओं में सीखे जाने वाले शैक्षणिक सिद्धान्तों को व्यवहार में कार्यान्वित नहीं कर पाते। इस दोषपूर्ण प्रशिक्षण का परिणाम बताते हुए सैयदैन ने लिखा है—**"उनके सिद्धान्तों का ज्ञान एवं विद्यालय की कक्षा में उनका प्रयोग एक-दूसरे को समृद्ध बनाने और एक-दूसरे में घुल-मिल जाने के बजाय दो बिल्कुल अलग-अलग चीजें बनी रहती हैं।"**

विद्यालयों में शिक्षण-कार्य करने के बाद बहुत शीघ्र ही छात्राध्यापक, जो अब शिक्षकों का रूप धारण कर लेते हैं, स्कूल के बँधे हुए ढर्रे पर लग जाते हैं और शिक्षण के प्रेरणाहीन एवं परम्परागत तरीकों को अपना लेते हैं। बहुधा यही शिक्षक शिकायत करते हैं कि उनका सिद्धान्तों का समूचा ज्ञान जो बहुत मेहनत से उन्हें सिखाया गया था, जिसे बहुत मेहनत से उन्होंने सीखा था, बिल्कुल बेकार हो गया, क्योंकि वे विद्यालयों की वर्तमान परिस्थितियों में उनका कोई व्यावहारिक प्रयोग नहीं कर सकते हैं। इस शिकायत के आधार पर **डॉ० सैयदैन** ने प्रशिक्षण-संस्थाओं के प्रबन्धकों को यह चेतावनी दी है—**"सिद्धान्त का व्यवहार से कोई सम्बन्ध न होना—प्रशिक्षण कॉलेजों की पढ़ाई का सबसे गम्भीर दोष है और जब तक इसे दूर नहीं किया जायेगा, तब तक इस पढ़ाई से लाभप्रद होने में शंका ही रहेगी।"**

समाधान—सिद्धान्त व व्यवहार में अपृथकता : No Divorce between Theory and Practice—उपर्युक्त दोष का मूलभूत कारण यह है कि ऐसी प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या प्रायः नगण्य है, जिनसे उचित प्रकार के 'प्रदर्शन-स्कूल' (Demonstration Schools) सम्बद्ध हैं। अतः छात्राध्यापकों को इस बात का अवसर नहीं मिल पाता है कि वह उन सिद्धान्तों एवं प्रणालियों को जिनको उन्होंने बड़े परिश्रम से सीखा है, व्यवहार में परख सकें। फलस्वरूप जैसा कि **डा० सैयदैन** ने लिखा है[1]—"उसके अध्यापन में जीवन तथा वास्तविकता का वह पुट नहीं होता है, जो केवल सफल व्यावहारिक अनुभव से ही आ सकता है।"

इस दोष के निराकरण का उपाय बताते हुए, **डॉ० सैयदैन** ने लिखा है—**"व्यवहार एवं सिद्धान्त—दोनों ही की कल्पना विकासवान इकाइयों के रूप में की जानी चाहिए।**

1. **के० जी० सैयदैन** : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 266।

सिद्धान्त—व्यवहार का पथ आलोकित करें और व्यवहार—सिद्धान्तों में नित्य नये सुधार करें।"

किन्तु यह तभी सम्भव है, जब प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से सम्बद्ध और सभी आवश्यक साधनों से परिपूर्ण एक प्रदर्शन-विद्यालय हो, जो प्रायोगिक पद्धति (Experimental Method) के अनुसार चलाया जाता हो और जिसमें छात्राध्यापकों को बताये जाने वाले सिद्धान्तों एवं प्रणालियों के बारे में छानबीन की जाती हो। **डॉ० सैयदैन** के शब्दों में[1]—"यदि प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्र इन प्रणालियों को व्यववहार में परख कर वैयक्तिक रूप से उनका प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान कर लेंगे और यदि अध्यापन के अभ्यास के दौरान में वे स्कूल को इन सिद्धान्तों के अनुसार चलाने में सहायता दे चुके होंगे, तो इस बात की सम्भावना अधिक होगी कि उनमें अपने काम के प्रति नये-नये प्रयोग करने का रवैया पैदा हो और आगे चलकर अपने जीवन से सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहार के बीच फलप्रद क्रिया-प्रतिक्रिया स्थापित कर सकें।"

(नोट—राममूर्ति समिति के सुझावों पर ध्यान दें)।

(3) समस्या—शिक्षक-शिक्षा की पृथकता : Isolation of Teacher Education—**'कोठारी कमीशन'** के अनुसार शिक्षक-शिक्षा की पृथकता के 3 रूप हैं; यथा[2]—

1. विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से पृथकता—प्रशिक्षण-संस्थाओं का विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ये सभी संस्थाएँ पूर्णतया पृथक् इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं। इसके कारण स्वयं विदित है। प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का संचालन, राज्यों के शिक्षा-विभागों द्वारा किया जाता है। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली अधिकांश संस्थाएँ, विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अवश्य होती हैं, किन्तु उनका विश्वविद्यालयों के शैक्षिक जीवन से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है।

2. विद्यालयों से पृथकता—प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का विद्यालयों और विद्यालय-शिक्षा की प्रचलित विधियों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है।

3. एक-दूसरे से पृथकता—विभिन्न श्रेणियों की प्रशिक्षण-संस्थाओं की एक-दूसरे से पूर्ण पृथकता है, क्योंकि उनके छात्रों एवं शिक्षकों में किसी प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होता है। वे अपने को एक-दूसरे से श्रेष्ठतर या निम्नतर समझते हैं। अतः वे बिल्कुल पृथक् इकाइयों में विभाजित हैं।

इस प्रकार, सब प्रशिक्षण-संस्थाओं का अपना-अपना पृथक् अस्तित्व है। उनका विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन, प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों और एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। शिक्षक-शिक्षा का यह ऐसा गम्भीर दोष है, जिसका उन्मूलन किया जाना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में **'शिक्षा-आयोग'** ने लिखा है[3]—**"हम प्रशिक्षण-संस्थाओं की पृथकता की समाप्ति के प्रस्ताव को अत्यधिक महत्त्व देते**

1. **के० जी० सैयदैन** : पूर्वोक्त पुस्तक, 267।
2. *Kothari Commission Report*, p. 68.
3. *Kothari Commission*, pp. 68-71.

हैं। हमारी राय में यह ऐसा सुधार है, जो शिक्षक-शिक्षा में जीवन का संचार कर सकता है।"

समाधान—पृथकता का अन्त : Removal of Isolation—'कोठारी कमीशन' ने शिक्षक-शिक्षा की पृथकता के तीनों रूपों का अन्त करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं; यथा—

1. विश्वविद्यालयों से पृथकता का अन्त—

(i) चुने हुए विश्वविद्यालयों में शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमों का विकास किया जाय।

(ii) विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों में 'शिक्षा' को वैकल्पिक विषय के रूप में स्थान दिया जाय।

(iii) 'शिक्षा' विषय का चयन करने वाले छात्रों को विद्यालयों में शिक्षण अभ्यास की सुविधा दी जाय।

2. विद्यालयों से पृथकता का अन्त—

(i) प्रशिक्षण-संस्थाओं में 'पुरातन छात्र-समितियों' का संगठन किया जाय।

(ii) प्रशिक्षण-संस्थाओं में 'प्रसार-सेवा-विभाग' की अनिवार्य रूप से स्थापना की जाय।

(iii) प्रशिक्षण-संस्थाओं एवं उनसे सम्बद्ध 'शिक्षण-अभ्यास' के स्कूलों के अध्यापकों में समय-समय पर विचार विनिमय होना चाहिये।

3. एक-दूसरे से पृथकता का अन्त—

(i) सब प्रशिक्षण-संस्थाओं को ट्रेनिंग कॉलेजों की संज्ञा दी जाय और उनको विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाय।

(ii) शिक्षक-शिक्षा के सब स्तरों के छात्रों को प्रशिक्षण देने के लिए, 'सघन कॉलेजों' (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जाय।

टिप्पणी—'कोठारी कमीशन' का सुझाव है कि विभिन्न स्तरों के छात्रों के प्रशिक्षण के लिए पृथक संस्थाएँ नहीं होनी चाहिए। इसके विपरीत, सबको एक ही प्रशिक्षण संस्था में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। 'कमीशन' ने इस संस्था को 'सघन कॉलेज' की संज्ञा दी है। सघन कॉलेजों में पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों को एक ही स्थान पर प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, इनमें छात्रों को एम० एड० की उपाधि के लिए भी शिक्षा दी जाती है।

सघन कॉलेजों की स्थापना के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाओं में विद्यमान पृथकता का अन्त हो जायेगा।

4. समस्या—शिक्षक-शिक्षा का निम्न स्तर : Low Standard of Teacher Education—शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रम का सार-तत्त्व उसका गुण या श्रेष्ठता (Quality) है। यदि उसमें श्रेष्ठता का अभाव है, तो वह न केवल आर्थिक अपव्यय का वरन् विद्यालय-शिक्षा के सब स्तरों के पतन का कारण बन जाती है। यदि हम अपने देश की शिक्षक-शिक्षा की स्थिति का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यद्यपि उसका हाल के वर्षों में यथेष्ट विस्तार हुआ है, पर उसके स्तर का अनिवार्य

रूप में पतन हुआ है। इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए, **'शिक्षा-आयोग'** ने लिखा है—**"शिक्षक-शिक्षा के वर्तमान कार्यक्रम अधिकांश रूप में परम्परागत, कठोर और स्कूलों की वास्तविक दशाओं एवं शैक्षिक पुनर्गठन के वर्तमान या प्रस्तावित कार्यक्रमों से असम्बद्ध हैं।"**

समाधान—शिक्षक-शिक्षा का पुनर्गठन : Reorganisation of Teacher Education—शिक्षक-शिक्षा को आर्थिक अपव्यय एवं शैक्षिक स्तरों के पतन के दोषारोपण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए, उसकी श्रेष्ठता में उन्नति की जानी आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब उसका आमूल परिवर्तन करके, उनका पुनर्संगठन किया जाये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, **'कोठारी कमीशन'** ने पुनर्संगठन के निम्नांकित सिद्धान्तों का उल्लेख किया है[1]—

1. विश्वविद्यालयों में सामान्य एवं व्यावसायिक—शिक्षा के एकीकृत पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाय।

2. स्नातकों, परस्नातकों, प्रधानाचार्यों एवं प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाय।

3. प्रशिक्षण-संस्थाओं में व्यावसायिक अध्ययन को सजीव बनाया जाय और उनको भारतीय दशाओं पर आधारित किया जाय।

4. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों की विषय-सामग्री को छात्राध्यापकों की वैयक्तिक एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार पुनः निर्धारित किया जाय।

5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में अध्यापक-अभ्यास को महत्त्व दिया जाय और छात्राध्यापकों के प्रत्येक पाठ का उचित प्रकार से निरीक्षण किया जाय।

6. प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण एवं मूल्यांकन की प्राचीन एवं परम्परागत विधियों के स्थान पर नवीनतम एवं प्रगतिशील विधियों का प्रयोग किया जाय।

उपरिअंकित सिद्धान्तों में 'कोठारी कमीशन' ने पाठ्यक्रमों के पुनः निर्धारण पर सबसे अधिक बल दिया है। **'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना'** में इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय किया गया है—**"भावी शिक्षकों की शैक्षिक एवं व्यावसायिक तैयारी में अभिवृद्धि करने के लिए प्रशिक्षण-विद्यालय एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का पुनः निर्धारण किया जायेगा।"**

(5) समस्या—प्रशिक्षण संस्थाओं की निम्न कोटि : Low Quality of Training Institutions—स्वातन्त्र्योत्तर काल में शिक्षक-शिक्षा की संख्यात्मक वृद्धि के साथ-साथ प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या में भी यथेष्ट वृद्धि हुई है। जबकि वर्ष 1950-51 में सब स्तरों की प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या 835 थी, वर्ष 1987-88 में यह संख्या बढ़कर 1475 अर्थात् लगभग दूनी हो गई।[2] किन्तु गुणात्मक दृष्टि से इन संस्थाओं के अनवरत ह्रास से साक्षात्कार होता है। परिस्थितियों की विडम्बना कुछ ऐसी रही है कि विभिन्न आयोगों, समितियों एवं अध्ययन-गोष्ठियों की चेतावनी के बावजूद भी उनकी दशा में

1. *Kothari Commission Report*, pp. 622-623.
2. *India*, 1990, p. 70.

सुधार करने के लिए बहुत समय तक एक भी पग नहीं उठाया गया। परिणामतः उनमें से अधिकांश संस्थाएँ किस स्थिति में पहुँच चुकी हैं, इसकी कल्पना **'शिक्षा-आयोग'** के इस शब्द-चित्र से कीजिए—**"कुछ प्रशिक्षण संस्थाओं के अलावा शेष सब साधारण या निम्न कोटि की हैं।"**

"The quality of training institutions remains, with a few exceptions, either mediocre or poor." **—Education Commission Report**, p. 67

ये प्रशिक्षण-संस्थाएँ किन दृष्टियों से निम्न कोटि की हैं, इसका स्पष्टीकरण **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** ने स्वतन्त्रता से पूर्व और बाद की प्रशिक्षण-संस्थाओं का चित्रांकन करके किया है; यथा[1]—पहली प्रशिक्षण संस्थाओं में लम्बे-चौड़े खेल के मैदानों, भव्य भवनों, पूर्णतया सुसज्जित पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं के दर्शन होते थे। उनमें योग्य, अनुभवी और पर्याप्त अध्यापक होते थे। इसके विपरीत, आज की प्रशिक्षण-संस्थाओं में सुसज्जित पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, शिक्षण-सामग्री और साज-सज्जा का पूर्ण अभाव है।

गत वर्षों में 244 प्रशिक्षण संस्थाओं के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि उनमें से 68 किराये के भवनों में स्थित हैं केवल 37 में अपनी स्वयं की प्रयोगशालायें हैं और केवल 144 से शिक्षण-अभ्यास के लिए विद्यालय संलग्न हैं। इन निन्दनीय प्रशिक्षण-संस्थाओं का उपहास करते हुए, **डॉ० एस० एन० मुकर्जी** ने लिखा है[2]—**निस्सन्देह रूप से आज की कुछ प्रशिक्षण संस्थायें—महलों और किलों में चल रही हैं, पर किराये के भवन या महल या घुड़साल का निर्माण निश्चित रूप से शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए नहीं किया गया।"**

समाधान—प्रशिक्षण-संस्थाओं का सुधार : Improvement of Training Institutions—शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के सुधार-सम्बन्धी उपायों का वर्णन करने से पूर्व इस बात की जानकारी आवश्यक है कि वे निम्न कोटि की क्यों है ? इसका सर्वविदित कारण यह है कि हमारी सरकार ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से लेकर 49 वर्ष के लम्बे अरसे तक उनके साथ सौतेली सन्तान का सा व्यवहार किया और उनमें तनिक भी रुचि व्यक्त न करके, उनकी प्रतिदिन अवहेलना की। इसका जीता-जागता प्रमाण यह है कि शिक्षक-शिक्षा को पृथक् एवं स्वतन्त्र इकाई के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई। यही कारण था कि शिक्षा-मन्त्रालय, विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग एवं राज्य-सरकारों ने प्रशिक्षण-संस्थाओं को एक पैसा भी सहायता-अनुदान के रूप में नहीं दिया। शिक्षक-शिक्षा के सौभाग्य से सन् 1969 से उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और इसलिये 'चौथी पंचवर्षीय योजना' (1969-74) में प्रथम बार शिक्षक-शिक्षा पर व्यय किये जाने के लिए एक धनराशि निर्धारित की गई।[3] फलस्वरूप, शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मक उन्नति के चिन्ह दिखाई देने लगे।

1. **S. N. Mukerji** : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 421.
2. **S. N. Mukerji** : *op. cit.*, p. 422.
3. *Ibid*, p. 422.

इस प्रकार, आर्थिक समस्या का समाधान हो जाने के बाद, प्रशिक्षण-संस्थाओं में सुधार करने के लिए **'कोठारी कमीशन'** द्वारा प्रस्तावित निम्नांकित उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिए—

1. ट्रेनिंग कॉलेजों में उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त किया जाय, जिनके पास शिक्षा की उपाधि के अतिरिक्त दो विषयों में स्नातकोत्तर-उपाधियाँ हों।
2. ट्रेनिंग स्कूलों में उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त किया जाय, जिनके पास बी० एड० की उपाधि के अतिरिक्त किसी विषय में स्नातकोत्तर-उपाधि हो।
3. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों, शिक्षण-अभ्यास और अध्यापन एवं मूल्यांकन की विधियों में सुधार किया जाय।
4. प्रशिक्षण-संस्थाओं में वर्कशॉपों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि की सुविधाओं में पर्याप्त विस्तार किया जाय।
5. प्रत्येक प्रशिक्षण संस्था से एक प्रयोगात्मक या प्रदर्शन-विद्यालय का सम्बद्ध होना अनिवार्य कर दिया जाय।

(नोट—राममूर्ति समिति के सुझावों पर भी ध्यान दें।)

उपसंहार

शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के लिये विभिन्न महत्त्वपूर्ण उपाय किये गये हैं। परन्तु पत्राचार-पाठ्यक्रमों, समानान्तर बी० एड० पाठ्यक्रमों, वोकेशनल बी० एड० पाठ्यक्रमों, समर बी० एड० पाठ्यक्रमों आदि ने शिक्षक-शिक्षा को निम्नतम स्थिति में पहुँचा दिया है। इनके माध्यम से बी० एड० की डिग्री बेची जा रही है। एक ओर सरकार गुणवत्ता (Quality) नियन्त्रण पर बल दे रही है दूसरी ओर स्ववित्तीय स्रोतों पर बल दे रही है। विश्वविद्यालयों ने अपनी वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिये बी० एड० को एक साधन बना लिया है। अतः शिक्षक-शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिये इन तथ्यों पर ध्यान देना होगा और वर्तमान स्थिति को नियन्त्रित करने के लिये कदम उठाने होंगे। इस क्षेत्र में आज राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद् ही एक आशा की किरण है सम्भवतः इसके प्रयासों से शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हो सके।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What do you understand by the term 'teacher education' ? What measures would you suggest to improve the quality of pre-service teacher education in India ? Discuss.

   'अध्यापक-शिक्षा' शब्द से आप क्या समझते हैं ? भारत में प्राग् सेवा अध्यापक शिक्षा के गुणात्मक स्तर को सुधारने के लिए आप कौन-कौन से उपाय सुझायेंगे ? विवेचन कीजिए।

2. Describe some chief problems of Teacher-Education and suggest measures to solve them.

भारत में अध्यापक-शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए और उसके समाधान के लिए सुझाव दीजिए।

3. What reforms have been suggested by the Education Commission to break down the isolation of Primary and Secondary teachers, training institutions from the academic life of the universities and the everyday problems of schools ?
प्राथमिक तथा माध्यमिक अध्यापकों को प्रशिक्षण-संस्थाओं का विश्वविद्यालय के विद्वत्परिषद् के जीवन तथा विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से पार्थक्य को हटाने के लिए शिक्षा-आयोग ने क्या सुधार प्रस्तुत किए हैं ?

4. Write short notes on the following—(i) Teacher Education by Correspondence Courses, (ii) In-Service Teacher-Education, (iii) Regional Colleges of Education, and (iv) State Institutes of Education.
निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—(1) पत्र-व्यवहार पाठ्यक्रम द्वारा अध्यापक शिक्षा, (2) सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा, (3) शिक्षा के प्रादेशिक कॉलेज और (4) शिक्षा के राज्य-संस्थान।

27

प्रौढ़ शिक्षा

ADULT EDUCATION

"Adult education is education for everybody at all times and in all conditions."
—Bryson.

विषय-प्रवेश

आधुनिक भारत में प्रचलित शिक्षा के समस्त अंगों के समान प्रौढ़-शिक्षा की धारणा भी यूरोपीय है। जब यूरोप-निवासियों के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का भारत में प्रवेश हुआ, तब नगरों में निवास करने वाले प्रौढ़ों में भी अपनी भौतिक सम्पन्नता में वृद्धि करने के लिए ज्ञान प्राप्ति की इच्छा उदय हुई। उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार से सर्वप्रथम सिफारिश—सन् 1882 के 'हण्टर कमीशन' ने कीं। उसने सिफारिश की कि निरक्षर प्रौढ़ों के लिए जहाँ-जहाँ सम्भव हो, वहाँ-वहाँ रात्रि-विद्यालयों (Night Schools) की स्थापना की जाय।

यद्यपि 'कमीशन' की सिफारिश का कोई तात्कालिक फल न निकला, तथापि द्वैध शासन (1920-1937) एवं प्रान्तीय स्वशासन (1937-1947) में भारतीय शिक्षामन्त्रियों ने प्रौढ-शिक्षा के लिए सराहनीय कार्य किये। स्वतन्त्र भारत में आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, औद्योगिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से प्रौढ़-शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इसीलिए सन 1949 से 'प्रौढ़-शिक्षा' (Adult Education) को 'समाज-शिक्षा' (Social Education) का नाम देकर, उसके कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया गया है।

भारत में प्रौढ़-शिक्षा का विकास
(DEVELOPMENT OF ADULT EDUCATION IN INDIA)

हम स्पष्टता की दृष्टि से भारत में प्रौढ़-शिक्षा के विकास का विवरण निम्नांकित शीर्षकों एवं कालों के अन्तर्गत कर रहे हैं—

1. प्रौढ़-शिक्षा के लिए प्रारम्भिक प्रयास—भारत में प्रौढ़-शिक्षा के लिए प्रारम्भिक प्रयास का श्रेय ईसाई मिशनरियों को प्राप्त है। उनका यह प्रयास सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी

केरल में शिक्षा के महत्व और प्राचीनता को देश में सबसे अधिक साक्षर राज्य के रूप में राज्य की रैंकिंग से रेखांकित किया गया है। केरल का शैक्षिक परिवर्तन चर्च मिशन सोसाइटी मिशनरियों के प्रयासों से शुरू हुआ , जो 19वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में केरल में सामूहिक शिक्षा को बढ़ावा देने वाले अग्रणी थे। [1] [2] [3] [4] [5] आधुनिक केरल के स्थानीय राजवंशीय अग्रदूत - मुख्य रूप से त्रावणकोर शाही परिवार, नायर सर्विस सोसाइटी , [6] श्री नारायण धर्म परिपालन योगम [7] (एसएनडीपी योगम)) और मुस्लिम एजुकेशनल सोसाइटी (एमईएस) [8] ने भी केरल में शिक्षा की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। [9] स्थानीय स्कूलों को सामान्य शब्द *कलारिस* के नाम से जाना जाता था , जिनमें से कुछ में मार्शल आर्ट सिखाया जाता था , लेकिन एजुथैचन्स द्वारा चलाए जाने वाले अन्य ग्रामीण स्कूल सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए थे। ईसाई मिशनरियों और ब्रिटिश शासन ने केरल में आधुनिक स्कूली शिक्षा प्रणाली लायी। एजुथु पल्ली पहले के समय में इस्तेमाल किया जाने वाला नाम था। यह शब्द बौद्ध मठों द्वारा संचालित विद्यालयों से लिया गया है। [10] सदियों से गाँव एक या दो शिक्षकों के साथ एज़ुथुपल्ली या आशान पल्लीकुदम की स्थापना करते थे। छात्र आस-पास के क्षेत्रों से इस स्कूल में जाते थे और भाषा, साहित्य, गणित, व्याकरण आदि सीखते थे। [11] इसे पूरा करने के बाद छात्र आयुर्वेद, ज्योतिष, लेखांकन आदि जैसे विशिष्ट विषयों के बारे में अध्ययन जारी रख सकते हैं। 1800 के दौरान जनगणना से पता चलता है कि त्रावणकोर, कोचीन , कन्नूर इलाकों में ऐसे कई स्कूल हैं। [12] यहां तक कि आशाओं की नाम सूची भी जनगणना के साथ प्रकाशित की जाती थी। [13]

इतिहास [संपादित] _

मध्यकालीन युग [संपादित करें]

केरल स्कूल ऑफ एस्ट्रोनॉमी एंड मैथमेटिक्स की स्थापना केरल में संगमग्राम के माधव द्वारा की गई थी, जो मुख्य रूप से *वेत्ताथुनाडु* (वर्तमान तिरूर क्षेत्र) में स्थित थी, जिसके सदस्यों में परमेश्वर , नीलकांत सोमयाजी , ज्येष्ठदेव , अच्युता पिशारति , मेलपथुर नारायण भट्टतिरी और अच्युता पणिक्कर शामिल थे । यह स्कूल 14वीं और 16वीं शताब्दी के बीच फला-फूला और ऐसा लगता है कि स्कूल की मूल खोजें नारायण भट्टतिरी (1559-1632) के साथ समाप्त हो गईं। खगोलीय समस्याओं को हल करने के प्रयास में, केरल स्कूल ने स्वतंत्र रूप से कई महत्वपूर्ण गणित अवधारणाओं का निर्माण किया। उनके सबसे महत्वपूर्ण परिणाम - त्रिकोणमितीय कार्यों के लिए श्रृंखला विस्तार - का वर्णन नीलकंठ की *तंत्रसंग्रह* नामक पुस्तक में संस्कृत श्लोक में किया गया था , और फिर इस कार्य पर अज्ञात लेखक की *तंत्रसंग्रह-वाख्य नामक एक टिप्पणी में किया गया था।* प्रमेयों को प्रमाण के बिना कहा गया था, लेकिन साइन, कोसाइन और व्युत्क्रम स्पर्शरेखा की श्रृंखला के प्रमाण एक सदी बाद ज्येष्ठदेव द्वारा मलयालम में लिखी गई कृति युक्तिभाषा (सी.1500-1610) में और एक टिप्पणी में भी प्रदान किए गए थे। तंत्रसंग्रह । उनका काम, यूरोप में कैलकुलस के आविष्कार से दो शताब्दी पहले पूरा हुआ , जिसे अब पावर श्रृंखला (ज्यामितीय श्रृंखला के अलावा) का पहला उदाहरण माना जाता है। हालाँकि, उन्होंने विभेदीकरण और एकीकरण का कोई व्यवस्थित सिद्धांत नहीं बनाया और न ही उनके परिणामों के केरल के बाहर प्रसारित होने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है। [6]

आधुनिक युग [संपादित करें]

इससे पहले स्थानीय स्कूल धनी परिवारों द्वारा या शिक्षकों द्वारा बनाए जाते थे जिन्हें कुडिपल्लीकुदम कहा जाता था, जहाँ बच्चों को भाषा/साहित्य, गणित आदि पढ़ाया जाता था। तमिल और संस्कृत को विशेष दर्जा दिया गया था जबकि मलयालम को वह सम्मान नहीं दिया गया था। लगभग सभी समुदायों में ऐसे सदस्य थे जो सुशिक्षित थे। कारीगर/व्यापार/चिकित्सकीय समुदायों जैसे कि विश्वकर्मा , एझावा आदि ने शिक्षा प्राप्त करने में विशेष रुचि दी। केरल में 19वीं सदी के उत्तरार्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध के दौरान एक सांस्कृतिक क्रांति हुई और शिक्षा पर जोर इसका हिस्सा था। इस अवधि के दौरान कई स्कूल और यहां तक कि महिला छात्रावास भी शुरू किए गए। इस अवधि में समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि की लोकप्रियता भी देखी गई। केरल में शिक्षा को भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान उनकी नीति के तहत और ईसाई मिशनरियों द्वारा भी बढ़ावा दिया गया था।

1800-1880 [संपादित करें]

बेसल मिशन [संपादित करें]

19वीं शताब्दी में, केरल के शैक्षिक परिदृश्य में बड़े पैमाने पर मिशनरी गतिविधियों के कारण परिवर्तनकारी परिवर्तन हुए। बेसल जर्मन इवेंजेलिकल मिशन ने मालाबार क्षेत्र में स्कूल स्थापित करके एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। [14] 1818 में, ब्रिटिश मिशनरी रेव. जे. डावसन ने कोचीन सरकार की वित्तीय सहायता से मट्टनचेरी में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की पहल की। [15] बेसल मिशन से जुड़े डॉ. हरमन गुंडर्ट ने पहली मलयालम व्याकरण पुस्तक, मलयालभाषा व्याकरणम का संकलन करके और 1872 में प्रारंभिक मलयालम-अंग्रेजी शब्दकोश तैयार करके मलयालम भाषा और साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया । [16] बेसल मिशन, डब्ल्यूटी रिंगलेटयूब के तहत , 1806 और 1816 के बीच नागरकोइल और आसपास के इलाकों में स्कूलों की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की।

बेसल मिशन से जुड़े हरमन गुंडर्ट ने केरल के 19वीं सदी के शैक्षिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फरवरी 1846 में, गुंडर्ट ने टेलिचेरी के पास नेट्टूर में एक लिथोग्राफिक प्रेस और बुकबाइंडिंग प्रतिष्ठान खोला, जिसने मालाबार में शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण

योगदान दिया। बेसल मिशन के प्रिंटिंग प्रेस ने मई 1874 में मलयालम पाक्षिक पत्रिका *केरलोपकारी* प्रकाशित की , जिसमें विश्व समाचार, मौसम रिपोर्ट और कृषि समाचार शामिल थे। परिष्कृत मुद्रण तकनीक शुरू करने और पाठ्यपुस्तकों को प्रकाशित करने में गुंडर्ट के प्रयास इस क्षेत्र में शिक्षा को बढ़ावा देने में सहायक थे। मलयालम भाषा और साहित्य में उनका योगदान केरल के शैक्षिक इतिहास में एक स्थायी विरासत बना हुआ है।

चर्च मिशनरी सोसाइटी और लंदन मिशनरी सोसाइटी [संपादित करें]

केरल के 19वीं सदी के शैक्षिक परिदृश्य को चर्च मिशनरी सोसाइटी (सीएमएस) और लंदन मिशनरी सोसाइटी (एलएमएस) ने गहराई से आकार दिया था। 1817 से 1873 तक सक्रिय एलएमएस के रेव मीड ने दक्षिणी तिरुविथमकुर में व्यावसायिक स्कूल शुरू करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। [17] 1816 में, पहले सीएमएस मिशनरी थॉमस डॉसन ने मट्टनचेरी में एक स्कूल खोला। थॉमस नॉर्टन और हेनरी बेकर (श्रीमती डोरोथिया बेकर के पति) सहित सीएमएस मिशनरियों ने उत्पीड़ित और निचली जातियों के लिए शिक्षा को बढ़ावा देने, मवेलिक्कारा, तिरुवल्ला, मल्लापल्ली, मुंडक्कयम और मेलुकावु में स्कूलों की स्थापना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सीएमएस के रेव हेनरी बेकर की पत्नी श्रीमती डोरोथिया बेकर ने 1819 में कोट्टायम में पहला गर्ल्स स्कूल, बेकर मेमोरियल गर्ल्स स्कूल लॉन्च किया, जो महिला शिक्षा में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर था। [18] शिक्षा पर सीएमएस के जोर ने पारंपरिक मानदंडों को चुनौती देते हुए केरल की सामाजिक संरचना में आमूलचूल परिवर्तन लाया। [19] 1835-40 में सीरियाई चर्च और सीएमएस के बीच विभाजन के कारण मार्थोमा चर्च की स्थापना हुई , जिसने स्वतंत्र रूप से कई अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना की।

कैथोलिक चर्च [संपादित करें]

19वीं शताब्दी में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति आर्कबिशप बर्नार्डिन बैसिनेली थे , [20] जिन्होंने गरीबों और अमीर दोनों के लिए शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए "हर चर्च के साथ एक स्कूल" नामक प्रणाली शुरू की। वह व्यवस्था वर्तमान में भी जारी है। उनके काम के परिणामस्वरूप लड़कियों के लिए शिक्षा को बढ़ावा मिला है। विधवा नन बनीं मदर एलिसवा ने केरल में लड़कियों के लिए एक स्कूल शुरू किया। [21]

1824 में बेसल मिशन 56 स्कूल चला रहा था जबकि सीएमएस 47 स्कूलों का प्रबंधन करता था। सदी के अंत तक स्कूल बढ़कर क्रमशः 257 और 351 हो गए। [19]

1880-1947 [संपादित करें]

त्रावणकोर शासक [संपादित करें]

त्रावणकोर शासकों, महाराजा विशाखम थिरुनल राम वर्मा (1880-1885) और महाराजा मूलम थिरुनल राम वर्मा (1885-1924) के शासनकाल में, केरल ने शैक्षिक प्रगति में वृद्धि का अनुभव किया। [22] शासकों ने प्रारंभिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए सहायता अनुदान लागू किया, स्कूलों को प्राथमिक से विशेष कॉलेजों तक वर्गीकृत किया, और पिछड़े वर्गों के लिए मुफ्त प्राथमिक शिक्षा की शुरुआत की। महाराजा मूलमथिरुनल राम वर्मा के शासनकाल में विक्टोरिया मेडिकल स्कूल, लड़कियों के लिए एक सामान्य स्कूल और संस्कृत कॉलेज सहित विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना हुई। किशोर अपराधियों के लिए सुधार विद्यालय स्थापित किए गए, और यूरोपीय देशों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था के साथ तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया।

प्रमुख नेता [संपादित करें]

ईसाई संगठनों ने इस युग के दौरान शैक्षणिक संस्थानों में पर्याप्त निवेश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि, इन प्रयासों के परिणामस्वरूप पहुंच के मामले में अन्य समुदायों के साथ तनाव पैदा हुआ, जिससे शिक्षा पर एकाधिकार बाधित हुआ। हालाँकि, ऐसे संघर्षों ने अन्य धार्मिक संगठनों को शिक्षा क्षेत्र में अपनी भागीदारी पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया। इन संस्थाओं में प्रमुख थे नायर सर्विस समाजम (एनएसएस) , श्री नारायण धर्म परिपालन योगम (एसएनडीपी योगम), और मुस्लिम एजुकेशन सोसाइटी (एमईएस) । इन संगठनों के लिए सरकारी समर्थन के स्तर में समय के साथ उतार-चढ़ाव आया, जो पिछले कुछ वर्षों में इन विकासों पर सरकार के परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय विकास को दर्शाता है। 1915 में करुकाचल इंग्लिश स्कूल की स्थापना ने शिक्षा के क्षेत्र में एनएसएस के प्रवेश को चिह्नित किया। [23] उस समय शिक्षा क्षेत्र में प्रमुख नेता कैथोलिक चर्च, नायर सर्विस सोसाइटी, एसएनडीपी योगम, साधु जन परिपालन सभा, मुस्लिम एजुकेशन सोसाइटी (एमईएस) और कुछ व्यक्ति थे। [24]

स्वतंत्रता के बाद का युग [संपादित करें]

1958 के केरल शिक्षा अधिनियम ने शैक्षणिक संस्थानों के बेहतर संगठन और विकास के लिए प्रावधान किया। 1977 में आयोजित पहली आर्थिक जनगणना के अनुसार, केरल के 99.7% गांवों में 2 किलोमीटर (1.2 मील) के भीतर एक प्राथमिक विद्यालय था, 98.6% में 2 किलोमीटर (1.2 मील) के भीतर एक माध्यमिक विद्यालय था और 96.7% में एक हाई स्कूल था। या 5 किलोमीटर (3.1 मील) के भीतर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय। [25] : 62 1991 में, केरल पूर्ण साक्षर के रूप में मान्यता प्राप्त करने वाला भारत का पहला राज्य बन गया, हालांकि उस समय प्रभावी साक्षरता दर केवल 90% थी। [26]

प्रस्तुत करें [संपादित करें]

स्कूल और कॉलेज ज्यादातर सरकार, निजी ट्रस्ट या व्यक्तियों द्वारा चलाए जाते हैं। प्रत्येक स्कूल या तो केरल बोर्ड ऑफ पब्लिक एग्जामिनेशन (KBPE), सेंट्रल बोर्ड फॉर सेकेंडरी एजुकेशन (CBSE), इंडियन सर्टिफिकेट ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन (ICSE), या (NIOS) से संबद्ध है । अधिकांश निजी स्कूलों में शिक्षा की भाषा अंग्रेजी है, जबकि सरकारी स्कूल अंग्रेजी या मलयालम को शिक्षा के माध्यम के रूप में पेश करते हैं। कर्नाटक और तमिलनाडु की सीमा से लगे जिलों में सरकार द्वारा संचालित स्कूल भी कन्नड़ या तमिल भाषाओं में शिक्षा प्रदान करते हैं । मुट्ठी भर सरकारी संस्कृत स्कूल मलयालम, अंग्रेजी, तमिल या कन्नड़ के अलावा संस्कृत में शिक्षा प्रदान करते हैं। 10 साल की माध्यमिक स्कूली शिक्षा के बाद, छात्र आमतौर पर तीन धाराओं- उदार कला , वाणिज्य या विज्ञान में से एक में उच्च माध्यमिक विद्यालय में दाखिला लेते हैं । आवश्यक पाठ्यक्रम पूरा करने पर, छात्र सामान्य या व्यावसायिक डिग्री कार्यक्रमों में दाखिला ले सकते हैं। वर्ष 2006-2007 में भारत के 21 प्रमुख राज्यों में शिक्षा विकास सूचकांक (ईडीआई) में केरल शीर्ष पर रहा। [27] जनवरी 2016 में, केरल अपने साक्षरता कार्यक्रम अथुल्यम के माध्यम से 100% प्राथमिक शिक्षा हासिल करने वाला पहला भारतीय राज्य बन गया। [28] मार्च 2020 तक राज्य के संगठित क्षेत्र, सार्वजनिक और निजी दोनों में कुल कर्मचारियों का लगभग 18% शैक्षिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। [29] केरल भी उन भारतीय राज्यों में से एक है जो बड़ा हिस्सा खर्च करते हैं। शैक्षिक और स्वास्थ्य देखभाल उत्थान सहित मानव संसाधन विकास के लिए इसका राजस्व। इसके अलावा यह ज्यादातर साक्षर है [29]

2006-2007 में, राज्य भारत के 21 प्रमुख राज्यों के शिक्षा विकास सूचकांक (ईडीआई) में शीर्ष पर था। [30] 2007 तक , प्रारंभिक शिक्षा में नामांकन लगभग 100% था; और, भारत के अन्य राज्यों के विपरीत, शैक्षिक अवसर लिंगों, सामाजिक समूहों और क्षेत्रों के बीच लगभग समान रूप से वितरित थे। [31] 2011 की जनगणना के अनुसार, केरल में 93.9% साक्षरता है, जबकि राष्ट्रीय साक्षरता दर 74.0% है। [32]

जनवरी 2016 में, केरल अपने अतुल्यम साक्षरता कार्यक्रम के माध्यम से 100% प्राथमिक शिक्षा हासिल करने वाला पहला भारतीय राज्य बन गया। [33] हालांकि केरल में शिक्षा की लागत आमतौर पर कम मानी जाती है, [34] राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (2004-2005) के 61वें दौर के अनुसार , ग्रामीण परिवारों द्वारा शिक्षा पर प्रति व्यक्ति खर्च ₹ 41 (केरल के लिए 51¢ यूएस), राष्ट्रीय औसत से दोगुने से भी अधिक। सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि केरल में शिक्षा पर घरेलू खर्च में ग्रामीण-शहरी अंतर शेष भारत की तुलना में बहुत कम है। [35]

संरचना और शैक्षिक प्राधिकरण [संपादित करें]

केरल में स्कूल और कॉलेज सरकारी या निजी ट्रस्टों और व्यक्तियों द्वारा चलाए जाते हैं। केरल में सभी स्कूल सामान्य शिक्षा विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में हैं और जिसके तहत सामान्य शिक्षा निदेशालय सबसे बड़ा प्रशासनिक छत्र है। सामान्य शिक्षा निदेशक (तत्कालीन सार्वजनिक निर्देश निदेशक) स्कूल प्रशासन का प्रशासनिक प्रमुख होता है। अधिकांश पब्लिक स्कूल एससीईआरटी केरल से संबद्ध हैं । एससीईआरटी से संबद्ध 15,892 स्कूल हैं, जिनमें से 5,986 सरकारी स्कूल हैं , 8,183 सहायता प्राप्त स्कूल हैं, और बाकी या तो गैर-सहायता प्राप्त या तकनीकी स्कूल हैं। [36] प्रत्येक स्कूल या तो राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, केरल (एससीईआरटी केरल), केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई), भारतीय माध्यमिक शिक्षा प्रमाणपत्र (आईसीएसई), या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान से संबद्ध है । एनआईओएस), हालांकि राज्य के कुछ स्कूल कैम्ब्रिज इंटरनेशनल एग्जामिनेशन के आईजीसीएसई पाठ्यक्रम की पेशकश करते हैं। अधिकांश निजी स्कूलों में शिक्षा की भाषा अंग्रेजी है, लेकिन सरकारी स्कूल अंग्रेजी और मलयालम दोनों को माध्यम के रूप में पेश करते हैं। 10 साल की माध्यमिक स्कूली शिक्षा के बाद, छात्र आमतौर पर तीन धाराओं- मानविकी , वाणिज्य या विज्ञान में से एक में उच्च माध्यमिक विद्यालय में दाखिला लेते हैं । आवश्यक पाठ्यक्रम पूरा करने पर, छात्र सामान्य या व्यावसायिक डिग्री कार्यक्रमों में दाखिला ले सकते हैं। बहुत सारे निजी शैक्षणिक और प्रशिक्षण संस्थान, कैरियर कॉलेज आदि भी हैं जो किसी अधिकृत निकाय के विनियमन के साथ और उसके बिना चलते हैं, और कई प्राधिकरण निकाय के नाम के साथ हैं जो सरकार से संबंधित मान्यता प्राप्त निकाय जैसे "ग्रामीण संबद्ध स्वास्थ्य देखभाल कौशल परिषद" के समान लगते हैं। भारत के" या प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में छात्रों को यह विश्वास दिलाने के लिए धोखा दिया जाता है कि उनके द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम मान्यता प्राप्त और मान्यता प्राप्त हैं। इन कार्यक्रमों की प्रमुख विशेषता यह है कि इन्हें आगे की शैक्षणिक गतिविधियों के लिए मान्यता नहीं दी जाती है। भारत सेवक समाज (बीएसएस), राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी), केरल कौशल उत्कृष्टता अकादमी (केएएसई), केरल राज्य रट्रोनिक्स इत्यादि जैसे समानांतर मान्यता प्राप्त निकायों के माध्यम से प्रदान किए जाने वाले कई कार्यक्रम आवश्यक अखंडता के साथ नहीं चलाए जाते हैं, और इसलिए ऐसे कार्यक्रमों के माध्यम से लिए गए पाठ्यक्रम हस्तांतरणीय नहीं हैं।

केरल में स्कूली शिक्षा [संपादित करें]

यह अनुभाग को सत्यापन **के लिए अतिरिक्त प्रशंसा पत्र की जरूरत है ।** कृपया इस अनुभाग में विश्वसनीय स्रोतों से उद्धरण जोड़कर इस लेख को बेहतर बनाने में मदद करें। **बिना सूत्रों की सामग्री को चुनौति देकर हटाया जा सकता है।** *(जून 2023) (जाने कि इस टेम्पलेट संदेश को कैसे और कब हटाना है)*

ऐसी कई सरकारी एजेंसियां हैं जो केरल में स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता का समर्थन करती हैं। सामान्य शिक्षा निदेशालय स्कूल शिक्षा की सर्वोच्च प्रशासनिक शाखा है। अन्य एजेंसियां एससीईआरटी (राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद), एसएसके (समग्र शिक्षा केरल), काइट, एसआईईएमएटी (राज्य शैक्षिक प्रबंधन और प्रशिक्षण संस्थान), एसआईईटी (राज्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान) हैं। KITE केरल केरल सरकार के शिक्षा विभाग के तहत एक राज्य स्वामित्व वाली विशेष प्रयोजन कंपनी है । [39] [40] इसे राज्य के स्कूलों में आईसीटी सक्षम शिक्षा का समर्थन करने के लिए विकसित किया गया था। पूर्ववर्ती IT@School प्रोजेक्ट को अगस्त 2017 में अपने संचालन के दायरे को बढ़ाने के लिए KITE में बदल दिया गया था। [41] [42] केरल पहला भारतीय राज्य है, जिसके सभी पब्लिक स्कूलों में हाई-टेक कक्षाओं के साथ ICT-सक्षम शिक्षा है। [43] [44] 2019 में नीति आयोग द्वारा प्रकाशित *स्कूल शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक* में केरल शीर्ष पर है। [45]

सेंटर फॉर सोशियो-इकोनॉमिक एंड एनवायर्नमेंटल स्टडीज के 1999 के एक अध्ययन के अनुसार, प्राथमिक विद्यालयों में ड्रॉपआउट दर काफी कम थी। हालाँकि, अध्ययन में पाया गया कि केरल में नौवीं और दसवीं कक्षा में स्कूल छोड़ने की दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यह विशेष रूप से एससी/एसटी छात्रों के लिए सच था। स्कूलों ने दिखाया कि पहली कक्षा में शामिल होने वाले केवल 73% छात्र ही 10वीं कक्षा तक पहुँच पाते हैं। अनुसूचित जाति के छात्रों के मामले में, केवल 59% ही 10वीं कक्षा तक पहुंचे। अनुसूचित जनजाति के 60% छात्र 10वीं कक्षा तक पढ़ाई छोड़ देते हैं। [46] मार्च 2011 में, 91.37% छात्रों ने मैट्रिक परीक्षा में उच्च अध्ययन के लिए अर्हता प्राप्त की। एसएसएलसी परीक्षा के ग्रेड केरल के कॉलेजों में प्रवेश प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। [47]

केरल में, स्कूली शिक्षा को तीन चरणों में विभाजित किया गया है, अर्थात्,

प्राथमिक शिक्षा [संपादित करें]

- निम्न प्राथमिक (एलपी) (कक्षा 1-4)
- उच्च प्राथमिक (यूपी) (कक्षा 5-7)

माध्यमिक शिक्षा या हाई स्कूल [संपादित करें]

- माध्यमिक (एचएस) (कक्षा 8-10)

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा [संपादित करें]

- उच्चतर माध्यमिक (HSS) (कक्षा XI-XII) (+1 और +2)

व्यावसायिक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा (वीएचएसई) [संपादित करें]

वीएचएसई उच्च माध्यमिक स्तर (11वीं और 12वीं कक्षा) में छात्रों को नौकरी-उन्मुख पाठ्यक्रम प्रदान करता है और इसका उद्देश्य उन्हें रोजगार के लिए व्यावहारिक कौशल और प्रशिक्षण प्रदान करना है। वीएचएसई पाठ्यक्रम छात्रों को कृषि, वाणिज्य, इंजीनियरिंग, स्वास्थ्य विज्ञान, मानविकी और प्रौद्योगिकी जैसे विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट व्यावसायिक कौशल से लैस करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं। इन पाठ्यक्रमों का उद्देश्य छात्रों को उनकी उच्च माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के बाद तत्काल रोजगार के लिए तैयार करना है।

केरल में उच्च शिक्षा [संपादित करें]

यह भी देखें: केरल में उच्च शिक्षा संस्थानों की सूची

यह अनुभाग को सत्यापन **के लिए अतिरिक्त प्रशंसा पत्र की जरूरत है ।** कृपया इस अनुभाग में विश्वसनीय स्रोतों से उद्धरण जोड़कर इस लेख को बेहतर बनाने में मदद करें। **बिना सूत्रों की सामग्री को चुनौति देकर हटाया जा सकता है।** *(जून 2023) (जानें कि इस टेम्पलेट संदेश को कैसे और कब हटाना है)*

उच्च शिक्षा विभाग राज्य में उच्च शिक्षा के समग्र प्रशासन और विकास के लिए जिम्मेदार है। यह उच्च शिक्षा से संबंधित नीतियां, योजनाएं बनाता है और कार्यक्रम लागू करता है।

विशिष्ट संस्थान [संपादित करें]

उच्च शिक्षा के विशिष्ट संस्थान इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कृषि, वास्तुकला और फार्मेसी जैसे क्षेत्रों में विशेषज्ञता रखते हैं। इस श्रेणी में कुछ उल्लेखनीय संस्थानों में भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम) कोझिकोड, राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एनआईटी) कालीकट, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) मंगलापुरम, और इंजीनियरिंग कॉलेज, तिरुवनंतपुरम शामिल हैं।

विश्वविद्यालय [संपादित करें]

केरल में कई विश्वविद्यालय हैं जो विभिन्न विषयों में स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट कार्यक्रम प्रदान करते हैं। राज्य के कुछ प्रमुख विश्वविद्यालयों में शामिल हैं:

- केरल विश्वविद्यालय : 1937 में स्थापित, यह केरल के सबसे पुराने विश्वविद्यालयों में से एक है, जो कला, विज्ञान, वाणिज्य, कानून, इंजीनियरिंग और अन्य क्षेत्रों में कार्यक्रमों की एक विस्तृत श्रृंखला पेश करता है।
- महात्मा गांधी विश्वविद्यालय : कोट्टायम में स्थित, यह विश्वविद्यालय कला, विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन, कानून, सामाजिक विज्ञान और व्यावहारिक विज्ञान में कार्यक्रम प्रदान करता है।
- कालीकट विश्वविद्यालय : मलप्पुरम में स्थित, यह मानविकी, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, प्रबंधन और स्वास्थ्य विज्ञान में कार्यक्रम प्रदान करता है।
- कोचीन विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय : CUSAT के रूप में जाना जाता है, यह विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और प्रबंधन में कार्यक्रम पेश करने वाला एक विशेष विश्वविद्यालय है।
- कन्नूर विश्वविद्यालय :
- श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय :
- एपीजे अब्दुल कलाम प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय :

सरकारी और निजी कॉलेज [संपादित करें]

केरल में विश्वविद्यालयों से संबद्ध कई सरकारी और निजी कॉलेज हैं। ये कॉलेज कला, विज्ञान, वाणिज्य, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कानून, प्रबंधन और अन्य विषयों में स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं।

स्वायत्त महाविद्यालय [संपादित करें]

केरल में कई स्वायत्त कॉलेज हैं जिन्हें अपना पाठ्यक्रम डिजाइन करने, परीक्षा आयोजित करने और डिग्री प्रदान करने की स्वतंत्रता है। ये कॉलेज अक्सर अकादमिक उत्कृष्टता के लिए ख्याति रखते हैं और विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम पेश करते हैं।

पॉलिटेक्निक कॉलेज [संपादित करें]

केरल में पॉलिटेक्निक कॉलेजों का एक नेटवर्क है जो इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी और संबद्ध विषयों में डिप्लोमा और प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम प्रदान करता है। ये कॉलेज व्यावहारिक और तकनीकी शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

छात्र आप्रवासन और प्रतिभा पलायन [संपादित करें]

2000 के दशक के मध्य से, शिक्षा की पहुंच और गुणवत्ता की कमी के कारण केरल से छात्रों का दूसरे राज्यों में पलायन करने का चलन रहा है। 2010 के मध्य से, स्थायी आप्रवासन के उद्देश्य से पढ़ाई के लिए केरल से छात्रों के दूसरे देशों में प्रवास करने की प्रवृत्ति देखी गई है। यह चलन 2020 में बदलना शुरू हुआ, क्योंकि प्लस टू या स्कूली शिक्षा पूरी करने वाले छात्र पढ़ाई के लिए पलायन करने लगे। यह बदलाव केरल की उच्च शैक्षणिक योग्यताओं को समकक्ष के रूप में अंतरराष्ट्रीय मान्यता की कमी और केरल के भीतर गुणवत्तापूर्ण नौकरी के अवसरों की सीमित उपलब्धता के कारण प्रेरित पाया गया है। यह देश की बिगड़ती सामाजिक और राजनीतिक आर्थिक स्थिति, टिकाऊ जीवन जीने के अवसर की कमी, और सभी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के परिवारों और व्यक्तियों की जरूरतों को शामिल करने की राज्य की क्षमता और नवाचार करने और रुझानों को पकड़ने की क्षमता की कमी के कारण प्रचलित हो गया है। आधुनिक उच्च शिक्षा जो आबादी की जरूरतों को पूरा करती है। इसके अतिरिक्त, विदेशों में अनियंत्रित और शिकारी अध्ययन एजेंसियों का उदय, जो हर प्रमुख कस्बे और शहरों में गुणात्मक और सक्षम लाभ की पेशकश करते हैं जो अक्सर असत्य होते हैं, स्थिति को और खराब कर देते हैं। आधी सदी से भी अधिक समय तक, शिक्षित नर्सें और आईटी पेशेवर अप्रवासियों के नियमित स्रोत थे। हालाँकि, इस क्षेत्र में कुशल श्रमिकों की माँग में बदलाव ने स्थिति बदल दी है। केवल एक वर्ष के अनुभव वाली नर्सें अब स्थायी रूप से विदेश में प्रवास

कर सकती हैं। इसी तरह, कंप्यूटर विज्ञान इंजीनियर अन्य राज्यों में अनुबंध कंपनियों के विस्तार की कार्यबल आवश्यकताओं के साथ-साथ ऐसे क्षेत्रों में उपलब्ध जीवनशैली के अवसरों की ओर आकर्षित होते हैं। जो लोग इन मील के पत्थर को हासिल करने में असमर्थ हैं, वे अपने क्षेत्र में फिर से शिक्षित होने, अपनी संभावनाओं में सुधार करने और केरल में बढ़ती ओपो सेडे पीढ़ी में शामिल होने से बचने के लिए विदेश में अध्ययन करने का विकल्प चुन रहे हैं। 2021 में, यह अनुमान लगाया गया था कि लगभग 30,000 केरलवासी छात्र उच्च शिक्षा के लिए अकेले भारत से पलायन करते हैं। विदेशों में प्रवास करने वाले केरलवासियों की संख्या भी महत्वपूर्ण है। अध्ययनों से पता चला है कि अधिकांश छात्र गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए पलायन नहीं कर रहे हैं, वे स्थायी रूप से वहां प्रवास करने के उद्देश्य से इन विदेशी देशों में समानांतर कॉलेजों और राज्य-मान्यता प्राप्त कॉलेजों से शिक्षा का चयन कर रहे हैं। केरल उन छात्रों को आकर्षित करने और बनाए रखने के लिए उच्च शिक्षा में बदलाव लाने की योजना बना रहा है जो उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उत्तीर्ण करते हैं और आप्रवासन करते हैं क्योंकि इसका राज्य के शैक्षणिक संस्थानों की आय और राष्ट्रीय विकास हासिल करने पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। [48]उनमें से, राज्य मुख्य रूप से कार्यक्रमों के लिए अपनी प्रवेश आधार रेखा को 50% तक शिथिल करने और कार्यक्रमों के लिए आवश्यक न्यूनतम उत्तीर्ण प्रतिशत 60% करने की योजना बना रहा है, यह सुनिश्चित करते हुए कि सभी पर विचार किया जाए और उन्हें शिक्षा के माध्यम से बेहतर जीवन प्राप्त करने का मौका दिया जाए। वे उच्च शिक्षा कार्यक्रमों में पारंपरिक क्रॉस-एंट्री प्रतिबंधों को हटाने की भी योजना बना रहे हैं, जिससे छात्रों को नौकरी के क्षेत्रों पर कब्जा करने में सक्षम बनाया जा सके, और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अवसर और छात्र क्षमता दोनों को बढ़ाने के लिए अपने कार्यक्रम पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रियाओं को लोकप्रिय अध्ययन-विदेश स्थानों में पुनर्गठित और मिलान किया जा सके। मानक. इसके अतिरिक्त, उनका उद्देश्य गुणवत्तापूर्ण जनशक्ति की उपलब्धता की तलाश कर रहे विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए पेशेवर शिक्षा क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानकीकृत त्वरित स्नातक कार्यक्रम और लघु मास्टर कार्यक्रम बनाना, छात्र आबादी को बढ़ाने के लिए आधुनिक शैक्षिक वितरण संरचनाओं के साथ उद्योग से संबंधित और आधुनिक कार्यक्रम विकसित करना है (के-रीप)), और विदेश में शिकारी अध्ययन एजेंसियों और उनके विज्ञापनों को विनियमित करने के लिए। [48] [49] केरल का लक्ष्य ऐसे उभरते कार्यक्रम बनाना भी है जो छात्रों को केरल में रहकर पढ़ाई करने और गुणात्मक करियर खोजने के लिए आकर्षित कर सकें, एमओयू के माध्यम से पढ़ाई के साथ-साथ काम शुरू करने का अवसर दे सकें, कक्षा के आकार को कम कर सकें, छात्र कल्याण सुविधाओं को बढ़ा सकें और सेवाएँ, और शैक्षिक सेवाएँ प्रदान करने में योग्यता बढ़ाने के लिए प्रोफेसरों को प्रशिक्षण प्रदान करना। सरकार ने कहा कि इन परिवर्तनों का समग्र उद्देश्य नागरिकों की जीवन भर की बेहतर कमाई की क्षमता में सुधार करना और वैश्विक श्रम बाजार में यथार्थवादी एजेंसी प्रदान करना है, जिससे व्यक्तियों और पूरे देश दोनों को लाभ होगा। [50] [51]

क्षेत्र के अनुसार उच्च शिक्षा [संपादित करें]

तिरुवनंतपुरम [संपादित करें]

तिरुवनंतपुरम , राज्य का प्रमुख शैक्षणिक केंद्र, केरल विश्वविद्यालय और कई व्यावसायिक शिक्षा कॉलेज, जिनमें 15 इंजीनियरिंग कॉलेज, तीन मेडिकल कॉलेज, तीन आयुर्वेद कॉलेज, होम्योपैथी के दो कॉलेज , छह अन्य मेडिकल कॉलेज और कई लॉ कॉलेज शामिल हैं। [52] केरल के प्रमुख स्वास्थ्य संस्थान, देश के सर्वश्रेष्ठ संस्थानों में से एक, त्रिवेन्द्रम मेडिकल कॉलेज को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) का दर्जा दिया जा रहा है। [53] इंजीनियरिंग कॉलेज, त्रिवेन्द्रम राज्य के प्रमुख इंजीनियरिंग संस्थानों में से एक है। एशियन स्कूल ऑफ बिजनेस और IIITM-K शहर के दो अन्य प्रमुख प्रबंधन अध्ययन संस्थान हैं, दोनों टेक्नोपार्क के अंदर स्थित हैं । भारत में अपनी तरह का पहला भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान भी यहीं स्थित है और एक भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान, तिरुवनंतपुरम भी स्थापित किया जा रहा है। तिरुवनंतपुरम जिले में केरल में सबसे अधिक कॉलेज और स्कूल हैं, जिनमें 4 अंतर्राष्ट्रीय स्कूल, 30 पेशेवर कॉलेज और 38 व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान शामिल हैं। [प्रशस्ति - पत्र आवश्यक]

तिरुवनंतपुरम इसरो , आईआईएसईआर , ब्रह्मोस एयरोस्पेस प्राइवेट लिमिटेड , विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर (वीएसएससी), सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज (सीडीएस), लिक्विड प्रोपल्शन सिस्टम सेंटर (एलपीएससी), थुम्बा इक्वेटोरियल रॉकेट लॉन्चिंग सहित केरल के अधिकांश अनुसंधान केंद्रों का भी घर है। स्टेशन (TERLS) आदि इंजीनियरिंग कॉलेज, त्रिवेन्द्रम देश के प्रमुख इंजीनियरिंग संस्थानों में से एक है। एशियन स्कूल ऑफ बिजनेस और IIITM-K शहर के दो अन्य प्रमुख प्रबंधन अध्ययन संस्थान हैं, दोनों टेक्नोपार्क के अंदर स्थित हैं । भारतीय अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी संस्थान, भारत में अपनी तरह का अनोखा और पहला संस्थान, राज्य की राजधानी में स्थित है।

त्रिवेन्द्रम में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र [संपादित करें]

तिरुवनंतपुरम अंतरिक्ष विज्ञान , सूचना प्रौद्योगिकी , जैव-प्रौद्योगिकी और चिकित्सा के क्षेत्र में एक अनुसंधान और विकास केंद्र है । यह भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थान , विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (वीएसएससी), तरल प्रणोदन प्रणाली केंद्र (एलपीएससी), थुंबा इक्वेटोरियल रॉकेट लॉन्चिंग स्टेशन (टीईआरएलएस), भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईएसटी), राजीव का घर है। गांधी सेंटर फॉर बायोटेक्नोलॉजी (आरजीसीबी), ट्रॉपिकल बॉटनिकल गार्डन एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट , ईआर एंड डीसी - सीडीएसी , सीएसआईआर - नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी साइंस एंड टेक्नोलॉजी , फ्री सॉफ्टवेयर फाउंडेशन ऑफ इंडिया (एफएसएफआई), रीजनल कैंसर सेंटर (आरसीसी), श्री चित्रा थिरुनल इंस्टीट्यूट ऑफ चिकित्सा विज्ञान और प्रौद्योगिकी (एससीटीआईएमएसटी), पृथ्वी विज्ञान अध्ययन केंद्र (सीईएसएस), केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान (सीटीसीआरआई), प्रियदर्शिनी तारामंडल, ओरिएंटल अनुसंधान संस्थान और पांडुलिपि पुस्तकालय , मुख्य रोग जांच कार्यालय (सीडीआईओ) पालोड, केरल राजमार्ग अनुसंधान संस्थान , केरल मत्स्य अनुसंधान संस्थान, आदि। बायोमेडिकल उपकरणों और अंतरिक्ष

इलेक्ट्रॉनिक्स के अनुसंधान और विकास के लिए राष्ट्रीय आणविक सामग्री केंद्र नामक एक वैज्ञानिक संस्थान तिरुवनंतपुरम में स्थापित किया जाना है। [54] कॉलेज ऑफ आर्किटेक्चर तिरुवनंतपुरम (सीएटी), जो केवल आर्किटेक्चर पाठ्यक्रम में विशेषज्ञता रखता है, शहर के उपनगरों में स्थापित करने के लिए प्रस्तावित एक और संस्थान है। [55]

कोल्लम [संपादित करें]

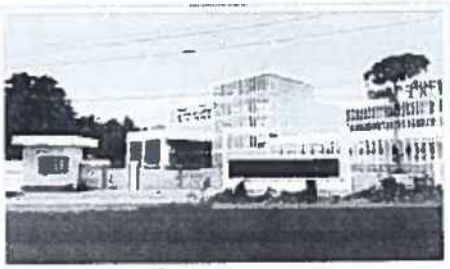
चवारा में IIIC-कोल्लम

कोल्लम शहर और इसके उपनगरों में मेडिकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, व्यवसाय प्रबंधन संस्थान, वास्तुशिल्प संस्थान, फैशन, डिजाइन, निर्माण अध्ययन और समुद्री अध्ययन से संबंधित राज्य संस्थान सहित बहुत सारे शैक्षणिक संस्थान हैं। कारिकोड में थंगल कुंजू मुसलियार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग भारत की आजादी के बाद पहला सरकारी सहायता प्राप्त इंजीनियरिंग संस्थान है और राज्य में अपनी तरह का पहला संस्थान है। गवर्नमेंट मॉडल बॉयज़ हायर सेकेंडरी स्कूल और माउंट कार्मेल एंग्लो-इंडियन स्कूल जिले के सबसे पुराने माध्यमिक विद्यालयों में से हैं। अमृता विश्व विद्यापीठम कोल्लम महानगरीय क्षेत्र के अमृतपुरी में अपने कला और विज्ञान, आयुर्वेद, जैव प्रौद्योगिकी, व्यवसाय, इंजीनियरिंग और सामाजिक कार्य संस्थान चला रहा है । [56] केंद्रीय विद्यालय रामनकुलंगरा में , चिन्मय विद्यालय चंदनथोप में , जवाहर नवोदय विद्यालय कोट्टारक्कारा में स्थित है । शहर के केंद्र में कई प्रमुख कला और विज्ञान, कानून, इंजीनियरिंग और प्रबंधन शिक्षा संस्थान स्थित हैं, जैसे फातिमा माता नेशनल कॉलेज , एसएन कॉलेज, एसएन लॉ कॉलेज , बिशप जेरोम इंस्टीट्यूट आदि। [57] [58] कोल्लम सरकारी मेडिकल परिप्पल्ली में कॉलेज , [59] मेवाराम में त्रावणकोर मेडिकल कॉलेज अस्पताल [60] और मयन्नूर में अज़ीज़िया मेडिकल कॉलेज [61] जिले के 3 चिकित्सा संस्थान हैं।

चंदनथोपे में केरल राज्य डिजाइन संस्थान

श्री नारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय , नारायण गुरु के नाम पर राज्य का अपना खुला विश्वविद्यालय है, जिसका मुख्यालय कोल्लम शहर में है। [62]

राज्य के स्वामित्व वाले संस्थान अर्थात् इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ इंफ्रास्ट्रक्चर एंड कंस्ट्रक्शन , [63] इंस्टीट्यूट ऑफ फैशन टेक्नोलॉजी केरल , [64] केरल मैरीटाइम इंस्टीट्यूट [65] [66] और केरल स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन [67] कोल्लम शहर के बाहरी इलाके में स्थित हैं। .

कॉलेजों के अलावा, कोल्लम शहर में कई बैंक कोचिंग सेंटर हैं। [68] कोल्लम को भारत में बैंक परीक्षण कोचिंग केंद्रों के केंद्र के रूप में जाना जाता है और जिले में ऐसे लगभग 40 संस्थान हैं। भारत के विभिन्न राज्यों जैसे तमिलनाडु , कर्नाटक , आंध्र प्रदेश , बिहार और मध्य प्रदेश से भी छात्र यहां कोचिंग के लिए आते हैं। [69]

कोट्टायम [संपादित करें]

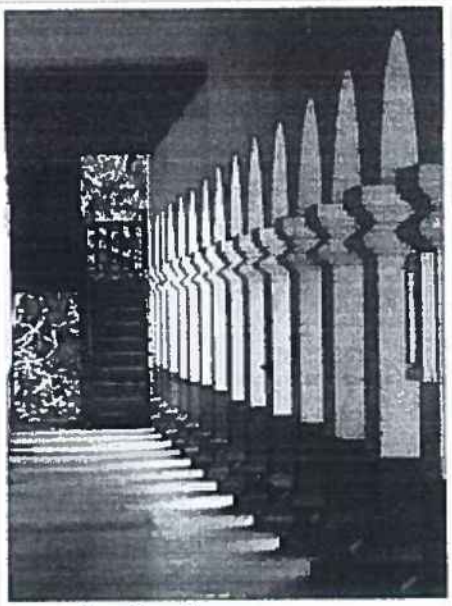
1817 में स्थापित सीएमएस कॉलेज , कोट्टायम , भारत का पहला पश्चिमी

कोट्टायम एक मुख्य शैक्षिक केंद्र के रूप में भी कार्य करता है। 1991 की जनगणना के अनुसार, केरल का कोट्टायम जिला पूरे भारत में पूर्ण साक्षरता दर हासिल करने वाला पहला जिला है । राजीव गांधी प्रौद्योगिकी संस्थान कोट्टायम (सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेज) राज्य के कुछ विशिष्ट इंजीनियरिंग संस्थानों में से एक है। महात्मा गांधी विश्वविद्यालय , सीएमएस कॉलेज , केआर नारायणन नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ विजुअल साइंस एंड आर्ट्स , मेडिकल कॉलेज, कोट्टायम , अल्फोंसा कॉलेज, पाला, बेसलियस कॉलेज, कोट्टायम, [70] बीसीएम कॉलेज, कोट्टायम, [71] बीके कॉलेज, कोट्टायम, केई कॉलेज , गवर्नमेंट कॉलेज कोट्टायम, देव माथा कॉलेज, कुराविलंगड , मन्नानम, केजी कॉलेज, पम्पाडी, सेंटगिट्स कॉलेज, पथमुट्टम, सेंट बर्चमैन्स कॉलेज, [72] चंगनास्सेरी, असेम्प्शन कॉलेज, चंगनास्सेरी , सेंट थॉमस कॉलेज, पाला , सेंट डोमिनिक्स कॉलेज, कांजीरापल्ली, अमल ज्योति कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, कांजीरापल्ली जिले के कुछ महत्वपूर्ण शैक्षणिक संस्थान हैं। लूर्डेस पब्लिक स्कूल और जूनियर कॉलेज , गिरिदीपम बेथनी स्कूल, श्री कुमारमंगलम पब्लिक स्कूल और मैरियन सीनियर सेकेंडरी स्कूल, कोट्टायम जिले के सबसे प्रतिष्ठित माध्यमिक विद्यालय हैं।

पथानामथिट्टा [संपादित करें]

पथानामथिट्टा जिले के अधिकांश कॉलेज अडूर , तिरुवल्ला , रन्नी और पथानामथिट्टा में हैं

[अस्पष्ट]

शैली का कॉलेज और सबसे पुराने कॉलेजों में से एक है।

इडुक्की [संपादित करें]

इस जिले की विशेषता केरल की मुख्य भूमि से लोगों और पड़ोसी राज्य तमिलनाडु से मजदूरों का बड़े पैमाने पर प्रवासन है।

गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज, इडुक्की , जवाहरलाल नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ आर्ट्स एंड साइंस , कट्टप्पना, कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग मुन्नार , कॉलेज ऑफ एप्लाइड साइंस, कट्टप्पन, गवर्नमेंट कॉलेज, एमईएस कॉलेज नेदुमकंदम, कट्टप्पन मैरियन कॉलेज, कुट्टिकनम, मार बेसलियस कॉलेज, कुट्टिकनम, कुछ हैं जिले के महत्वपूर्ण शिक्षण संस्थान

एर्नाकुलम/कोच्चि [संपादित करें]

- कोचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
- श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय
- केंद्रीय समुद्री मत्स्य पालन अनुसंधान संस्थान
- केरल मत्स्य पालन और महासागर अध्ययन विश्वविद्यालय
- सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फिशरीज नॉटिकल एंड इंजीनियरिंग ट्रेनिंग
- उन्नत कानूनी अध्ययन के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय
- राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, भारत
- नौसेना भौतिक और समुद्र विज्ञान प्रयोगशाला
- केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान

केरल कृषि विश्वविद्यालय से संबद्ध मत्स्य पालन महाविद्यालय शहर के उपनगरीय क्षेत्र पनांगड में स्थित है। एर्नाकुलम जिले का एक गांव पोथानिकड भारत का पहला पंचायत है जिसने 100% साक्षरता हासिल की है। [73] श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय (एसएसयूएस), जिसे संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से भी जाना जाता है, एर्नाकुलम जिले के उत्तरी हिस्से में कलाडी में स्थित है।

त्रिशूर [संपादित करें]

सेंट थॉमस कॉलेज, त्रिशूर पूर्व कोचीन रियासत और वर्तमान त्रिशूर जिले का सबसे पुराना कॉलेज है । यह मद्रास विश्वविद्यालय के तहत प्रथम श्रेणी के कॉलेज के रूप में मान्यता प्राप्त दूसरा गैर-सरकारी कॉलेज (यूनियन क्रिश्चियन कॉलेज, अलुवा पहला) है, जिसमें त्रावणकोर , कोचीन और मालाबार की तत्कालीन रियासतें शामिल हैं, जो बाद में ज्यादातर बन गईं। केरल का वर्तमान भौगोलिक क्षेत्र .

केरल कृषि विश्वविद्यालय का मुख्यालय त्रिशूर में है

आज, त्रिशूर केरल के एक महत्वपूर्ण शिक्षा केंद्र के रूप में कार्य करता है। शहर में तीन मेडिकल कॉलेज हैं। यह एकमात्र जिला है जिसमें चार विश्वविद्यालय हैं: केरल कृषि विश्वविद्यालय , केरल स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय , केरल कलामंडलम , और केरल स्थानीय प्रशासन संस्थान (KILA)।

केरल इंस्टीट्यूट ऑफ लोकल एडमिनिस्ट्रेशन केरल का एकमात्र शैक्षणिक संस्थान है जहां आईएएस उम्मीदवारों के लिए प्रशिक्षण होता है। त्रिशूर में केरल पुलिस अकादमी, केंद्रीय उत्पाद शुल्क अकादमी, केरल वन अनुसंधान संस्थान और केएयू के तहत अनुसंधान संस्थान हैं।

त्रिशूर जिले में केरल के कुछ प्रमुख संस्थान हैं जैसे सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेज , सरकारी कॉलेज। लॉ कॉलेज , आयुर्वेद कॉलेज , सरकार। ललित कला महाविद्यालय , पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान महाविद्यालय , श्री राम वर्मा संगीत विद्यालय आदि। त्रिशूर इंजीनियरिंग और चिकित्सा के लिए प्रवेश परीक्षाओं के लिए कोचिंग का एक मुख्य केंद्र था।

सेंट जोसेफ कॉलेज, इरिंजलाकुडा , त्रिशूर केरल राज्य में सरकारी सहायता प्राप्त बी.एससी. की पेशकश करने वाला एकमात्र संस्थान है। जैव प्रौद्योगिकी कार्यक्रम. [74]

पलक्कड़ [संपादित करें]

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, पलक्कड़

पलक्कड़ शहर केरल में एकमात्र भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान का घर है। 1866 में स्थापित गवर्नमेंट विक्टोरिया कॉलेज, पलक्कड़ , राज्य के सबसे पुराने कॉलेजों में से एक है। 2014 में शुरू हुआ सरकारी मेडिकल कॉलेज, पलक्कड़ जिले का पहला सरकारी मेडिकल कॉलेज है। अकाथेथारा में एनएसएस कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग , सरकारी सहायता प्राप्त इंजीनियरिंग संस्थानों में से एक है और केरल में स्थापित चौथा इंजीनियरिंग संस्थान है । चेम्बई मेमोरियल गवर्नमेंट म्यूजिक कॉलेज राज्य में कर्नाटक संगीत सिखाने में उत्कृष्टता के मुख्य केंद्रों में से एक है। 1964 में स्थापित मर्सी कॉलेज, पलक्कड़ , जिले का पहला महिला कॉलेज है और पलक्कड़ शहर के परिचित संस्थानों में से एक है। गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज, पलक्कड़ श्रीकृष्णपुरम में स्थित है ।

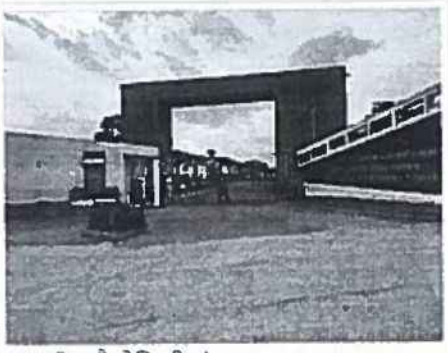

मलप्पुरम [संपादित करें]

- कालीकट विश्वविद्यालय
- मलयालम विश्वविद्यालय
- एएमयू मलप्पुरम परिसर

गवर्नमेंट विक्टोरिया कॉलेज, पलक्कड़ का भौतिकी विभाग । कॉलेज की स्थापना वर्ष 1866 में हुई थी, जो इसे दक्षिण मालाबार के सबसे पुराने कॉलेजों में से एक बनाता है

खगोल विज्ञान और गणित का केरल स्कूल 14 वीं और 16वीं शताब्दी के बीच फला-फूला। खगोलीय समस्याओं को हल करने के प्रयास में, केरल स्कूल ने स्वतंत्र रूप से त्रिकोणमितीय कार्यों के लिए श्रृंखला विस्तार सहित कई महत्वपूर्ण गणित अवधारणाओं का निर्माण किया। [75] [76] केरल स्कूल ऑफ एस्ट्रोनॉमी एंड मैथमेटिक्स *वेत्ताथुनाडु* (तिरूर क्षेत्र) में स्थित था। [75]

पिछले चार दशकों के दौरान मलप्पुरम जिले ने शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रगति हासिल की है वह जबरदस्त है। महिला शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। यह जिला राज्य के उच्च शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह राज्य के दो मुख्य विश्वविद्यालयों का घर है - तेन्हिपलम में केन्द्रित कालीकट विश्वविद्यालय जिसे 1968 में केरल के दूसरे विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित किया गया था, [77] और तिरुर में केन्द्रित थुंचथ एजुथाचन मलयालम विश्वविद्यालय जिसे इसी वर्ष स्थापित किया गया था। 2012. [78] एएमयू मलप्पुरम कैंपस , अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी (एएमयू) के तीन ऑफ-कैंपस केंद्रों में से एक चेरुकारा में स्थित है , जिसे 2010 में एएमयू द्वारा स्थापित किया गया था। [79] [80] एएमयू का एक ऑफ-कैंपस पनाक्कड़ में अंग्रेजी और विदेशी भाषा विश्वविद्यालय कार्य करता है । [81] यह जिला थवनूर में केरल कृषि विश्वविद्यालय के एक उपकेंद्र और तिरुनावया में श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय के एक उपकेंद्र का भी घर है । दारुल हुडा इस्लामिक यूनिवर्सिटी का मुख्यालय चेम्माड , तिरुरंगडी में है । मलप्पुरम में इंकेल ग्रीन्स औद्योगिक क्षेत्र के साथ एक शैक्षिक क्षेत्र प्रदान करता है। [82] मंजेरी में एरनाड नॉलेज सिटी राज्य में अपनी तरह की पहली परियोजना है। [83] एमईएस कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग , कुट्टीपुरम , केरल में स्व-वित्तपोषण क्षेत्र के तहत पहला स्थापित इंजीनियरिंग कॉलेज है, जो एक शहरी परिसर है जो भरतप्पुझा नदी के किनारे एक मील (1.6 किमी) से अधिक तक फैला हुआ है। थावनूर में 1963 में स्थापित केसीएईटी , राज्य का एकमात्र कृषि इंजीनियरिंग संस्थान है। कोट्टक्कल के पास पोट्टिपारा में मानसिक रोग के लिए सरकारी आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान केरल का एकमात्र सरकारी आयुर्वेदिक मानसिक अस्पताल है । यह देश में सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत अपनी तरह का पहला भी है। केरल सरकार के अधीन केरल आयुर्वेदिक अध्ययन और अनुसंधान सोसायटी (केएएसआरएस) कोट्टक्कल के पास एडारिकोड में स्थित है। केरल सरकार ने कोट्टक्कल में एक और विश्वविद्यालय, आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव दिया है ।

2019-20 के स्कूल आंकड़ों के अनुसार, जिले में केरल में सबसे अधिक स्कूल और सबसे अधिक छात्र हैं। यहां 898 निम्न प्राथमिक विद्यालय, [84] 363 उच्च प्राथमिक विद्यालय, [85] इनके अलावा, 120 सीबीएसई स्कूल और 3 आईसीएसई स्कूल हैं।

यह जिला दारुल हुडा इस्लामिक यूनिवर्सिटी और मदीन एजुकेशनल एकेडमी जैसे बड़ी संख्या में धार्मिक शैक्षणिक संस्थानों की भी मेजबानी करता है, जिनके पूरे केरल में 30 से अधिक संबद्ध कॉलेज हैं। [86] (1967) कोंडोट्टी जैसे गैर-लाभकारी संगठनों ने मलप्पुरम के प्रारंभिक ज्ञानोदय के दौरान शैक्षणिक उत्थान को लागू करने में प्रमुख भूमिका निभाई थी। अब दूरदर्शी लोगों के तहत विकसित ऐसे संस्थान अकादमिक विकास में ताज के साथ सदियों से कायम हैं। एआईसी ट्रस्ट के तहत कोंडोट्टी में दारुल हुदा इस्लामिक विश्वविद्यालय, मदीन अकादमी और मरकज़ समूह के संस्थान विज्ञान, साहित्य, भाषा, वाणिज्य और सामाजिक विज्ञान की सभी धाराओं में कई शैक्षणिक संस्थानों के साथ उल्लेखनीय उदाहरण हैं। हाल ही में एआईसीटी के तहत उभरे फेज़ मार्काज़ इंटरनेशनल स्कूल, कोंडोटी जैसे संस्थान आदर्श नागरिक विकसित करने के लिए समाज के सभी स्तरों पर शिक्षा लाने के उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

एएमयू मलप्पुरम कैंपस, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उच्च शिक्षा शिक्षण का केंद्र है , जो चेलामाला की पहाड़ियों पर पेरिंथलमन्ना के चेरुकारा गांव में स्थित है । इसमें 12वीं कक्षा के बाद पांच साल का लॉ कोर्स, ग्रेजुएशन के बाद एमबीए और बीएड की सुविधा है। छात्र इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा के लिए एएमयू परीक्षा नियंत्रक के यहां मार्च माह में आवेदन कर सकते हैं ।

कोझिकोड [संपादित करें]

कोझिकोड केरल का प्रमुख शिक्षा शहर है जो देश के तीन प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों का घर है;

- एनआईटीसी
- आईआईएमके
- रा.इ.सू.प्रौ.सं.
- आईआईएसआर
- सीडब्ल्यूआरडीएम
- केएसओएम

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान कालीकट

जिले के अन्य महत्वपूर्ण शैक्षणिक संस्थानों में कालीकट मेडिकल कॉलेज , गवर्नमेंट लॉ कॉलेज, कालीकट , गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज कोझीकोड, कॉलेज ऑफ एप्लाइड साइंस आईएचआरडी , किलियांड कोझीकोड, कॉलेज ऑफ नर्सिंग कालीकट, गवर्नमेंट शामिल हैं। डेंटल कॉलेज, सहकारी प्रौद्योगिकी संस्थान और सरकार। पॉलिटेक्निक कॉलेज.

वायनाड [संपादित करें]

केरल पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय का मुख्यालय विथिरी के पुकोडे में है ।

केरल पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय , वायनाड

कन्नूर [संपादित करें]

कन्नूर जिले में कन्नूर विश्वविद्यालय है ; (यह एक बहु-परिसर विश्वविद्यालय है, जिसके परिसर कासरगोड, कन्नूर, थालास्सेरी और मंथावडी में हैं - विश्वविद्यालय का मुख्यालय थवक्करा, कन्नूर में स्थित है), एक सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेज , एक सरकारी आयुर्वेद कॉलेज और कई कला और विज्ञान कॉलेज हैं। यह NIFT (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फैशन टेक्नोलॉजी) के 13वें केंद्र की भी मेजबानी करता है । श्री एमवी राघवन के प्रभावी नेतृत्व से कन्नूर के लोगों ने परियाराम में सहकारी क्षेत्र में एक पूर्ण मेडिकल कॉलेज की स्थापना की । [87] अंजाराकांडी में कन्नूर मेडिकल कॉलेज इस जिले में स्थित एक निजी मेडिकल कॉलेज है। एक निजी क्षेत्र का आयुर्वेद मेडिकल कॉलेज परासिनिक्कदावु में स्थित है। एझिमाला में स्थित भारतीय नौसेना अकादमी एशिया की सबसे बड़ी और दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी नौसेना अकादमी है। [88] [89] 1862 में परोपकारी एडवर्ड ब्रेनन द्वारा स्थापित गवर्नमेंट ब्रेनन कॉलेज, थालास्सेरी , भारत के सबसे पुराने शैक्षणिक संस्थानों में से एक है।

कासरगोड [संपादित करें]

कासरगोड केंद्रीय वृक्षारोपण फसल अनुसंधान संस्थान का घर है , जिसे मूल रूप से 1916 में नारियल अनुसंधान स्टेशन के रूप में स्थापित किया गया था। यह भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तहत भारत की राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली का हिस्सा है। [90] संस्थान के अनुसार, केरल "देश के प्रमुख नारियल उत्पादक क्षेत्रों के केंद्र में स्थित है।" यह इंडियन सोसाइटी फॉर प्लांटेशन क्रॉप्स का भी घर है, जो *जर्नल ऑफ प्लांटेशन क्रॉप्स* प्रकाशित करता है और इस विषय पर संगोष्ठी आयोजित करता है। [91] केरल का केंद्रीय विश्वविद्यालय भी कासरगोड (पेरिया पहाड़ियों) में स्थित है।

- कासरगोड में केंद्रीय वृक्षारोपण फसल अनुसंधान संस्थान की स्थापना 1916 में हुई थी। [92]
- केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना 2009 में हुई थी। [93] [94]
- कासरगोड तुलु भाषा पर अनुसंधान को बढ़ावा देने वाली केरल तुलु अकादमी का भी घर है ।

केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय , कासरगोड

एक दक्षिणी राज्य है जिसके प्रागैतिहासिक मानवों के बारे में कम ही पता है। मुख्यतः चेर शासनकाल से ही उनका इतिहास आरंभ होता है।

Kerala's इतिहास [संपादित करें]

पौराणिक कथाओं के अनुसार परशुराम ने अपना परशु पानी में फेंका जिसकी वजह से उस आकार की भूमि समुद्र से बाहर निकली और केरल अस्तित्व में आया। यहां 10वीं सदी ईसा पूर्व से मानव बसाव के प्रमाण मिले हैं।

केरल शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। कहा जाता है कि "चेर - स्थल", 'कीचड' और "अलम-प्रदेश" शब्दों के योग से केरल शब्द बना है। केरल शब्द का एक और अर्थ है : - वह भूभाग जो समुद्र से निकला हो। समुद्र और पर्वत के संगम स्थान को भी केरल कहा जाता है। प्राचीन विदेशी यायावरों ने इस स्थल को 'मलबार' नाम से भी सम्बोधित किया है।

केरल की संस्कृति हज़ारों साल पुरानी है। प्रारंभ में लोग पहाडी इलाकों में रहते थे। केरल के कुछ भागों से प्राचीन प्रस्तर युग के कतिपय खण्डहर प्राप्त हुए हैं। प्राचीन खण्डहरों के अतिरिक्त महाप्रस्तर स्मारिकाएँ (megalithic monuments) भी केरल में मानव जीवन की प्रामाणिक जानकारियाँ देती हैं। ये अधिकतर श्मशान रूप में प्राप्त होती हैं। यहाँ पर प्राचीन महाप्रस्तर काल के अनेक श्मशान-स्थल खोजे गये हैं जिन्हें कुडक्कल्लु (छत्राकार शिलाएँ), तोप्पिक्कल्लु (टोपी नुमा शिलाएँ), कल्मेशा (पत्थर से बनी मेज़), मुनियरा (मुनियों की कोठरी), नन्नङाडि (भस्मकुंभ) आदि नामों से जाना जाता है। इनका काल 500 ई. पूर्व से 300 तक माना जाता है। अधिकतर महाप्रस्तर युगीन स्मारिकाएँ पहाडी क्षेत्रों से प्राप्त हुई। अतः यह सिद्ध होता है कि केरल में अतिप्राचीन काल से मानव का वास था।

केरल में आवास केन्द्रों के विकास का दूसरा चरण संघमकाल माना जाता है। यही प्राचीन तमिल साहित्य के निर्माण का काल है। संघमकाल सन् 300 ई. से 800 ई तक रहा। इसी काल में भारत के अन्य प्रान्तों से भी आकर लोग केरल में बसने लगे, तथा बौद्ध और जैन धर्मों का प्रचार हुआ। ब्राह्मण आगमन भी इसी काल में हुआ। उन दिनों केरल के विभिन्न क्षेत्रों में ब्राह्मणों की कुल मिलाकर 64 बस्तियाँ थीं। ईसा की पहली शताब्दी तक केरल में ईसाई धर्म भी पहुँच गया था। सन् 345 में कानायि के थॉमस के नेतृत्व में पश्चिम एशिया के सात कबीलों के 400 ईसाई धर्मावलम्बी केरल आकर बसे, जिनसे केरल में ईसाई धर्म प्रचार को बल मिला। यही वही समय था जब केरल का अरबवासियों के साथ समुद्र मार्ग से व्यापार चल रहा था। अतः स्वाभाविक था कि आठवीं ईस्वीं से ही केरलवासी इस्लाम धर्म से परिचित हो गए।

प्राचीन केरल को इतिहासकार तमिल भूभाग का अंग समझते थे। केरल के स्वतंत्र विकास में जो तत्त्व सहायक हुए हैं उनमें मुख्य हैं - निवासियों का प्रकृति प्रेम, आवास केन्द्रों का विकास, उत्पादन केन्द्रों का उदय और भाषायी समृद्धि। जब कृषि और संसाधन का नियंत्रण ज़मीन्दारों के हाथों में आ गया तब केरल में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। परिणामस्वरूप छोटी रियासतों से लेकर बड़े राज्यों का विकास हुआ।

इस तरह केरल का इतिहास साम्राज्यों और युद्धों का इतिहास है, भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास है, विदेशी सेनाओं के आगमन तथा उनके दीर्घकालीन उपनिवेश बन जाने का इतिहास है, जाति-पाँति और शोषण का इतिहास है, शिक्षा में हुई प्रगति और वैज्ञानिक क्षेत्रों में हुई तरक्की का इतिहास है, व्यापारिक प्रगति और सामाजिक नवजागरण और जनतांत्रिक संस्थाओं के आविर्भावों का इतिहास है।

सुविधा की दृष्टि से केरल के इतिहास को प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक कालीन - तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

- प्राचीन केरल
- मध्यकालीन केरल
- आधुनिक केरल

केरल की संस्कृति

3 भाषाएँ

लेख संवाद

पढ़ें सम्पादित करें इतिहास देखें उपकरण

मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से

केरल की संस्कृति पिछले सदियों में विकसित हुई है, जो भारत और विदेशों के अन्य हिस्सों से प्रभावित है।[1][2] यह अपनी प्राचीनता और मलयाली लोगों द्वारा संघटनात्मक निरंतरता द्वारा परिभाषित की जाती है।[3] शास्त्रीय पुरातनता से भारत और विदेशों के विभिन्न हिस्सों से पलायन कर आये लोगो के कारण आधुनिक केरल समाज ने आकार लिया है।[2][4][5]

भारत में केरल की अवस्थिति

केरल की गैर-प्रागैतिहासिक सांस्कृति का संबंध तीसरी शताब्दी के आसपास, एक विशिष्ट रूप से ऐतिहासिक क्षेत्र से है, जिसे थंबीजोम कहा जाता है, जो एक आम तमिल संस्कृति वाला क्षेत्र है, जहां चेरा, चोल और पंड्या राजवंशो का उत्थान हुआ। उस समय, केरल में पाया जाने वाला संगीत, नृत्य, भाषा (पहली द्रविड़ भाषा - "द्रविड़ भाषा" [6]- तत्कालीन तमिल) और संगम (1,500-2, 000 साल पहले रचा गया तमिल साहित्य का एक विशाल कोष) थंबीजोम (आज का तमिलनाडु) के बाकी हिस्सों के समान ही था। केरल की संस्कृति द्रविड़ लोकाचार के संस्कृतकरण, धार्मिक आंदोलनों के पुनरुत्थान और जातिगत भेदभाव के खिलाफ सुधार आंदोलनों के माध्यम से विकसित हुई।[7][8][9] केरल एक ऐसी संस्कृति को दर्शाता है जो सभ्य जीवन शैली के विभिन्न संकायों के आवास, उच्चारण और आत्मसात के माध्यम से विकसित हुई है।

कनहंगड़ में मंदिर जुलूस

केरल के सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले कलारूपों में लोककलाओं, अनुष्ठान कलाओं और मंदिर कलाओं से लेकर आधुनिक कलारूपों तक की भूमिका उल्लेखनीय है। केरलीय कलाओं को सामान्यतः दो वर्गों में बाँट सकते हैं - एक दृश्य कला और दूसरी श्रव्य कला। दृश्य कला के अंतर्गत रंगकलाएँ, अनुष्ठान कलाएँ, चित्रकला और सिनेमा आते हैं।

प्रदर्शन कला [संपादित करें]

शास्त्रीय प्रदर्शन कलाओं की मूल परंपरा में *कूडियाट्टम* शामिल है, जोकि संस्कृत नाटक या रंगमंच का एक रूप है और यूनेस्को द्वारा नामित विशिष्ट धरोहर कला है। *कथकली* (कतेरुम्बु ("कहानी") और कली ("प्रदर्शन")) नृत्य-नाटक का 500 साल पुराना रूप है जो प्राचीन महाकाव्यों की व्याख्या करता है; *कथकली* का एक लोकप्रिय केरल नटनम (20 वीं शताब्दी में नर्तक गुरु गोपीनाथ द्वारा विकसित) है। इस बीच, *कुथू* एक अधिक हल्की-फुल्की प्रदर्शन विधा है, जो आधुनिक स्टैंड-अप कॉमेडी के समान है; एक प्राचीन कला जो मूल रूप से मंदिर परिसरों तक ही सीमित थी, इसे बाद में मणि माधव चकर द्वारा लोकप्रिय बनाया गया। *ओट्टंथुल्लल, थिरयट्टम, पढ़यनि,* और *तेय्यम* अन्य महत्वपूर्ण केरल की प्रदर्शनकारी कलाएं हैं। *थिरयट्टम* केरल की सबसे उत्कृष्ट संजातीय कला में से एक है।

केरल में कई जनजातीय और लोक कलाएँ भी हैं। उदाहरण के लिए, *कुम्माटिकली* दक्षिण मालाबार का प्रसिद्ध रंगीन मुखौटा-नृत्य है, जो ओणम के त्योहार के दौरान किया जाता है।

संगीत